धरातलों का वास्तविक ज्ञान इसी विज्ञान के द्वारा पूरा हो सकता है। तभी वर्तमान समय में देश विदेशों में सभी जगह इस विज्ञान की धूम मची हुई है ; मनन और अध्ययन की वाढ आ रही है जिसका कुछ विवरण हम इसी ग्रंथ में , लोक कला के संकलन की प्रवृत्तियों में, दे रहे हैं। इसकी तालिका वड़ी विस्तृत है। इस विषय पर डा. सत्येन्द्र ने सोफिया वर्न द्वारा नीचे उल्लिखित तीन प्रधान समूहों के विषय में लिखा है :अ. अविश्वास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धित हैं–१. पृथ्वी और आकाश से २. वनस्पति जगत से ३. पशु जगत से ४. मानव से ५. मनुष्य निर्मित वस्तुओं से ६. आतमा तथा दूसरे जीवन से ७. परामानवी व्यक्तियों से [जैसे देवताओं, देवियों तथा ऐसे ही अन्यों से] ८.शकुनों - अपशकुनों, भविष्य वाणियों, आकाश वाणियों से ६. जादू टोनों से १०. रोगों तथा ११. स्थानीय कला से।

व. रीति-रिवाज— १. सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएं २. व्यक्तिगत जीवन के अधिकार ३. व्यवसाय , धंधा तथा उद्योग ४. तिथियां , व्रत तथा त्योहार ५. खेलकूद तथा मनोरंजन।

स. कहानियां, गीत तथा कहावतें — १. कहानियां: अ. जो सच्ची मानकर कहीं जाती हैं। व. जो मनोरंजन के लिए कही जाती हैं २ . सभी प्रकार के गीत ३ . कहावतें तथा पहेलियां ४ . पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

श्री श्याम परमार ने लोकवार्ता का वर्गीकरण इस प्रकार किया है । १. लोक गीत , लोक कथाएं, कहावतें , पहेलियां आदि । २. रीति - रिवाज त्योहार , पूजा , अनुष्ठान , व्रत आदि। ३. जादू टोना , टोटके, भूत प्रेत सम्बन्धी विश्वास आदि ४. लोक-नृत्य तथा नाट्य तथा आंकिक अभिव्यक्ति। ५. वालक-वालिकाओं के विभिन्न खेल , ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल आदि । इस तरह से लोक वार्ता [फोकलोर] का क्षेत्र वड़ा विस्तृत , व्यापक एवं असीमित है। लोक साहित्य उसका एक भाग है। व्यक्ति के विभिन्न आचार विचारों का लगाव लोक वार्ता से होता है। लोक वार्ता के अन्य सभी विषय लोक साहित्य के लिए सहयोगी होते चलते हैं। फलत: लोक साहित्य लोक वार्ता का एक अंग माना जाता है। इस लोक वार्ता साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता , जितना उसमें सुरक्षित उन परंपराओं की दृष्टि से होता है जो नृ-विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोश कह सकते हैं। इस प्रकार के लोक साहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके मूल में किसी आधिभौतिक तथ्य का प्रतिविम्ब है जैसे कि आदिम मानव ने सूर्य और अन्धकार के संवंध को अथवा सूर्य और उषा के प्रेम को अथवा साहचर्य को ही विविध

रूपकों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है तो उसका तत्व धर्म गाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य का वह अंश जो रूप में प्रकटतः तो होता है कहानी, पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी रहा हो। यही धर्म गाथा कहलाती है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परंपरा से प्राप्त कथा तथा गीत साहित्य लोक साहित्य कहलाता है। धर्म गाथाएं हैं तो लोक साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथाएं धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो गई हैं। अतः लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से इन्हें हट जाना पड़ा। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ में तो सहज होते हैं, उपरान्त अभीष्ट अर्थ की चेतना से सम्बद्ध हो जाते हैं।[१]

लोक विद्या, लोक वार्ता का एक अंग—लोक वार्ता का एक अंग लोक विद्या भी माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत टोने-टोटके से इलाज करना तथा रूढ़ परंपराओं से कार्य करने वाली शैलियां आती हैं। साँप- बिच्छुओं के झाड़े तथा भूत-प्रेतों और डाकण-स्यारियों के मंत्रादि इसी विद्या में आते हैं। कृषि विद्या भी लोकहितोपयोगी विद्या कहलाती है। कृषि कर्म में प्रवृत्त होकर लोक किस प्रकार के आराध्य-व्यापार करता है सो लोक विद्या केवल लोकोपयोगी ज्ञान ही नहीं है पर लोक के नाना भांति के व्यवसाय और उन विषयों की पूजा करने वाली रूढ़ परंपरित विद्या से संबंधित भी है।

प्रादेशिक लोक साहित्य—भारतवर्ष में राजस्थान का प्रांत, लोक साहित्य के क्षेत्र में एक अमूल्य संपत्ति का अखूट खजाना है। इस प्रदेश की संस्कृति ने अद्भुत शौर्य, सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों की स्थापनायें की हैं। राजस्थान की प्रकृति ने जो 'अभाव' प्रदान किये अर्थात मरुस्थल, अकाल, कम वर्षा, खेती के साधनों का अभाव आदि आदि सभी तथ्य यहां के निवासियों के मन से उमंग, उल्लास और उत्साह को कम नहीं कर सके। अपनी जीविका उपार्जन के लिए संतोष के पश्चात लगभग सारा अवकाश-काल लोक संस्कृति की उन्मेषपूर्ण गरिमा में ही लगता रहा। यहां के इतिहास ने वीरता की अक्षुण्ण छाप छोड़ी है, महिलाओं ने इतिहास को जौहर की ज्वालाओं के अक्षरों से लिखा है, दातार और दानवीरों ने अपने धन को कोड़ियों की तरह वहाया और मरुस्थल को निवास योग्य और जीवन के लिए सक्षम वनाया है। गांव गांव और घर घर में राजस्थानी लोक कला और लोक सहित्य की स्पन्दनपूर्ण थाती के दर्शन मिलते हैं। प्रेम और

१ — व्रज लाक साहित्य का अध्ययनः डॉ. सत्येन्द्र

रोमांस की उमंगपूर्ण कथाओं में ढोला - मारू, जलाल - बूबना, नागजी-नाग - वन्ती, रिसाळू - नोपदे, सुल्तान - निहालदे ; विद्वता एवं बुद्धिमानी से परिपूर्ण राजा भोज, राजा विक्रम एवं क्रोड़ी धज सेठों की कथायें ; लोक गाथाओं के रूप में बगड़ावत और पाबूजी जैसे वीरात्मक महाकाव्य ; पणिहारी, सूवटियौ जलौ, सपनौ, ओळूं जैसे मुक्तक गीतों का अक्षय भंडार राजस्थान के लोक - साहित्य को अखूट बनाये हुए हैं। इन लोक सांस्कृतिक उपलब्धियों में सहज मनोभाव, चारित्र्यपूर्ण नीतियां और जीवन की नानाविध अनुभूतियों के हीरे - मोती बिखरे पड़े हैं।

राजस्थान की लोक संस्कृति के जागरूक संरक्षण के लिए कुछ विशिष्ट जातियों का योगदान भी कम नहीं है। चारणों का इतिहास एवं काव्य प्रेम, भाटों की विरुदावलियां एवं वंशावलियां ; धोळे, मोतीसर, रावल, जोगी, ढाढ़ी, ढ़ोली, लंगों के काव्य एवं गीत तथा अनेकानेक जातियों के अनेक प्रकार के भोपों ने अपनी कंठानुगत परंपरा में असंख्य सामाजिक तथ्यों को सुरक्षित कर रखा है।

लोक साहित्य का महत्व – वर्तमान युग में लोक साहित्य से अनेक रूपों का ज्ञान होता है। हिन्दी साहित्य जगत में साहित्य शब्द के साथ लोक विशेषण लगाकर लोक साहित्य अपना पार्थक्य प्रकट करता हुआ पर्याप्त प्रचलित होता जा रहा है। यह साहित्य धारा उसी तरह से चल निकली है–जिस तरह कि स्वतंत्र राष्ट्र की भाखरा चंबल की नहरें। इसका विकास मानव मन की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से हुआ है। इसमें लोक कथा, लोक गीत, लोक-नाट्य, लोकानुरंजन और लोक परंपरा आदि सम्मिलित हैं। इन तत्वों से जन सामान्य के सामाजिक जीवन के आदर्शों की रचना हुई है। यह मौखिक साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है। मनुष्य की बाह्य प्रवृत्तियों से जो विकास होता है वह शिक्षा है। इस साहित्य की आत्मा लोक मानस में निहित है और इसका शरीर सामाजिक बंधन - विश्वास से गठित है। लोक सरलतायुक्त है और शिक्षा प्रवंचनापूर्ण। परंतु शिक्षा और सभ्यता में घनिष्ट सम्बन्ध है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में सभ्यता की वृद्धि के साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से है। बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो। प्रायः हृदय के विषय में मस्तिष्क सदा झूठ बोलता है। कितनी बार मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है, पर उसका मस्तिष्क शांति और विनय की बातें करता हुआ पाया जाता है। हृदय में कामना रहती है पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है। हृदय में लोभ रहता है, पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है। बहुत ही कम उच्चकोटि के सत्पुरुष ऐसे होंगे जिसके हृदय और मस्तिष्क में मेल हो।

अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते हैं वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।[1]

अतः लोक साहित्य हृदय का साहित्य है, उसमें प्राकृतता के दर्शन होते हैं। उसमें शांति, स्वभाव, आत्मैक्य और आपसी विश्वास के भाव पलते हैं। सहृदयता, सरलता, निर्भयता एवं प्रगाढ़ प्रेम के नमूने लोक साहित्य के सिवाय कहां मिलते हैं ? ज्ञान-विज्ञान, व्यवहार-वाणी, वेष-भूषा आदि वास्तविक व्यापार लोक साहित्य की जान है। लोक साहित्य की प्रगति ही प्रकृति की पूजा है।

लोक साहित्य विज्ञान और संरक्षणः लोक साहित्य की अक्षय निधि चूंकि मौखिक है और सामाजिक अचेतन का अंश है, इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि उसके संरक्षण का प्रयास अधिकाधिक किया जाय। समाज-सापेक्ष लोक साहित्यिक तथ्य काल की चपेट में सबसे पहिले आते हैं। समाज के बदलते मूल्यों के साथ लोक संस्कृति की विकास यात्रा के चिह्न वालू के पदचिह्नों की तरह मिटते चलते हैं। किन्तु उनका सौन्दर्य और उस सौन्दर्य की गरिमा से नवीन संस्कृति का निर्माण भी संभव है। अतः यह आवश्यक है कि लोक साहित्य की परम्परा को संरक्षित किया जाय, उनका संग्रह किया जाय और उनसे निःसृत तथ्यों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर नवीन सामाजिक मूल्यों की प्रस्थापना की जाय। लोक साहित्य ही वस्तुतः हमारे सामने एक ऐसा खजाना उपस्थित करता है जो वालोपयोगी शैक्षणिक प्रयोग में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ग्रिम वन्धुओं कीपरी कथाओं एवं लोक कथाओं के शैक्षणिक महत्व से आज के शिक्षाविद् कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकेंगे। हमारे दुर्भाग्य की बात है कि हम अपनी शिक्षा-पद्धति में हितोपदेश, पंचतंत्र एवं उन्हीं की प्रवृत्ति के अनुकूल चलने वाली असंख्य लोक कथाओं का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। विश्व के उन्नततम् देशों ने जो अनुभव सिद्ध सत्य स्वीकार कर लिया है, उससे भी अभी हम वहुत दूर हैं।

नवीन भारतीय साहित्य की आलोचना - प्रत्यालोचना में भी एक वात वार वार कही जाती है कि वह परामुखपेक्षी है, उसके साहित्यिक आंदोलन भारतीय भूमि में अंकुरित न होकर विदेशीय ताप से पीड़ित हैं। भारतीय साहित्य को भारतीय होने के लिए अंततः कौनसी साधना करनी है ? यही साधना वस्तुतः लोक साहित्य की गरिमापूर्ण परंपरा से प्राप्त की जा सकती है जो अपने सौन्दर्य, शैलीगत विपुल प्रयोग और मनसचेतना की उष्मा से परिपूरित है।

भारतीय साहित्य की उन्नति अथवा राष्ट्रीय साहित्य के लिए यह अत्यंत आवश्यक वन गया है कि लोक मानस से उद्भूत सहज अभिव्यक्तियों का गहरा

---

१ —कविता-कौमुदी : ५ वां भाग

और विस्तृत - क्षेत्र संग्रहीत और संरक्षित किया जाय ।

लोक वार्ता के सभी मौखिक अंगों-उपांगों यथा कथा, गीत , गाथा , नाटक, मुहावरे , कहावतें, पहेलियां , प्रवाद , आख्यान आदि आदि की सुरक्षा एवं अध्ययन के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं । उन्हें एकत्रित करने की प्रणालियां हैं , वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं अध्ययन की शैलियां हैं उन्हें अपने शुद्ध रूप में, उपयोग में लिया जाना है और एक ऐसी नींव की स्थापना करनी है जिससे भारतीय समाज अपने आधुनिकतम अभिव्यक्तियों , प्रतीक-व्यवस्थाओं और विगत सौन्दर्य में निपट भारतीय सिद्ध हो सके ।

भारतीय लोक साहित्य की भूमिका— लोक साहित्य के संरक्षण अथवा खोज का कार्य मुख्यतः उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो एक ओर मानव-समाज की कलात्मक भाव धाराओं को अपनी संपूर्णता में देखना चाहते हैं तथा दूसरी ओर मनुष्य को अपनी प्रकृति एवं सामाजिक परिस्थितियों [देश , काल और जाति] के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करते हैं । लोक साहित्य के विषय का स्वतंत्र महत्ता के रूप में अध्ययन प्रारंभ तो उपरोक्त दो सुनिश्चित मान्यताओं के उपरान्त ही होना संभव हुआ । ये मान्यतायें पाश्चात्य देशों में १९ वीं शताब्दी के मध्य से एक स्पष्ट पद्धति के रूप में सामने आने लगी । विलियम जे. थॉम्स , गोम्मे, विशप पेरी , टेलर , फ्रेजर आदि विद्वानों ने मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया । लोक साहित्य की स्पष्ट विषयगत धारणा का जन्म मुख्यतया नृ-विज्ञान एवं समाजशास्त्र की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ और शनैः शनैः एक स्वतंत्र विषय की ओर अग्रसर होता गया । बीसवीं शताब्दी के दूसरे युग तक पहुंचते हुए पाश्चात्य देशों ने निश्चय ही लोक वार्ता को स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार कर लिया और उसके पठन-पाठन और अध्ययन , संग्रह एवं शोध का कार्य भी प्रारंभ हो गया ।

इसी प्रकार यदि भारतीय लोक साहित्य की भूमिका के विषय में सोचते हैं तो सहज ही उसका मूल प्राचीन काल में मिलना प्रारंभ हो जाता है । वेद , उपनिषद, ब्राह्मण तथा आरण्यकों को हम लोक वाङ्मय अथवा संपूर्ण लोक वार्ता की विधा से निकट पाते हैं ; साथ ही साथ बुद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के स्पष्ट दर्शन होने लगते हैं । कथा सरित्-सागर, वृहत्कथा , पंचतंत्र , हितोपदेश आदि आदि साहित्यिक कथाओं का मूल्य भी कम नहीं रहा । हमारे देश के मध्ययुगीन साहित्य में लोकपरक मनोभूमि पर सृजित साहित्य का अभाव नहीं मिलता । किन्तु निश्चय है कि 'लोक' में प्रचलित मौखिक परम्पराओं को इन युगों में साहित्यिक स्वरूप देने का प्रयास किया गया और उनकी स्वस्थ एवं उज्जवल अभिव्यंजना को शास्त्रीय काव्य का आधार

बनाया गया।

किन्तु लोक साहित्य के जिस अध्ययन शोध की चर्चा यहां अभिप्रेत है, इसमें मौखिक साहित्यिक परंपरा को कलात्मक स्वरूप या लिखित रूप देना ही नहीं है, अपितु लिखित स्वरूप के माध्यम से मनुष्य को अपने पूर्ण सौन्दर्य कल्पना के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास भी निहित है। ऐसा सर्वांगीण प्रयास भारत में वर्तमान शिक्षा पद्धति की स्थापना के बाद ही प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजों के शासन काल में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी एवं कुछ चर्च के पादरियों ने भी सबसे पहिले भारतीय लोक साहित्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कर्नल टॉड, सी. ई. ग्रोवर, फोर्ब्स, रेवरेंड एस. हिस्लप आदि इस क्षेत्र में प्रमुख रहे। इन विद्वानों ने लोक वार्ता का सहारा मुख्यतया भारत के जनमानस को भली प्रकार समझ लेने के लिए किया, इन अध्ययनों का मुख्य प्रयोजन उनकी भारतीय राजनीति का एक अंग रहा।

इसी काल में अहिन्दी क्षेत्रों में लोक वार्ता संबंधी कार्य हुआ। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है: अहिन्दी जन पद संबंधी ग्रंथों में १. मिस फेयर का ओल्ड डेक्कन डेज [१८६७], २. डाल्टन का डिस्क्रिप्टिव एथनॉलोजी ऑफ बंगाल [१८७१], ३. श्री ग्रोवर का फोक सांग्ज ऑफ सदर्न इंडिया [१८७१], ४. लाल बिहारी दे का फोक सांग्ज ऑफ बंगाल [१८८३], ५. तोरूदत्त द्वारा लिखित एन्श्यंट बेलेड्स एन्ड लीजेन्ड्स ऑफ हिन्दुस्तान [१८८९], ६. रिचर्ड टेम्पल महोदय का लीजेन्ड्स आफ दी पंजाब [१८८४], ७. श्रीमति एफ. ए. स्टील द्वारा लिखित वाइड अवेक स्टोरीज [१८८५], ८. नटेश शास्त्री का फोकलोर इन सदर्न इंडिया, आर. सी. मुकर्जी का लिखा ९. इंडियन फोकलोर, १०. श्रीमति डेकार्ट का शिमला विलेज टेल्स, ११. सी. स्वीन्टर्न का रोमाण्टिक टेल्स ऑफ पंजाब, १२. एम. कुलक द्वारा लिखित बंगाली हाउस होल्ड टेल्स, १३. शोभनादेवी का ओरियण्टल पर्लस्, १४. रामास्वामी राजू का इंडियन फेबल्स, १५. जी. आर. सुब्रह्मन्य पंतालु का फोकलोर आफ दी तेलगूज, १६. दिनेशचन्द्र द्वारा रचित ईस्ट बंगाल बेलेड्स, १७. आर. ई. एन्थॉवेन के फोकलोर आफ बॉम्बे और १८. फोकलोर नोट्स ऑन ट्राइब्ज एंड क्राफ्ट्स ऑफ बॉम्बे आदि अनेक ग्रंथ इसी क्रम में मिलते हैं।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया [१९०७-८] की जिल्दों को देखने से ज्ञात होता कि है डा. ग्रियर्सन ने कुछ मौखिक गीतों को अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है। बहुत से अंग्रेज लेखकों ने अपने फुटकर लेखों में बड़े काम की सामग्री प्रकाशित करवाई है। परन्तु ये सारे ग्रंथ और ये ज्ञानराशि अंग्रेजी में ही प्रकाशित हुई है। इनमें से हिन्दी जनपदों की अपेक्षा अहिन्दी

जनपदों में भारतीय और अभारतीय विद्वानों द्वारा अधिक कार्य हुआ है। आंग्ल-भाषियों द्वारा लिखे लोक वार्ता संबंधी कार्यों को आज के विद्वान चाहे वैज्ञानिक अन्वेषण कहें अथवा नृ-विज्ञान की खोज, पर प्रत्यक्ष में तो वह भारतीय लोक जीवन के नैकट्य की भावना से ही संकलित होना संभव हुआ है। इस तरह से विदेशी लेखकों ने कश्मीरी, नेपाली, राजस्थानी, मैथिली, संथाली आदि विभिन्न भाषाओं तथा लोक साहित्य का विशद एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया है। अंग्रेजी लेखकों में प्रमुख सर जार्ज ग्रियर्सन, एच० एन० इलियट, श्री सी० ई० ग्रोवर और डा० टर्नर आदि उल्लेखनीय हैं।

इस भांति प्रादेशिक लोक साहित्य संकलन का कार्य और लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य लेकर कई विद्वान बड़ी तेजी से चल पड़े। नूतन ज्योति जगी। देश जगमगा उठा। मिशनरियों के फैलाव और धर्म प्रचारार्थ प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता ने प्रान्तीय भाषाओं के मौखिक साहित्य के संकलन को भी प्रेरणा दी, इसमें शक नहीं।

हिन्दी लोक साहित्य संकलन का इतिहास — हिन्दी लोक वार्ता साहित्य अभी दो कालों में बांटा जा सकता है। लोक साहित्य संकलन का प्रेरणाकाल और लोक-साहित्य संकलन का प्रवृत्तिकाल, यद्यपि एक काल में दूसरे प्रकार का रुचि संकलन कार्य भी हुआ है– जैसे प्रधानता गीत संकलन की चाहे रही हो, फिर भी उसे गीत काल नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस काल में कथा-कहावतों का भी संकलन हुआ है।

हिन्दी साहित्य संकलन का प्रेरणा काल – (१८८४ से १९४२ तक) इसे प्रथमोत्थान भी कहते हैं। बताया जाता है कि बांकीपुर के लाला खंगबहादुर मानव ने सन् १८८४ में सुधा बूंद नाम का एक गीत संग्रह तैयार किया था। इस विषय के विद्वानों ने उसके कई प्रमाण खोज लिए हैं। हिन्दी में लोक साहित्य संकलन के उद्योग का यहीं से प्रथमोत्थान प्रारंभ होता है। पर इसमें गति, मति और ज्ञान अंग्रेजी की प्रेरणा से ही आया है। इसलिए इसे प्रेरणा काल ही कहना चाहिए। इस काल का साहित्य संकलन, कई प्रकार की भाषाओं में है। हिन्दी और प्रान्तीय भाषाएं। हिन्दी में स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी बी० ए०, तहसीलदार, आजमगढ़ की गीत पुस्तक सरवरिया १९१३ में प्रकाशित हुई है। इन्हीं दिनों श्री संतराम बी० ए० के पंजाबी लोक गीत चांद और सरस्वती में प्रकाशित होते थे, जो आगे चलकर संवर्द्धित संस्करण १९२५ की पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसी समय पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने बड़ी लग्न के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९२६ के बाद उनके कई गीत संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कविता कौमुदी (पांचवां भाग), हमारा ग्राम साहित्य; मारवाड़ी गीत संग्रह,

आदि प्रमुख हैं।

सन् १९२८ के आस पास देवेन्द्र सत्यार्थीजी भी इस क्षेत्र में गीत खोजने के लिए कटिवद्ध होकर आये। सत्यार्थीजी भी दूर दूर की यात्रा करते, गीतों को लाते और रूरल इंडिया, मार्डन रिव्यू एवं अन्य हिन्दी उर्दू के पत्रों में छपाते। सत्यार्थीजी ने इस क्षेत्र में त्रिपाठीजी के साहित्यानुज बनकर कार्य किया। त्रिपाठीजी का क्षेत्र छोटा और तनिक वैज्ञानिक रहा, पर सत्यार्थीजी का कार्य विस्तृत, छतराया हुआ और भावना प्रधान ही रहा।

राजस्थान में लोक साहित्य संकलन — इस कार्य की गौरव-गरिमा को प्रकाश में लाने के लिए कई राजस्थानी प्रवासी भाई भी काम में लगे। कलकत्ता में रामदेवजी चोखानी, रघुनाथप्रसादजी सिहानियां और भगवतीप्रसाद जी वीसेन के परामर्श से राजस्थान रिसर्च सोसायटी की स्थापना की। यहां एक राजस्थान नाम की शोध पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और लोक साहित्य को समुचित स्थान मिलने लगा। इस तरह से लोक साहित्य संकलन का यह कार्य राजस्थानी में भी प्रारंभ हुआ।

लोक साहित्य संकलन प्रेमियों की लालसा रहती है कि चाहे वह स्मृति में हो या पोथियों में, पर वे उन निधियों का पूर्ण संग्रह अवश्य करेंगे। राजस्थान में यह परंपरा भी बहुत प्राचीन काल से चलती आई है। जिसके परिणामस्वरूप हस्तलिखित ग्रंथों में भी लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। मात्र साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य ही ऐसा गुरू है जो देश एवं जाति की सभ्यता के विकास की, उसके जीवन की गतिविधि तथा उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की भांकियों के दर्शन करवा सकता है। इन परंपराओं को सुनने — समझने और उनका ज्ञान प्राप्त करने में लोक साहित्य ने अमूल्य योग दिया है।

राजस्थानी का लोक साहित्य सहज ही अनुपम है। खेद का विषय है कि अभी तक यह पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आ पाया। मुख परंपरागत होने के कारण इसका रूप परिवर्तित हो रहा है। यह साहित्य बड़ा ही भावपूर्ण तथा जीवन के आदर्शों से परिपूर्ण है।

सारे राजस्थान भर में इस भागीरथी [लोक साहित्य] की सतत् प्रवाहिनी भाव धारा में अवगाहन करने हेतु अनेक विद्वानों ने पूर्ण योगदान दिया। राजस्थानी भाषा, इतिहास और साहित्य के प्रेमी विद्वानों ने कार्य प्रारंभ किया। राजस्थानी लोक साहित्य का कार्य स्वतंत्र पुस्तकाकार रूप में भी हुआ और राजस्थान से निकलने वाली अनेकानेक पत्रिकाओं में भी निरन्तर यह कार्य प्रकाशित होता रहा। वस्तुतः राजस्थानी भाषा और संस्कृति के पुनरुत्थान के प्रयत्न में लगभग सभी विषय के अध्येताओं ने लोक वार्ता के विषयों को अपने

अध्ययन क्रम में सम्मिलित किया। राजस्थानी भाषा और साहित्य के अध्येता कविराजा मुरारीदानजी, रामकरणजी आसोपा सूर्यकरणजी पारीक, नरोत्तम दासजी स्वामी, रामसिंहजी, सीतारामजी लाळस आदि ने राजस्थान की प्राचीन साहित्यिक परंपरा के साथ ही साथ लोक साहित्य का कार्य भी किया। जोधपुर रियासत के मुंशी देवीप्रसादजी ने जन-गणना के कार्य के साथ मारवाड़ की जातियों का एक सुन्दर ग्रंथ भी रचा। लोक वार्ता में जातीय अध्ययन एक महत्वपूर्ण कड़ी है और उसमें श्री देवीप्रसादजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अन्य रियासतों में जनगणना कार्यों के साथ भी कहीं कहीं जातियों को समझने का उपक्रम किया गया। आधुनिक काल में लोक वार्ता के अध्ययन के लिए यह सामग्री अत्यंत महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती है।

गीत संग्रह — दूसरे प्रान्तों में रहने वाले प्रवासी राजस्थानियों के लिए मारवाड़ी शब्द रूढ़ हो गया है। चाहे वे बीकानेर के हों या जयपुर के, बाहर वे सब मारवाड़ी नाम से ही प्रसिद्ध है। वहां [बंगाल, बिहार, नेपाल, आसाम, बंबई एवं मद्रास आदि] धन कमाते हैं, लाते हैं और अच्छे कामों में लगाते हैं। मगर वहां उन लोगों का जीवन सदैव व्यापारिक पचड़ो में ही उलझा रहता है। दूर बैठों के लिए अपनी मातृभूमि और मातृभाषा के लिए बड़ा आदर भाव बना रहता है, वे कहीं अपने लोक साहित्य को वहां बैठे देख लें तो बाँसों उछलने लग जायें—ऐसा मेरा स्वयं का अनुभव है। उन प्रवासी राजस्थानियों तक प्रादेशिक लोकगीत पहुंचाने के मात्र उद्देश्य से राजस्थान में कुछ शिक्षित एवं चतुर बन्धुओं ने गीत संकलन कार्य शुरू भी किया। खेताराम माली ने मारवाड़ी गीत संग्रह, मदनलाल वैश्य ने मारवाड़ी गीतमाला, निहालचन्द वर्मा ने मारवाड़ी गीत, ताराचन्द ओझा ने मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह, जगदीश सिंह गहलोत ने जोधपुर से मारवाड़ के ग्रामगीत आदि नामों से लोक गीतों के कई संग्रह प्रकाशित किये। गहलोतजी ज्ञानी एवं लोक साहित्य प्रेमी थे, अतः उनसे हमें कई पुस्तकें और मिलीं। उन्होंने राजपूताने के वार्तालार्थ, मारवाड़ के रस्म, मारवाड़ी कहावतें, कृषि कहावतें आदि ग्रंथ भी तैयार किये। इससे पूर्व विश्वेश्वरनाथजी रेऊ भी इस दिशा में कार्य कर रहे थे। विक्रम सवंत् १९८९ में रेऊजी की लिखी राजा भोज नामक लोक कथा पुस्तक इलाहाबाद की हिन्दुस्थानी ऐकेडेमी से प्रकाशित हुई।

बीकानेर में [वि.सं. १९८०] राजस्थानी लोक साहित्य के उद्धारार्थ श्री नरोत्तमदासजी स्वामी के उद्योग से राजस्थानी साहित्य पीठ की स्थापना हुई। इसकी सदस्यता के लिए राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी कोई न कोई कार्य करना आवश्यक रखा गया। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के नाम इस प्रकार हैं:

ठाकुर रामसिंह तंवर, पंडित विद्याधर शास्त्री, पं. दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, मुरलीधर व्यास, रामनिवास हारित, पुरुषोत्तमदास स्वामी, रावतमल सारस्वत, पूर्णमल गोयन्का, द्वारकाप्रसाद पुरोहित, कुंवर चन्द्र सिंह आदि अन्वेषक कार्य करने के लिए तैयार हुए। इनमें से कई देश के सफल अनुसंधानकर्ता होकर अग्रणी बने और कुछ लोग केवल राजस्थानी भाषा के उद्धारक तक ही आकर रह गये।

उधर सन् १९१९ में पिलानी में बिड़ला कॉलेज खुला। तब श्री सूर्यकरणजी पारीक बीकानेर से वहां हिन्दी प्रोफेसर पद पर पहुंचे। १९३३ में आपने राजस्थानी के सुप्रसिद्ध साहित्य प्रेमी घनश्यामदासजी बिड़ला के द्वारा पिलानी राजस्थानी ग्रंथमाला की स्थापना करवाई। इस ग्रंथमाला का पहला ग्रंथ राजस्थानी बातां आपने ही तैयार किया था। इसमें राजस्थानी भाषा की आठ प्राचीन कहानियां संकलित की गईं। आगे चलकर पारीकजी नें परिश्रमपूर्वक अपने दो बीकानेरी घनिष्ट मित्रों श्री ठाकुर रामसिंहजी और नरोत्तमदासजी स्वामी के सहयोग से पहिले पहल सुरूचिपूर्ण ढंग से २३० लोकगीत संपादित किये। लोक साहित्य के उन रत्नों से राजस्थान के लोक गीतों का प्रथम भाग प्रकाशित करवाया। इन दोनों भागों के संपादक त्रय महोदय ने राजस्थानी गीतों का विवेचन-विश्लेषण बड़ी वैज्ञानिक पद्धति से किया है। प्रस्तावना में लोक गीतों के प्रकार, साम्य, पारिवारिक व्यक्तियों के विशेषण, उपमान, सौन्दर्य के उपमान, पति-श्रृंगार, पत्र, अभिवादन, आशीर्वाद, वस्तु-प्राप्ति स्थान, पदार्थ-सुख, सामग्री, पशुओं के विशेषण, हल, चरखा आदि के अनेक पर्याय-समीक्षण बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी अनुवाद, टिप्पणी, शब्द-कोष, परिशिष्ट और सभी सामग्री उत्तम ढंग से सुसज्जित की है। अतः सूर्यकरणजी पारीक, ठा. रामसिंहजी, प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी [त्रिमूर्ति] के सद्प्रयत्नों से लोक गीतों का संकलन एक सफल पद्धति से प्रारम्भ हो गया। बीकानेर में इनके पदचिन्हों पर चलने के लिए डा. दशरथ शर्मा, मुरलीधर व्यास, अगरचन्द नाहटा, दीनानाथ खत्री, भंवरलाल नाहटा, रावत सारस्वत, बद्रीप्रसाद साकरिया और लक्ष्मी कुमारी चूंडावत आदि लोक साहित्य सरंक्षक तैयार हुए। बीकानेर का यह लोक साहित्य संरक्षक समुदाय अपनें लक्ष्य तक पहुंचने में हर तरह से समर्थ बना रहा।

उधर पिलानी में भी पारीकजी ने बड़ी योग्यता से अपने शिष्यों तथा मित्रों द्वारा एक लोक साहित्य सरंक्षक सम्प्रदाय-सा चला दिया। कन्हैयालाल सहल, गणपति स्वामी, पतराम गौड़, वसन्तलाल मुरारका, मनोहर शर्मा, गींडाराम वर्मा, लालजी मिश्र आदि अनेक सज्जन विद्वान आगे चलकर चोटी

के लोक साहित्यकार निकले और अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोक साहित्य के संकलन कार्य में जुट गये।

इस काल के लोक साहित्य संग्राहकों में श्री सूर्यकरण का नाम बड़े सम्मान के साथ उल्लेखनीय है। इनके संग्रहित राजस्थान के लोक गीत [दोनों भाग] इस विषय के प्रतिनिधि ग्रंथों में है। विद्वान संपादकों ने उक्त संग्रहों में राजस्थानी लोक साहित्य का सम्यक परिशीलन किया है। इन्होंने लोक साहित्य के विविध अंगों की अच्छी तरह से छानबीन की है। देवी-देवताओं के, त्यौहारों के, आनन्दोत्सव के, दाम्पत्य प्रेम के, घरेलू जीवन के, बालिकाओं के, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रकीर्ण शीर्षकों के अन्तर्गत अनेक गीत संग्रह किये हैं। ये गीत संग्रह राजस्थानी लोक जीवन और लोक हृदय का प्रमुखत्व प्रकट करते हैं। इन सबका अधिक श्रेय पारीकजी एवं स्वामीजी को है। राजस्थानी के गीतों के अतिरिक्त राजस्थान के ग्रामगीत, जटमल की गोरा बादल की बात, राजस्थानी लोक गीत आदि आप लोगों की उल्लेखनीय लोक साहित्य संबंधी संपादित कृतियां हैं। आपने राजस्थानी के अनेक लोक गीतों के महत्वपूर्ण ग्रंथों के साथ विस्तृत प्रस्तावनाओं के सहित कृष्ण-रुक्मणी री वेलि और ढोला मारू रा दूहा जैसे लोक काव्यों का सफल संपादन भी किया है।

इन्हीं दिनों राजस्थानी भाषा की एक शोधपूर्ण पत्रिका की आवश्यकता इन्हें [पारीकजी] बहुत दिनों से अनुभव हो रही थी। सवंत् १९९२ में जब राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकता की ओर से राजस्थान त्रैमासिक पत्र किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य के संपादकत्व में निकलना आरंभ हुआ तब आपने बड़े उत्साह से स्वागत किया। पर राजस्थान पत्र अभाग्यवश दो वर्ष चलकर बन्द हो गया। आप अन्य हिन्दी के पत्रों में राजस्थानी लोक गीतों के विभिन्न प्रकार के निबंध भेजते रहे। आखिर सोसाइटी के संचालक महोदय संपादन सम्बन्धी सारी जिम्मेदारी पारीकजी को देकर पुनः पत्र निकालने को तैयार हुए। पारीकजी ने एक सुदृढ़ परामर्श मंडल बनाया। जिसमें ओझाजी, दीवान बहादुर हरविलासजी सारड़ा, महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी, मुनि जिनविजयजी, बाबू क्षितिमोहन सेन जैसे प्रकांड विद्वान सम्मिलित हुए। पत्रिका राजस्थानी नाम धारण करके बड़ी सजधज के साथ निकली। परन्तु दुख का विषय है कि प्रथमांक छपने के पूर्व ही १६ फरवरी, १९३९ को पारीकजी का देहान्त हो गया। पत्रिका तो जैसे तैसे निकलती रही पर राजस्थान रिसर्च सोसाइटी का नवीन संगठन राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता के नाम से कर दिया गया। इस तरह से लोक साहित्य की लहर सारे राजस्थानी साहित्यिकों एवं राजस्थान भर में एक बार रुकसी गई। राजस्थान साहित्य सम्मेलन से राजस्थान साहित्य और अखिल

भारतीय चारण सम्मेलन से चारण नाम की खोज पत्रिकाएं भी निकलनी शुरू हुईं। इस तरह से राजस्थान में लोक साहित्य संकलन का कार्य मनोयोग से हिन्दी के माध्यम द्वारा प्रकाश में आने लगा। जयपुर में मुनि जिनविजयजी, उदयपुर में मोतीलालजी मेनारिया और जनार्दनारायजी आदि महानुभाव संकलन कार्य में लवलीन हुए। अजमेर में जगदीशप्रसादजी माथुर एवं ऋषिदत्तजी मेहता भी क्रमशः अपने अपने पत्रों में [मीरा और राजस्थान] लोक साहित्य को स्थान देने लगे। राजस्थान की पत्रकारिता में लोक साहित्य हमेशा काफी स्थान प्राप्त करता रहा।

लोक साहित्य संकलन का प्रवृत्तिकाल— [सन् १९४३ से १९६५] इसे द्वितियोत्थान भी कहते हैं। इस काल में गीत की अपेक्षा कथा-वार्ता, कहावतें, मुहावरे, पहेलियां-प्रवाद और आलोचनात्मक लोक वार्ता साहित्य सम्बन्धी प्रबन्ध-पुस्तकों का प्रसार हुआ। उक्त काल में गीत संग्रह दो प्रकार से संकलित किये गये : १. शास्त्रीय अनुशीलन सहित और २. लोक गीतों पर भावात्मक लेख संग्रह। उपरोक्त विषयों पर राजस्थान में भी काफी कार्य हुआ। देश भर की पिछड़ी प्रान्तीय भाषाएं आगे आईं और लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक-नाट्य, लोकोत्सव, लोकानुरंजन, लोक-कला, लोक-ख्याल, लोक-खेल आदि विषयों पर शोध-निबन्ध एवं ग्रंथ लिखे जाने लगे। अनेक विद्वानों ने इस कार्य को निश्चित दिशा की ओर चलाया। लोकतंत्रीय सरकार ने भी इसको पूरा प्रोत्साहन दिया।

लोक साहित्य संस्थाओं की स्थापना — सारे देश में लोक साहित्य संकलन प्रवृत्ति काल के सुन्दर आसार बड़े महत्वपूर्ण ढंग से दिखलाई दिये। लोक संस्कृति के अध्ययन और लोक साहित्य संकलन के उद्देश्य को लेकर अनेक जनपदीय संस्थाओं की स्थापनाएं अत्यन्त शीघ्रता के साथ शुरू हुई। ब्रज में ब्रज लोक साहित्य मंडल, बड़ौदा में ओरियन्टल इंस्टिट्यूट, गढवाल में गढवाली साहित्य परिषद्, बुन्देलखंड में लोक वार्ता साहित्य परिषद्, भोजपुर में भोजपुरी लोक साहित्य परिषद्, पूना में भंडाकर रिसर्च इंस्टिट्यूट, बघेलखंड में रघुराज-साहित्य परिषद्, मालवा में मालव लोक साहित्य परिषद्, राजस्थान में भारतीय लोक कला मंडल एवं रूपायन संस्थान आदि संस्थाएं अपने इसी तात्पर्य को लेकर आगे बढ़ीं। द्वितीयोत्थान के प्रथम दर्शन में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं: —

अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन — इसका मुख्य कार्यालय जोधपुर में था। सुमनेश जोशी के प्रधान मंत्रित्व में इसकी देख रेख होती थी। संवत् २००१ में इसका प्रथम अधिवेशन पश्चिमी बंगाल दिनाजपुर [जो अब पाकिस्तान में

आ गया है] में ठाकुर रामसिंहजी के सभापतित्व में हुआ था। सम्मेलन का अब अस्तित्व नहीं है।

२. उदयपुर की हिन्दी विद्यापीठ का शोध विभाग–यह संस्था राजस्थानी साहित्य पर ठोस कार्य कर रही है। इसका उद्देश्य प्राचीन साहित्य एवं लोक साहित्य को प्रकाशित करना है। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

३. राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता – इसने पहले पहल बहुत ठोस कार्य किया। गीतों, कहावतों, कहानियों आदि का विस्तृत संग्रह तथा पत्रिका [राजस्थानी] और पुस्तक माला का प्रकाशन किया। इस संस्था में गत वर्षों में कार्य नहीं हो रहा है।

सूर्यकरण पारीक स्मारक समिति — इसकी स्थापना स्वर्गीय पारीकजी के मित्रों, प्रेमियों और शिष्यों की सहायता से हुई थी। पारीकजी के अधूरे छोड़े हुए कार्य को आगे बढाया जा रहा था। लोक गीत और लोक कथाओं के कई प्रकाशन हुए हैं। अब समाप्त प्रायः है।

सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट, बीकानेर—इसकी स्थापना बीकानेर राज्य के प्रमुख विद्वानों द्वारा नवम्बर सन् १९४४ में की गई थी। इसके प्रथम अध्यक्ष ठाकुर रामसिंहजी हुए थे, फिर डा. दशरथ शर्मा और अब श्री नाहटाजी हैं। इसमें अन्य कार्यों के साथ लोक साहित्य पर नीचे लिखे काम भी होते हैं : क. विशाल राजस्थानी मुहावरा कोष। ख. राजस्थान भारती नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन। ग. प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुसंधान और संपादन एवं प्रकाशन। बाहर से ख्याति प्राप्त विद्वानों को बुलाकर उनसे शोधपूर्ण भाषण करवाना। राजस्थान क्षेत्र के पांच सौ लोक गीतों का संग्रह भी किया जा चुका है और सात सौ लोक कथाएं संग्रहित की गई हैं। इकतीस प्राचीन खोज पुस्तकों के साथ राजस्थान के नीति-दोहों, राजस्थानी व्रत कथाएं, राजस्थानी प्रेम-कथाएं, चंदायण, भंडुली आदि लोक साहित्य की पुस्तकें भी विद्वान लेखकों द्वारा लिखवाकर प्रकाशित करवाई हैं। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

६. राजस्थानी साहित्य पीठ, बीकानेर– राजस्थानी साहित्य का अध्ययन तथा संग्रह करने वाली संस्थाओं में यह सर्व प्रथम है। इसने राजस्थानी कहावतों, मुहावरों, लोक गीतों आदि का विशाल संग्रह किया है। अब यह संस्था अस्तित्व में नहीं है।

७. राजस्थानी साहित्य पीठ, कलकता – उपरोक्त राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता का ही इस नाम से नवीन संगठन हुआ। इसने राजस्थानी शोध निबंधमाला का प्रकाशन प्रारंभ किया था। अब अस्तित्व में नहीं है।

भारत में लोक कथा संकलन कार्य—लोक कथा शब्द उन लोक प्रचलित कथानकों के लिये काम आता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी क्रमशः उपलब्ध होते रहे हैं। देश में कथाओं और आख्यायिकाओं का महान वांङ्मय लोक कथाओं की ही साहित्यिक देन है। इंदावती, लीलावती, पद्मावती, कुवलय जैसी कथाएं लोक कहानियों का साहित्यिक रूपान्तर है। वर्तमान समय में विद्वान लोगों का ध्यान अपढ़ तथा असभ्य जनसमूह के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ है, तभी से इन लोक कथाओं की मौखिक परंपराओं का संकलन, अध्ययन और संपादन होने लगा है। सन् १८५९ में जर्मन विद्वान बेनीफी का कहना था कि संसार में व्याप्त लोक गाथाओं का मूल उद्गम स्थान भारत देश ही है। इसके बाद ब्लूम फील्ड, टॉनी और पेन्जर आदि पाश्चात्य सज्जनों ने इस देश की कथाओं का गंभीर अनुसंधान किया। डा० वेरियर एल्विन के ग्रंथ फोक टेल्स ऑफ महाकौशल की भूमिका के आधार पर नार्मन ब्राउन ने बताया है कि भारत तथा उनके पड़ोसी देशों में तीन चार हजार लोक कथाएं प्रकाशित हो गई हैं। ब्लूम फील्ड ने तो भारतीय कथाओं में प्रचलित कथानक और अभिप्रायों [मोटिफ्स] का बड़े सुन्दर ढंग से अनुशीलन किया है। जिससे भारतीय लोक कथाओं का बड़ा महत्व बढ़ा है। परन्तु आजकल के विद्वान कथानकों की उद्भव भूमि के पक्ष में नहीं रहे। मगर अध्ययन की दृष्टि से भारतवर्ष बहुत ही महत्वशाली देश है। यहां संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं में अनेक मध्यकालीन लोक कथाओं का लिखित साहित्य मिलता है। तभी तो १९ वीं शताब्दी के विद्वानों ने लोक कथा का सबसे बड़ा उत्स भारत को बताया है। अतः भारतीय लोक कथाओं ने विश्व भर में अपना स्थान स्थापित कर लिया है। आज तो महाभारत, पंचतंत्र, जातक और कथासरित्सागर के सिवाय जैन साहित्य का लोक कथा भंडार भी खुलता जा रहा है। शाक्तों, पाशुपातों, नाथों, वैष्णवों, और सौगतों के ग्रंथों का प्रकाशन क्रमशः होता जा रहा है।

राजस्थान में लोक कथाएं—राजस्थान में लोक कथा को बात या वारता कहा जाता है। रचना प्रकार की दृष्टि से ये बातें गद्य, पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित रूपों में मिलती हैं। साथ ही साथ कथाओं की दो अन्य समानान्तर धाराएं राजस्थान में प्रभावित होती रही हैं। एक धारा तो उन कथाओं की थी जिनको लिपिबद्ध स्वरूप मिला और दूसरी धारा वह थी जो यहां के निवासियों के कंठों में ही जीवित रही, अर्थात् ये कथाएं केवल कही व सुनी जाती रहीं। उन्हें किसी ने लिखने का प्रयत्न नहीं किया। लोक कथाओं के यहां अखंड खजाने भरे हैं। इनको लिपिबद्ध कर लेने की परंपरा यहां प्राचीन काल से चलती आई है।

विविध वार्ताओं के सैंकड़ों संग्रह राज्य पुस्तकालयों, ज्ञान उपासरों एवं इधर उधर पुराना लोगों के पास सर्वत्र मिल जाते हैं। राजस्थान या मारवाड़ में कई लोग कथा कहने का व्यवसाय भी करते हैं। वे अपनी वंश परंपरा से लोक कथाओं द्वारा निजी आश्रयदाताओं अथवा यजमानों का मनोरंजन करते आये हैं। ऐसे व्यक्तियों में राव, भाट, रावल, मोतीसर ढाढ़ी, ढोली आदि कहानी सुनाने की सुन्दर कला को मूल रूप में प्राप्त किये हुए हैं। ये लोग एक कथा के साथ अनेक कथा कह जाते हैं। बीच में कथा प्रसंग सुभाषित के रूप में भांति भांति के छंद एवं दूहों [दोहों] का कावा देते हैं। नाना विधि की अभिनयता और ध्वनियों से सजा करके बात कहते हैं। जिसको सुनकर श्रोता लोग मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। संध्या समय सदैव मोहल्लों के लोग इकठ्ठे होकर भी कहानी कहते हैं और घरों में बच्चों को बहलाने के लिये बुड्ढ़ी नानी - दादियां इस कथा प्रथा को निभाये चलती हैं। अतः राजस्थान में मौखिक कथाओं का भरपूर भंडार है।

राजस्थानी में लोक कथा सग्रंह और प्रकाशन – राजस्थान में १४ वीं शताब्दी के गद्यांश मिलते हैं। जिनमें छोटी छोटी कथाओं के अनेक 'बाला व बोध' जैन आगमों की एक रचना परिपाटी है। उनमें से किसी एक की कुछ धार्मिक लोक कथाएं मुनि जिनविजयजी द्वारा संपादित की गई हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने १५ वीं शती की २५-३० जैन रासो की लोक कथाएं मरु भारती, शोध पत्रिका, राजस्थान भारती, वरदा, कल्पना, आदि पत्रों में प्रकाशित करवाई हैं। लगभग १७ वीं शताब्दी की दो बातें, 'खीची नींवा गंगावत री दुपहरो, और 'बात वणाव' का संपादन करके श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने राजस्थान पुरातत्व मंदिर से प्रकाशित करवाई हैं। नाहटाजी ने भी ऐसे कई वर्णन नागरी प्रचारिणी सभा काशी को प्रकाशनार्थ दिये हैं।

१७ वीं शताब्दी से राजस्थान में सम्राट अकबर के समय से ख्यातों बातों का अधिक प्रचलन होता रहा है। मगर बातों की अधिक हस्तलिखित प्रतियां १८ वीं १९ वीं शताब्दी की ही मिलती हैं। अतः ख्यातों से ही बातें बनती हैं। इस विषय के लिये राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर की परंपरा पत्रिका का का 'बात विशेषांक' [१९५८] द्रष्टव्य है। उसमें बातों के तीस वर्गीकरण लिखे हैं। श्री रावत सारस्वत ने अपने निबंध 'राजस्थानी का बात साहित्य' में कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। उनका इसी विषय पर दूसरा लेख संयुक्त राजस्थान में छपा है।

व्रत कथाओं के सम्बन्ध में श्री नाहटाजी ने एक लेख लिखा था। इस विषय में श्रीमती चंपादेवी राजगड़िया [कलकता] की १२ महीनों का त्यौहार नामक पुस्तक भी दृष्टव्य है। श्री उदयवीर शर्मा की लेखमाला, राजस्थान व्रत

कथाएं, बराबर वरदा में प्रकाशित हो रही हैं। श्री मोहनलाल पुरोहित की व्रत कथा संकलन भी इसी कड़ी की महत्वपूर्ण प्राप्ति है। कहावतों की सैकड़ों कहानियां पंडित श्रीलालजी मिश्र की लेखमाला में मरुभारती से प्रकाशित होती रही हैं। इस तरह की कहावती कहानियों के दो लेख इस प्रबंध लेखक के भी वरदा नामक शोध पत्रिका में छपे हैं। दोहे आदि पदों से सम्बन्धित लोक प्रवाद-रूप कथाएं पर्याप्त मिलती हैं। जिनमें डॉ. कन्हैयालाल सहल ने छोटे छोटे उपाख्यानों के दो ग्रंथ प्रकाशित करवाये हैं। श्री मनोहर शर्मा ने भी इनके चार शतक अपनी वरदा पत्रिका में प्रकाशित किये हैं। राजस्थानी कहावतों का उद्गम और राजस्थानी लोक कथाएं नाम से दो लेख भी लिखे हैं। जिनके पांच सौ लोक मुख पर अवस्थित कथाओं का निर्देशन भी किया है। श्री अगरचन्द नाहटा ने वाग्विलास कथा संग्रह नाम से एक निबंध प्रकाशित करवाया है। उन्होंने लिखा है कि राजस्थानी बातों के पचासों गुटके मैंने देखे हैं। उनमें से कई प्रतियों में तो ६०-७० और १०० कथाएं मिलती हैं। [१]

राजस्थानी कथाओं का प्रथम प्रकाशन – राजस्थान के प्राचीन साहित्यकारों ने सैकड़ों लोक कथाओं को लिखकर सुरक्षित रखा है। पर मुद्रण युग में पहले पहल बम्बई के प्रथम प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास ने 'रतना हमीर' की बात और 'पन्ना बीरमदे' की बात को प्रकाशित किया। संवत् १९५६ में पंडित किशनलाल श्रीधर [शिवलाल] ने अपने ज्ञान सागर छापेखाने से 'पलक दरियाव' की कथा प्रकाशित की थी। आज से ३५ वर्ष प्रथम श्री घनश्यामदासजी बिड़ला की प्रेरणा से श्री सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी बातों का कठिन शब्दों के अर्थ व टिप्पणियों के साथ सुसंपादित संस्करण प्रकाशित किया था। उनके पश्चात् वहीं से डॉ. कन्हैयालाल सहल ने चौबोली नामक राजस्थानी की एक बड़ी लोक कथा का संपादन किया। इसमें 'खींवे बींजे री बात' 'राजा मान्धाता री बात' 'सूर अर सतवादी री बात' आदि कई उप-कथाएं भी प्रकाशित हुई हैं। स्वर्गीय पारीकजी के ग्रंथ राजस्थानी बातों में भी जगदेव पंवार, जगमाल मालावत, और वीरमदे सोनगरा आदि नामों से ७ लोक कथाएं प्रकाशित हुई हैं। श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने बातों के दो संग्रह और राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर से छपवाये हैं। इन्होंने राजस्थानी, राजस्थान भारती, और राजस्थानी निन्धमाला में हस्तलिखित प्रतियों से संपादित कर बहुत सी बातें प्रकाशित करवाई हैं। जिनकी सूची निम्न प्रकार है। १.राजा भोज माघजी पंडित और डोकरी री बात, २. बात देपालदे री, ३. बात साहूकार रै वेर री, ४. बात जसमा ओडणी री, ५. फोफानंद री, ६. विणजारे विणजारी री, ७. सयणी चारणी

१ वरदा लोक साहित्य विशेषांक पृ १०१

री , ८. सांतल सोम री , ९. दूदे जोधावत री , १०. विसनजी वेखरच री आदि। आपने सैकड़ों वातों की सूची भी प्रकाशित करवाई है। ऐसी सूची — (३७०. राजस्थानी वातों की) रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत ने भी अपने मांजल-रात ग्रंथ में प्रकाशित की है। इन्होंने मूमल, गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां, के रे चकवा वात , हुंकारो दो सा आदि कथा ग्रंथों में लोक कथाएं लिखी हैं। श्री अगरचंद नाहटा ने वरदा , जैन-जगत, अमर-ज्योति आदि पत्र पत्रिकाओं में राजस्थानी लोक वातों व कथाओं को प्रकाशित करवाया है। उपरोक्त महाशय ने अपने भतीजे श्री भंवरलाल नाहटा से जैन कवियों के लोक कथाओं संबंधी रासों का सार लिखवाकर प्रकाशित करवाया है। श्री रावत सारस्वत ने अपनी मरुवाणी पत्रिका में अनेक लोक कथाओं को प्रकाशित किया है। श्री बद्री प्रसादजी साकरिया ने भी उपरोक्त पत्रिका में लोक कथाएं भेजी हैं। श्री पुरुषोत्तमदास मेनारिया का राजस्थानी लोक कथाओं में पूर्ण सहयोग है। उनका राजस्थानी लोक कथा नामक लेख आजकल (मई १९५४) के लोक कथा अंक में प्रकाशित हुआ है , जिसके अनुसार इन्होंने अपने पास ५०० अनेक कथाओं का संग्रह बताया है। इनके ४ कथा संग्रह जयपुर से और एक ' राजस्थानी लोक कथाएं ' आत्माराम एंड. सन्स दिल्ली से प्रकाशित हो चुके हैं। श्री कन्हैयालाल सहल ने लोक कथाओं के संबंध में बहुत ही कार्य किया है। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपाख्यानों के दो भाग और प्रकाशित करवाये हैं। इनकी राजस्थानी लोक कथाएं और वीर गाथाएं नाम की दो पुस्तकें वानर प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। विशेषकर राज-स्थानी लोक कथाओं के मूल अभिप्रायों पर ' नटी तौ कही मत ' नामक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। आप अभिप्रायों [मोटिफ्स] के संबंध में व्यापक रूप से अध्ययन कर रहे हैं। जो लोक कथाओं के लिये विशिष्ट प्रयत्न है। राजस्थानी लोक साहित्य के विविध अंगों को प्रकाश में लाने वाले कर्मठ साहि-त्यिक श्री मनोहर शर्मा का नाम भी लोक कथाओं के प्रसंग में उल्लेखनीय है। इन्होंने राजस्थानी लोक कथाओं पर कई महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित किये हैं और गीत कथा नाम से प्राचीन ९ वीरों की शौर्यपूर्ण कथाएं लिखी हैं। इन पंक्तियों के लेखक का भी एक कथा गीत निबंध जसमल ओडणी नाम से मरुवाणी [संवत्-२०१२] में प्रकाशित हुआ है। और बटोही नाम का एक कथा काव्य मारवाड़ी भात भरने की प्रथा पर लिखा है। कई मौखिक कथाओं को श्री मुरलीधरजी व्यास ने भी हिन्दी रूपान्तरित किया है। इन के साथ श्री मोहन लालजी प्रोहित ने भी लोक कथा के संग्रह तैयार किये हैं। मोहनलालजी स्वतंत्र रूप से भी लोक कथा कार्य कर रहे हैं। श्री मनोहर प्रभाकर एवं यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा की दृष्टि भी इस क्षेत्र की ओर खूब है।

हिन्दी और गुजराती के क्षेत्रों से भी कुछ राजस्थानी कथाओं के संग्रह ग्रंथ निकले हैं। श्री निरंजन वर्मा और जयपाल परमार ने लोक कथा ग्रंथावली से प्रकाशित होने वाले 'देश देश नीं लोक कथाओं' का पांचवा भाग राजस्थानी वातों के नाम से भारतीय साहित्य संस्थान लिमिटेड, अहमदावाद से प्रकाशित करवाया है। सौराष्ट्र के अग्रणी लोक साहित्यिक श्री झवेरचंद मेघाणी ने 'सौराष्ट्र नीं रसधार' के पांच भागों में तथा अन्य गुजराती ग्रंथों में राजस्थानी लोक कथाओं को गुजराती में प्रकाशित करवाया है। पूना से श्री नारायणदास धूत राजस्थानी वीर नाम की पत्रिका निकालते हैं जिसमें राजस्थानी विद्वानों के लोक साहित्य संबंधी लेख छपते हैं। इस प्रबंध के लेखक ने भी अपनी प्रकाशित पुस्तक ग्होयी (संवत् २०१४) में वाणी को बैंर, रोही री रींछ, फोगसी री न्याव, काछबौ, फदड़पंच आदि लोक कथाएं संकलित की हैं। ५० लोककथाओं की पुस्तक 'घर की रेल' को लेखक शीघ्र ही प्रकाशित करवाने वाला है। श्रीकान्त व्यास ने राजस्थानी लोक कथाएं नामक पुस्तक किताव महल इलाहाबाद से प्रकाशित करवाई है। यह भारतीय लोक कथामाला की तीसरी पुस्तक है। राजस्थानी प्रसिद्ध लोक कथाओं पर सैकड़ों ख्याल भी लिखे जा चुके हैं। जिनके संबंध में श्री मनोहर शर्मा एवं श्री अगरचन्दजी नाहटा के निबंध भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर की लोक कला नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। इनके अलावा आजकल कुछ उदीयमान लोक कथा संग्राहक हमारे ध्यान में और आये हैं। इनमें सर्व प्रथम श्री गोविन्द अग्रवाल हैं। इन्होंने मरु भारती में क्रमशः १५०० लोक कथाएं 'राजस्थानी लोक कथा कोश' नामक शीर्षक से प्रकाशित करवाई हैं और अभी शीर्षक चालू है। श्री मोतीसिंह जी राठौड़ भी कथाएं लिखते हैं। श्री चन्द्रदान चारण, श्री सूर्यकरण पारीक और श्री मूलचन्द प्राणेश आदि महानुभाव भी भारतीय शोध संस्थान वीकानेर में लोक साहित्य अनुसंधान के साथ कथा अन्वेषण भी कर रहे हैं।

राजस्थान में लोक वार्ता साहित्य के संग्रहालय—वीकानेर राजकीय अनूप संस्कृत पुस्तकालय में अच्छा लोक साहित्य उपलब्ध होता है। जैन लोक साहित्य का सबसे बड़ा संग्रह 'अभय जैन पुस्तकालय' बीकानेर है। वीकानेर के ज्ञानभंडार में भी लोक कथाओं के कई गुटके मिलते हैं। उदयपुर में सरस्वती भंडार, कलकत्ता में राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, बिड़ला पुस्तकालय, बंगाल हिन्दी मंडल, राजस्थान पुरातत्व मंडल जोधपुर, जयपुर, राजस्थान शोध संस्थान उदयपुर आदि लोक वार्ता साहित्य के अच्छे संग्रहालय हैं। गुजरात और जैसलमेर के उपासरे भी लोक साहित्य के वड़े संरक्षक हैं।

हिन्दी में जनपदीय कहावतों का प्रकाशन — लोकोक्तियों के अन्तर्गत मुहावरे,

अनुभवप्रसून सांकेतिक शब्द योजना और पहेलियां आती हैं। राजस्थानी विद्वानों ने उनके भिन्न भिन्न रूपों का पता लगाकर मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किया है। राजस्थानी कहावतों के संकलन की निसन्देह सफलता है। डा० श्री कन्हैयालाल सहल एक ऐसे प्रामाणिक विद्वान हैं कि उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी संकलित कहावतों में राजस्थान के जन जीवन तथा विचारों पर गहरा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपनी पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंश (डॉ. सहल द्वारा ही लिखी) ६२ पृष्ठों की भूमिका में लिखा है। जिसमें कहावतों की पृष्ठभूमि पर अत्यन्त व्यापक रूप में प्रकाश डाला है। वेद, उपनिषद, संस्कृत साहित्य इसे लेकर विदेशों की कहावतों के विकास का उल्लेख भी इस भूमिका में है। राजस्थान के साहित्य के संबंध में जो मूल्यवान शोध कार्य हो रहा है, यह ग्रंथ उसमें एक मूल्यवान देन है।

सहलजी की हाल ही में यह पुस्तक [राजस्थानी कहावतें] अर्थ सहित बंगाल हिन्दी मंडल कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुई है। जिसमें २१०६ विवेचनपूर्ण कहावतें संकलित हैं। इससे पहले राजस्थानी कहावतों पर एक शोधपूर्ण प्रबंध भी इन्होंने लिखा था। जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डाक्टरेट की उपाधि भी प्रदान कर दी गई। वह ग्रंथ (१९५८) में भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली से छपा था। सहलजी ने इस विषय की पूरी छान बीन करने की ठान रखी है। प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी, मुरलीधरजी व्यास द्वारा संपादित संवत् २००६ में राजस्थानी कहावतों के दो बड़े संकलन राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ने प्रकाशित किये हैं। इनसे पूर्व कहावतों पर जो ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं वे केवल गिनती के ही हैं। जोधपुर के श्री जगदीशसिंहजी गेहलोत द्वारा संकलित राजस्थान की कृषि कहावतें, श्री लक्ष्मीलाल जोशी द्वारा संकलित मेवाड़ की कहावतें, श्री रतनलाल मेहता की मालवीय कहावतें, श्री मेनारिया द्वारा संग्रहित राजस्थानी भीलों की कहावतें आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मालवी बोली में श्री वसन्तीलाल बंग ने संकलित सामग्री में लगभग २ हजार से अधिक लोकोक्तियां और एक हजार मुहावरे संग्रह किये हैं।[1] और श्री ओमप्रकाश अनूप ने मालवी लोक पहेली पर निबंध लिखा है। राजस्थानी में भी ऐसे बहुत से लेख मिलते हैं।

प्रवृत्ति काल या द्वितीयोत्थान के दूसरे दशक में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली संस्थाएं व पत्रिकाएं — आजकल राजस्थान के हर एक शहर में विद्वानों द्वारा लोक साहित्य संग्राहक संस्थाएं प्रारंभ होने लगी हैं। उन संस्थाओं के कार्यकर्ता सर्व प्रथम एक शोध पत्रिका निकालकर संस्था का नाम सार्थक

---

१. लोक कला निबंधावली भाग २

करते हैं। इस तरह से कई लोक संस्थाएं लोक पत्रिकाएं निकाल रही हैं। आय वृद्धि करने, संस्था बनाने और अपनी विद्वता एवं साहित्य प्रेम का परिचय देने के लिये राजस्थानी कर्मठ विद्वान अपनी अपनी पत्रिकाओं को लोक साहित्य से ही संपूर्ण करते हैं। वे अपने देश जाति की सभ्यता के विकास की, उनके जीवन की गति विधि को और उनके सांस्कृतिक धरातलों के विभिन्न स्तरों की झांकियां मौखिक साहित्य में उपलब्ध कर आनन्द मग्न रहते हैं। वे ही स्वान्त-सुखाय सेवा करते हैं और अपने इस परमहित रंजक साहित्य को विलुप्त होने से बचाते हैं। ऐसी राजस्थानी आधुनिक लोक साहित्य संस्थाएं ये हैं :

१ - भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर — इस संस्था को हम बहुमुखी लोक प्रवृतियों के कारण प्रथम स्थान देते हैं। इसकी मुख्य प्रवृतियों में खोज विभाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रवृति है। इसने लोक गीतों के संगीत पक्ष को लेकर विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक कार्य किया है जो संभवतः राजस्थान में ही नहीं भारतवर्ष में भी प्रथम गिना जा सकता है। यहां तक गीतों की प्रमुख ध्वनियों को ध्वनि संकलन यंत्र द्वारा संकलित करते हैं और खोज की हुई एकत्रित मूल्यवान सामग्री से, फोटो फिलम विभाग के कर्मचारी उस सामग्री के मूर्त रूप को स्थिर और चलचित्रों द्वारा अंकित करते हैं। यहीं से लोक कला नाम की पत्रिका निकलती है। यह अपने विषय की एकमात्र भारतीय पत्रिका है। इसमें लोक कला संबंधी खोज और अध्ययन पूर्ण सामग्री रहती है। यहां से करीब डेढ़ दर्जन लोक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से राजस्थान के लोक संगीत, राजस्थानी लोकोत्सव, राजस्थानी लोक-नृत्य, राजस्थानी लोक-नाट्य, राजस्थान के लोकानुरंजन, लोक कला निबंधावली [भाग १, २, और ३] राजस्थानी लोक जीवन चित्रमय, और राजस्थानी लोक गीतों का स्वर सौन्दर्य आदि मुख्य हैं। संस्था अभ्युदय के उच्च आसन पर आसीन है।

२ - राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर — इस संस्था से मरुवाणी [संवत् २०१०] नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसमें लोक कथा, लोकगीत और कहावतें मुहावरे आदि प्रकाशित होते हैं। वास्तव में लोक साहित्य और राजस्थानी भाषा का प्रचार करने में इसने सबसे अधिक कार्य किया है। संस्था संचालक एवं पत्रिका संपादक श्री रावत सारस्वत सर्वश्रेष्ठ लोक कार्य-कर्ता हैं।

३ - राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ — राजस्थानी साहित्य समिति बिसाऊ ने महाकवि ईसरदास के सम्मान में ईसरदास आसन की स्थापना की है। इस आसन से प्रति वर्ष कम से कम एक भाषण विशेष रूप से तैयार करवाकर प्रचारित करने की योजना है। डॉ. मनोहर शर्मा और श्री तुलारामजी गौड़ एम. ए.

के सम्पादकत्व में वरदा नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका भी निकलती है । डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में इस पत्रिका ने लोक साहित्य और लोक वार्ता के संग्रह प्रकाशन का और व्याख्या का जो स्तर बनाया है वह देश भर में अपने ढंग का है ।

४ - **राजस्थानी शोध संस्थान , जोधपुर** — संपादक श्री नारायणसिंहजी भाटी की देख रेख में परंपरा नामक शोध पत्रिका प्रकाशित होती है। राजस्थानी लोक साहित्य , भाषा , कला व संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है । इसका बात अंक बड़ा ही वैविध्यपूर्ण है । परंपरा का प्रथम अंक लोक साहित्य पर प्रस्तुत किया गया है । इस अंक में कोमल कोठारी एवं विजयदान देथा के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं ।

५ - **बिड़ला एज्युकेशन ट्रस्ट का राजस्थानी शोध विभाग, पिलानी** — लोक साहित्य प्रकाशन के उपरान्त मरुभारती नाम की एक त्रैमासिक शोध पत्रिका का बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रकाशन होता है। यह राजस्थानी लोक साहित्य और संस्कृति की प्रमुख पत्रिका है । इसके संपादक डॉ. कन्हैयालाल सहल हैं । इसमें लोक कथा के मूल अभिप्रायों [मोटिफ्स] पर लेख लिखे जाते हैं और लोक कथा कहावतें प्रहलिका साहित्य को प्रमुखता दी जाती है ।

६ - **भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान , बीकानेर** — यह संस्था भी आज - कल शोध कार्य में प्रयत्न शील है । जिसमें केई प्रतिष्ठित विद्वान कार्य करते हैं। खोज , प्रकाशन के सिवाय यहां से एक लोक साहित्य पत्रिका भी निकलने वाली है। इसके कुलपति श्री नरोत्तमजी स्वामी हैं । श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा, सत्य - नारायणजी पारीक , मूलजन्दजी पारीक आदि महानुभाव इसके मुख्य कार्य - कर्ता हैं ।

७ - **राजस्थान विश्व भारती , बीकानेर** — राजस्थान विश्वभारती संस्था भी लोक साहित्य कार्य को बड़े उत्तम ढंग से कर रही है । इसकी पत्रिका निकालने की योजना पूर्ण हो चुकी है । यहां के व्यवस्थापक श्री विद्याधरजी शास्त्री हैं । श्री गोरीशंकरजी आचार्य संस्था के कुलपति हैं । बीकानेर डिवीजन के बड़े बड़े शहरों से अच्छे अच्छे संस्कृत के विद्वान इस संस्था की सदस्यता ग्रहण करके अपना अहोभाग्य समझते हैं ।

८ - **पुरालेख विभाग बीकानेर** – यह राजकीय अनुसंधान संस्था श्री नाथूरामजी खड़गावत की अध्यक्षता में कार्य करती है । इसका कार्यालय हाल (१९६३) ही में बीकानेर आया है । श्री खड़गावतजी राजस्थान में चोटी के अन्वेषक माने जा चुके हैं । वास्तव में ये कर्मठ शोधकर्ता एवं आदर्श विद्वान हैं । आपके निर्देशन में

एक महत्वपूर्ण ग्रंथ आजादी का इतिहास लिखा जा रहा है। राजस्थान भाषा एवं प्रशासन कार्य में राजस्थानी के उपयोग की अतुलनीय सामग्री यहां संग्रहीत है। इस तरह से राजस्थान में शोधपूर्ण पत्र - पत्रिकाओं की घटा सी उमड़ रही है। राजस्थान विकास, संयुक्त राजस्थान, अमर ज्योति, कल्पना और वाग-विलास आदि अनेक पत्रों द्वारा लोक साहित्य संकलन एवं प्रकाशन हो रहा है। रतनगढ़ से ओळमो और कुरजां बीकानेर से वातायन, जोधपुर से ज्वाला और प्रेरणा पत्र निकलते हैं। इन सबमें पर्याप्त लोक साहित्य समावेशित रहता है। इस समय राजस्थानी लोकवार्ता के क्षेत्र में आकाश वाणी का योगदान नहीं भुलाया जा सकता। असंख्य लोक गीतों, लोक नाट्यों लोक गाथाओं एवं लोक कथाओं का प्रसारण यहां से हुआ है और होता रहता है। यहां राजस्थान के अनेक लोक गायकों को अपनी कला का पुरस्कार भी मिला है और एक तरह से उसकी सुरक्षा का साधन भी निर्मित हुआ है। आकाश वाणी ने लोक वार्ता विषयक अनेक वार्ताएं भी प्रसारित की हैं।

राजस्थान की संस्कृति के संपूर्ण अध्ययन की दृष्टि से लोक वार्ता के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा है, वह बहुत शीघ्र ही राजस्थानी भाषा एवं राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण तथ्य सिद्ध होने वाला है।

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम] उदयपुर–राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित यह संस्था प्रदेश की साहित्यिक गतिविधि को प्रोत्साहित और संगठित करने हेतु निर्मित की गई है। इसकी स्थापना सन् १९५८ में हुई। इस संस्था के माध्यम से लोक साहित्य के क्षेत्र में भी कार्य प्रारंभ हुआ है। पुस्तक प्रकाशन की योजना में कुछ बालोपयोगी लोक कथाओं, शोध ग्रंथों एवं अपनी मासिक पत्रिका में लोक साहित्य संबंधी विषयों के लेख प्रकाशित किये हैं। अकादमी ने लोक साहित्य के संरक्षण एवं संग्रह आदि समस्या पर सेमीनार एवं सिंपोजियम भी आयोजित किये हैं। राजस्थान के लोक साहित्य अध्येता साहित्य अकादमी से आर्थिक सहायता प्राप्त करके अपने कार्य को बढ़ाने के लिये भी उत्सुक हैं। राजस्थान की साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं को भी अकादमी ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर – सन् १९५९ में राजस्थान सरकार ने इस संस्थान की स्थापना की। संगीत नाटक अकादमी ने लोक संगीत के पक्ष पर महत्वपूर्ण कार्य संपादित किया है। लोक गीतों की छः पुस्तकों में पाठ संग्रह प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार श्रीमती कमला सोमाणी द्वारा संपादित एवं स्वरलिपि-बद्ध पुस्तक गीतायन प्रकाशित की है। हाल ही में सुश्री सुधा राजहंस की पुस्तक 'चिरमी' भी स्वरलिपि सहित प्रकाशित हुई है। इसमें जैसलमेर मारवाड़ क्षेत्र के लंगा जाति के गीतों का संकलन है। लंगा जाति के गायन

प्रकार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अकादमी ने राजस्थान के लोक वाद्यों का महत्वपूर्ण संग्रह किया है और उनकी एक सूची भी प्रकाशित की है। लगभग ७००-८०० घंटों का लोक संगीत रेकॉर्ड भी किया है। लोक नाटक एवं लोक गाथाओं का रेकॉर्डिंग भी किया गया है।

रूपायन संस्थान, बोरुन्दा—गांव में स्थापित यह संस्था प्रमुखतया लोक वार्ता के क्षेत्र में ही काम कर रही है। इस संस्था ने अपने उद्देश्य में स्पष्टतः लिखा है कि वह राजस्थान लोक वार्ता क्षेत्र में ही कार्य करेगी। संस्थान ने अब तक नो वृहत भागों में राजस्थानी लोक कथाओं का प्रकाशन 'बातां री फुलवाड़ी' के नाम से किया है। यह कार्य राजस्थानी भाषा में ही किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वांणी नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी चल रहा है। गांव में ही संस्था का अपना मुद्रणालय है। संस्थान ने हजारों की संख्या में लोकगीत, लोक-कथाएं एवं कहावतें मुहावरे एकत्रित कराये हैं जो शनः शनैः प्रकाशित किये जाने हैं। 'बातां री फुलवाड़ी' का लेखन कार्य श्री विजयदान देथा द्वारा किया जा रहा है। हजारों पृष्ठों की सामग्री राजस्थानी भाषा में प्रकाशित हो चुकी है।

राजस्थान संस्कृति परिषद, जयपुर — यह संस्था रानी लक्ष्मीकुमारीजी चूड़ावत द्वारा संचालित है। संस्था का मुख्य कार्य राजस्थानी भाषा के प्रकाशन करना एवं राजस्थान की संस्कृति के उत्थान के लिये प्रयत्न करना है। लोक गीतों एवं लोक कथाओं के काफी प्रकाशन यहां से हुए हैं।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर—इस संस्था को भी राजस्थान सरकार ने स्थापित किया है। संस्था का मुख्य कार्य राजस्थान में प्राप्य हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह एवं उनको संपादित करके प्रकाशित करना है। राजस्थानी, ब्रज, पाली, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा के हजारों हस्तलिखित ग्रंथ संस्था के संग्रह में है। इसी संग्रह में ऐसी बहुतसी सामग्री है जिसका संबंध सीधा लोक वार्ता से है। कथा, विश्वास, मान्यता एवं विचारों का बहुत बड़ा आगार इस संग्रहालय में प्राप्त हो जाता है। यहां से दो तीन कथा संग्रहों का प्रकाशन भी किया गया है।

हस्तलिखित ग्रंथ साहित्य में प्राप्त लोक वार्ता का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। वस्तुतः यह एक बहुत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काल निर्णय का साधन भी है।

अन्य अध्ययन क्षेत्र — राजस्थान प्रदेश के राजनैतिक संगठन के उपरान्त राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में अनेक विभाग भी लोक वार्ता संबंधी कार्यों में अपना योगदान दे रहे हैं। इनमें प्रमुख केन्द्रीय कृषि मंत्रालय

के अन्तर्गत कार्य करने वाला एरिड जॉन विभाग है, जो जोधपुर में स्थापित है। मुरुस्थलीय प्रकृति और जन जीवन पर पर्याप्त सामग्री यहां एकत्रित की जा रही है और उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार राज्य सरकार का जनगणना विभाग भी विभिन्न ग्रामों एवं जातियों के अध्ययन तैयार कर रहा है। इन्हीं के साथ राज्य सरकार का गज़ेटियर विभाग भी जिले वार जन सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रामाणिक सामग्री को एकत्रित करने में संलग्न है।

केन्द्रीय सरकार के जिओलॉजिकल एवं बॉयोलॉजिकल सर्वेक्षण विभाग भी तथ्यों को संग्रहीत कर रहे हैं।

इनके अलावा राजस्थान के तीनों विश्वविद्यालय [जोधपुर, जयपुर एवं उदयपुर] के अनेक स्नातक डॉक्टरेट के लिये लोक वार्ता संवंधी शोध ग्रंथ तैयार कर चुके हैं और अभी भी कर रहे हैं। लोक वार्ता विषयक ग्रंथ डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल, डॉ. कन्हैयालाल शर्मा, डॉ. चंद्रशेखर भट्ट, डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. ओमानंद सारस्वत आदि का कार्य सामने आ चुका है। लगभग २५ - ३० स्नातक अव भी इसी विषय पर अपना कार्य संपन्न कर रहे हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं समाज शास्त्र विभाग में लोक वार्ता संवंधी एक एक प्रश्न-पत्र को भी एम. ए. कक्षाओं के लिये स्वीकृत किया गया है। अन्य विश्वविद्यालय भी इस दिशा में निर्णय लेने वाले हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त राजस्थान के लगभग सभी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र भी लोक वार्ता संबंवी सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं।



❁ नृतत्वशास्त्री के लिये लोक - वांगमय, सम्पूर्ण संस्कृति न होकर सम्यक संस्कृति का केवल एक अंग - मात्र है। इसके अंतर्गत गाथाएं, आख्यान या अवदान, लोक कथाएं, लोकगीत, कहावतें, पहेलियां, गीति - कथाएं तथा और भी कम महत्व के कुछ प्रकार समाहित हो सकते हैं, किन्तु लोक कला, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक-पहिनाव, लोक दवा - दारू, लोक रीति - रिवाज व लोक विश्वास इसमें शामिल नहीं किये जा सकते। निस्संदेह किसी भी शिक्षित व अशिक्षित समाज में इन सबका अध्ययन नितांत आवश्यक है। सभी लोक वांगमय मौखिक रूप से सतत उपलब्ध होता रहता है, किन्तु समाज की सभी मौखिक उपलब्धियां लोक - वांगमय में समाहित नहीं की जा सकतीं। —विल्यम बॉस्कम

२

राजस्थान और राजस्थानी

लोक वार्ता के अध्ययन के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से निर्मित विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में अपने कार्य को सीमित किया जाय। यों लोक वार्ता के तत्व विश्वजनीन होते हैं, किन्तु उनका उद्भव एवं विकास निपट राष्ट्रीयता अथवा क्षेत्रीयता ग्रहण किये हुए रहते हैं। मनुष्य, जिस प्रकार अपने निपट वैयक्तिक एवं शारीरिक रूप में विश्वजनीन एकता का आभास देता है [वह चाहे किसी धर्म, देश या जाति का हो] उसी प्रकार लोक वार्ता में विश्व-व्याप्त समानता के दर्शन होते हैं। इस समानता के उद्भव की पृष्ठभूमि में क्षेत्रीय विविधता, विश्वासों की विभिन्नता एवं रंग-विरंगी संस्कृतियों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

इसी मान्यता के आधार पर राजस्थान की लोक वार्ता को समझने का उपक्रम किया जाना यहां अभिप्रेत है। राजस्थान नामक जो राज्य आज भारत में निर्मित हुआ है अर्थात् उसका जो भौगोलिक दायरा कायम हुआ है, उसके पीछे संस्कृति एवं इतिहास के कुछ विशिष्ट कारण हैं। राजस्थान के वृहत राज्य के निर्माण के पूर्व (सन् १९४८) इक्कीस देशी रियासतों में यह भूभाग विभक्त था। ये देशी रियासतें भी अपने इतिहास क्रम में अनादि काल से नहीं चली आ रही थीं, अपितु मध्ययुग की असंख्य लड़ाइयों के बीच जन्मी थीं। कुछ रियासतें तो अंग्रेजों के राज्य काल में ही निर्मित हुई थीं। रियासतों एवं राजाओं के निरंतर परिवर्तन-क्रम में सांस्कृतिक क्षेत्र की निर्मिति का क्रम भी अपनी स्वाभाविक एवं सहज गति से चलता रहा। इस क्षेत्र के निर्माण के लिये यदि सबसे महत्वपूर्ण कोई तत्व रहा तो वह था भाषा की एकता अथवा विभिन्न जाति समूहों से उद्भूत विश्वासों व परम्पराओं का। इस मानवीय तथ्य पर विभिन्न युद्धों और नरपतियों के रहने-बदलने से कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लोक-जीवन अपनी ही आर्थिक गति विधियों के स्वाभाविक क्रम में लगा रहा। साथ ही साथ यह भी

निश्चित है कि इस स्वाभाविक गति में तथाकथित इतिहास की परिस्थितियों ने अपनी ओर से व्यवधान अथवा अवरोध अवश्य उत्पन्न किया। किन्हीं अंशों में यह भी सत्य है कि राजस्थान के इतिहास में जो राज बने या बिगड़े, वे स्थानीय विभिन्न जातियों की प्रबलता और अप्रबलता पर ही निर्भर रहे और उनके कारण जातीय संसर्ग का संतुलन कभी बना और कभी बिगड़ा। किन्तु उनके निरन्तर अन्यान्योश्रित रहने के कारण सामंजस्य और परस्पर सांस्कृतिक विश्वासों का लेन-देन चलता रहा।

अतः कभी कभी यह जो प्रश्न सामने आता है कि राजस्थान नामक राज्य की कल्पना सन् १९४८ के ही बाद की है – सत्य नहीं है। राजनैतिक कारणों से बनने-बिगड़ने वाली भौगोलिक सीमाओं के परिवर्तन से कोई राष्ट्र या जाति या प्रादेशिक संस्कृति का क्षेत्र न कम होता है और न अधिक। इसका मूलाधार तो मानव वंशीय समस्याओं में निहित रहता है और अपनी प्राकृतिक अवस्थाओं के साथ संपर्क में आने वाली संस्कृति से जुड़ा रहता है। संस्कृति बहुत अर्थों में राजनीति और सत्ता की अनुचारिणी नहीं होती। यह भी इतना बड़ा सत्य है जिसने मुख्यतः लोक वार्ता या लोक संस्कृति के अध्ययन को न केवल बढ़ावा दिया बल्कि यह स्थापित भी किया है कि समाज के सतही ढांचे के नीचे जो मानवीय लोक वार्ता है वही इतिहास का वास्तविक आधार बन सकती है।

इस दृष्टि से यदि हम राजस्थान नामक प्रदेश में विलीन हुई रियासतों का सांस्कृतिक मूल्यांकन करें तो सहज ही ज्ञान होता है कि राजस्थानी भाषा के माध्यम से सभी रियासतों में एक ही सूत्र मिलता है। वह चाहे ढूंढ़ाड़ के नाम से जाना जाता हो, चाहे मेवाड़, मारवाड़, गोडवाड़, चौरासी, मंडांण, हाड़ौती, शेखावाटी, जांगल और माड के नाम से जाना पहिचाना जाता हो। उपरोक्त नामावली में मैंने जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि रियासतों के नाम गिनाने उचित नहीं समझे हैं क्योंकि ये नगर तो अपने निकट के ऐतिहासिक काल में ही विशिष्ट रियासतों की राजधानियां बनी हैं। उनसे न संस्कृति का आभास मिलता है और न किसी स्पष्ट क्षेत्रीय विशेषता का।

फिर भी यह सत्य है कि इस राजस्थान नाम से आभूषित किये जाने वाले भूभाग को ठीक इसी संज्ञा के नाम से भारतीय इतिहास में नहीं जाना जाता था। कभी कभी प्राचीन ग्रंथों में कहीं कहीं 'रायथान' नाम अवश्य मिलता है जिसे कर्नल टॉड ने 'राजस्थान' के नाम से अभिहित कर दिया। राजस्थान के नाम-करण के पूर्व इस प्रदेश को 'राजपूताना' ही कहा जाता था। ऐसे नाम-करण का जो कारण कर्नल टॉड ने दिया है, वह भी अत्यंत स्पष्ट है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रारंभिक अस्तित्व के समय इस प्रदेश की अधिकांश रियासतें राजपूत शासकों

द्वारा संचालित थी और इस प्रदेश को राजपूतों के आभिजात्य वर्ग के साथ ही प्राप्त किया जा सकता था। अतः राजपूताना का नाम-करण कर्नल टॉड ने किया। उस समय भी इस प्रदेश की जातीय संस्कृति तथा भाषात्मक एकता के कारण 'एक रियासती समूह' के रूप में मान लिया गया था। यों गुजरात, उत्तर-प्रदेश व बिहार में भी क्षत्रिय या राजपूतों के राज्य कायम थे किन्तु उन्हें 'राजपूताना' की कल्पना के साथ नहीं जोड़ा गया।

भारत के इतिहास में जब कभी इस पश्चिमी भाग को एक नाम से पुकारने [सांस्कृतिक समानता के कारण] की जरूरत पड़ी तभी आज की ही सांस्कृतिक सीमाओं के रूप में उसका उल्लेख हुआ है, किन्तु एक तत्व पर हमारी दृष्टि अवश्य पहुंचती है।

यह तत्व है प्रवासी राजस्थानियों का नाम-करण। भारत के लगभग सभी प्रदेशों में राजस्थान की कुछ जातियां अपने व्यवसाय के लिये फैली हुई हैं। वह चाहे सुदूर बंगाल, मद्रास, आसाम, उड़ीसा हो चाहे निकट के ही गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब सिंघ हो। सभी जगह राजस्थानियों के हाथ में व्यापार की महत्वपूर्ण बागडोर है। इन राजस्थान-वासियों को इन सभी प्रदेश में एक ही नाम से संबोधित किया जाता है और वह है मारवाड़ी, अर्थात् मारवाड़ का निवासी।

अतः हम देखने का उपक्रम करेंगे कि मारवाड़ कौनसा स्थान है। यों तो मारवाड़ रियासत वह कहलाई जो राजपूताने में जोधपुर की राजधानी के साथ राठौड़ वंश द्वारा संचालित की जाती थी। यह नाम मेवाड़ [मेदपाट] जांगल [बीकानेर की रियासत] माड [जेसलमेर] मेरवाड़ा [अजमेर] आदि देश-नामों के समान प्रयुक्त हुआ है और राजनैतिक दृष्टि से जोधपुर के तथाकथित तहसीलों एवं जिलों तक ही मारवाड़ का सीमित अर्थ है। किन्तु जिन मुख्य कारणों से 'मारवाड़ी' शब्द का अन्य प्रदेशों में प्रचलन हुआ उसका मूल जोधपुर के मारवाड़ में न होकर, उस संपूर्ण क्षेत्र से है जो भौगोलिक रूप से मरुस्थल है या रेगिस्तानी है। इस क्षेत्र में मारवाड़, जैसलमेर [माड], बीकानेर बाटी, शेखावाटी, ढूंढाड़ का अधिकांश भाग आ जाता है। यह संपूर्ण क्षेत्र मरुस्थलीय है। साथ ही साथ अन्य प्रदेशों में जो लोग सदियों से व्यापार के लिये गये, वे सभी इन्हीं क्षेत्रों से उठे हैं। शेखावाटी के लोग मुख्यतया पूर्वीय भारत में, बीकानेर बाटी के महाराष्ट्र की ओर तथा मारवाड़-गोडवाड़ के लोग दक्षिण की ओर व्यापारिक कार्यों हेतु गये। राजस्थान के अन्य भागों से अवश्य इतनी बड़ी संख्या में व्यापारी बाहर नहीं गये। यही कारण रहा कि मरुस्थल से जाने वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में तो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों

वाले थे किन्तु उनके देश मरुस्थल से जानें वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में तो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों वाले थे किन्तु उनका देश मरुस्थल था। और वे इसीलिये मारवाड़ी थे।

'मारवाड़' शब्द का महत्व यहीं शेष नहीं हो जाता। राजस्थान के क्षेत्र में जिस भाषा का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है—उसको भी मरुभाषा के नाम से ही अभिहित किया गया है। यही भाषा आज के सारे राजस्थान की माननीय और व्यक्त भाषा है जो प्राचीन काल से थोड़े बहुत स्थानीय भेद एवं उच्चारण गत वैशिष्ठ्य के साथ समूचे प्रदेश में प्रचलित थी और अब भी है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के हजारों कवियों एवं साहित्यकारों ने एक टकसाली स्वरूप का ही अपने लेखन में उपयोग किया। यह कवि चाहे मेवाड़ के रहे हों, चाहे मारवाड़, बीकानेर, शेखावाटी या हाड़ौती के रहे हों। काव्यानुशासन एवं भाषानुशासन की दृष्टि से मरुभाषा का स्वरूप ही केन्द्रीय अथवा न्यूक्लियस के तथ्य को परिपोषित करता रहा।

हमारे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में राजस्थान के 'स्थान पर मरु प्रदेश' मरुधर, मारूदेश और राजस्थान के स्थान पर मरुदेश—भाषा, मरुभाषा और मारू भाषा इत्यादि शब्द मिलते है परन्तु प्राचीन मरुदेश के अन्तर्गत जो भाग प्रतिष्ठित था वह आज के राजस्थान से कुछ भिन्न था। प्राचीन ग्रंथों में मरुदेश के साथ साथ मेवाड़, मालवा और ढूंढ़ाड़ देश भी प्रतिष्ठित रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि राजस्थान नाम से अभिहित मरुदेश आज अनेक उक्त भूभागों और वहं की भाषाओं और बोलियों का प्रतिनिधि है।

मारवाड़ी भाषा का इति वृत — किसी भी देश तथा उसके साहित्य की चर्चा छेड़ते समय वहां की भाषा का विवरण प्रस्तुत करना भी अनिवार्य हो जाता है। मारवाड़ी लोक साहित्य के प्रसंग में मारवाड़ देश की कथा लिखी है और मारवाड़ी भाषा पर भी विचार करना पड़ रहा है। इस देश की महानता और ख्याति जितनी बड़ी है, उतनी अत्युन्नत और प्रचलित इसकी भाषा रहती आई है।

रटगौ सुजस रविंद, मैमा करगौ मालवी।
मन सुनीति सरमिंद, मरुभाषा संकट पड़ी।

साहित री भासा सदा, रही एक रजथान।
कुतरकिया मेटण करै, मरुभासा रौ मांन।

रणवंको है राठौड़ राज,
जुध धीर वीर ओ जोधाणूं।

दुरगा रौ है दृढ़ दुर्ग अठै ,
मरुवांणी रौ मुरधर थांणूं ।

इतिहास प्रसिद्ध आमेर राज , जैसल , करौली इक जांणी ।
मेवात भरतपुर में गूंजै , आ वीर पुजांणी मरु वांणी ।।

मरुदेश की भाषा मरुभाषा थी जो मारवाड़ की मारवाड़ी भाषा कहलाती है। यही भाषा आज के इस सारे राजस्थान की सर्वश्रेष्ठ एवं साहित्यिक भाषा थी , जो प्राचीन काल में थोड़े बहुत स्थानीय परिवर्तनों के साथ समस्त प्रदेश में प्रधान रूप से प्रचलित थी। हजारों कवियों और दूसरे साहित्यकारों को मारवाड़ के तमाम राजदरबारों में सदैव आश्रय मिलता रहा है। अतः मरुभाषा का खास गढ़ मारवाड़ ही है ।

प्राचीन काल से इस देश की साहित्यिक भाषा मरुभाषा रही है । डॉ.-ग्रियर्सन ने मारवाड़ी , मध्यपूर्वीय मारवाड़ी , उत्तरपूर्वीय मारवाड़ी , मालवी और निमाड़ी नाम से इसके मूल पांच भेद किये हैं। आज कल तो यहां २७ बोलियां बोली जाती हैं ।

श्री नरोत्तमदासजी स्वामी यही बात सिद्ध करते हैं। " राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरुभाषा था। राजस्थान के प्राचीन साहित्यकार , चाहे वे राजस्थान के किसी भी प्रदेश के वासी हों। अपनी भाषा का इसी नाम से उल्लेख करते थे। [1] मरुभाषा का ग्रंथों में प्रयोग हमें आठवीं शताब्दी से मिलता है। मारवाड राज्य के जालोर शहर में रहने वाले उद्योतनसूरि द्वारा लिखित कुवलयमाला नामक कथा ग्रंथ में १८ देशीय भाषाओं के साथ इसको भी सहसम्मान स्थान मिला है। इनके साथ गुर्जर , लाट , और मालव प्रदेश की भाषाएं भी सम्मिलित हैं। ईस्वी १६०० सौ तक प्राचीन जैन ग्रंथों की भाषा को भी उनके लेखकों और कवियों ने मरुभाषा नाम से सम्बोधित किया है। १७ वीं शताब्दी में अबुल फजल ने अपनी आइने अकबरी नामक पुस्तक में भारतीय प्रमुख भाषाओं के अन्तर्गत मारवाड़ी को लिया है। [2] इस तरह से राजस्थानी की विविध प्रान्तीय बोलियों को बतलाने वाले अनेक एवं असंख्य हस्तलिखित ग्रंथ मिलते हैं। एक प्राचीन जैन हस्तलिखित ग्रंथ में गुर्जरी , मालवी , पूर्वी और मराठी इन चार भाषाओं के प्राचीन नमूने दिये गये हैं। साहित्य , क्षेत्रफल और जनसंख्या तीनों दृष्टिकोणों से राजस्थान की सर्व प्रान्तीय बोलियों में प्रमुख पश्चिमी बोली है , जिसे मारवाड़ी नाम दिया गया है। और जिसको प्राचीन काल में मरुभाषा एवं

---

१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय, पृ.२ ले. श्री नरोत्तमदास स्वामी

२ डाक्टर ग्रियर्सन एल. एस. आइ. खंड १, भाग १ पृ. १

पर्यायवाची शब्दों से अभिहित किया गया था।

मरुभाषा और डिंगल — उत्तरकालीन ग्रंथों में मारवाड़ी के लिये मरुभूम भाषा, मरुदेशीय भाषा, मरुवाणी, मारूभाषा, आदि कई नामों का प्रयोग प्राप्त होता है।

मरुभाषा एक व्यापक नाम है, जिसमें राजस्थानी भाषा का उसकी समस्त विवध बोलियों और शैलियों सहित समावेश किया जा सकता है।[1]

डॉक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा के लिये डिंगल और मारवाड़ी दोनों नामों को काम में लिया, "मरुभाषा और 'डिंगल' भाषा एक ही थी। इस भाषा का राजस्थानी नाम आधुनिक है।" श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने भी राजस्थानी के डिंगल शब्द का व्यवहार किया है। श्री उदयराजजी उज्जवल अपने काव्य, 'धूड़सार' को अपनी मातृभाषा [डिंगल] में ही लिखा बताते हैं। राजरूपक की भूमिका में पंडित रामकरण आसोपा लिखते हैं कि डिंगल भाषा राजस्थानी भाषा है, इसीसे राजस्थान के कवियों ने अपनी राजस्थानी भाषा में कविता निर्माण की है। महाकवि सूर्यमल्ल जी मिश्रण और मुंशी देवीप्रसाद जी दोनों इसी बात की पुष्टि करते हैं। डाक्टर मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तकों [राजस्थान का डिंगल साहित्य और राजस्थानी भाषा और साहित्य] में डिंगल का विकास गुर्जरी अपभ्रंश से बतलाया है।

"वैसे तो यहां के लोगों की मातृभाषा मरुभाषा है ही, मगर उसका साहित्य डिंगल में ही लिखा मिलता है। यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाड़ी के साहित्यिक रूप को दिया गया है जो बहुत प्राचीन नहीं है। १६ वीं शताब्दी के अन्त में लिखे हुए कुशललाभ के पिंगल सिरामणि नामक छंद ग्रंथ में उडिंगल शब्द आया है। उसका भाव तो स्पष्ट नहीं है किन्तु बहुत सम्भव है, यह उडिंगल ही डिंगल का मूल नाम हो।"[2] "ईस्वी सन् १६०० तक पश्चिमी राजस्थान [मारवाड़] तथा गुजरात की भाषा एक ही थी। ईसा के पूर्व की तृतीय शताब्दी की, राजस्थान से सम्पर्कित सौराष्ट्र की भाषा का निर्देशन गिरनार [जूनागढ़ राज्य] लेख से उपलब्ध हुआ है।"[3] संवत् १८७१ में जोधपुर के कविराज श्री बांकीदासजी ने कवि बत्तीसी नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें डिंगल शब्द का प्रयोग हुआ है। डिंगलिया मिळिया करै, पिंगल तणौ प्रकास।[4]

---

१ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ ५ ले. डॉ. हीरालाल महेश्वरी

२ - राजस्थान साहित्य एक परिचय में दिये गये एक उद्धरण से

३ - सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (राजस्थानी पृ. ४५)

४ - बांकीदास ग्रन्थावली भाग २, पृष्ठ ८१।

हिन्दी साहित्य में डिंगल और पिंगल का नाम साथ साथ चलता आया है–
चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकास।[1]

डिंगल मारवाड़ी भाषा के साहित्यिक रूप का नाम है, जिसमें चारणों ने वीर रस के छंदोमय गीत, दोहे और अनेक प्रकार के छंद लिखे हैं। इसका मुख्य रूप साहित्यिक होने के कारण जन साधारण की समझ से बाहर है। चारणों द्वारा प्रयुक्त इस राजस्थानी का साहित्य रूप डिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अतः डिंगल अधिक परिमार्जित, पर्याप्त स्थिर और अधिक प्रौढ़ एवं सौन्दर्य सम्पन्न है। कवियों ने डिंगल में वीर रसोपयोगी समासयुक्त, संयुक्त अथवा द्वित्ववर्णों का विशेष प्रयोग किया है। उन्होंने शब्दों को यथेच्छ खींचा-तोड़ा है और अलग अलग ढंग से तोड़ मोड़ कर लिखा है। इसलिये डिंगल का साधारण भाषा से भेद पड़ गया है।

पुरानी मारवाड़ी भाषा जो कि मारवाड़ी या गुजराती दोनों ही की मां थी, उसमें साहित्य सर्जना होने लगी, फिर मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक डिंगल भाषा भी प्रकट हुई।[2] डिंगल का विकास उस राजस्थानी से हुआ जिसका प्रयोग चारण एवं कुछ अन्य पेशेवर कवि-जातियां अधिकतया करते थे। इस काव्य में विशेषतः वीर रसात्मक सृष्टि होती थी अथवा प्रशंसात्मक अतिशयोक्ति का काव्य सृजा जाता था।

राजस्थान के साहित्यिक विकास के क्रम में डिंगल का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा किन्तु यह भाषा मुख्यतः साहित्यिक ही बनी रही और उसका जन-भाषा से या बोल चाल की भाषा से लगभग संबंध नहीं रहा। यही कारण है कि डिंगल काव्य रचना अथवा भाषा पर अधिकार करने के लिये विभिन्न प्रकार के डिंगल कोषों की रचनायें हुईं, जिन्हें काव्य रचयिता कंठस्थ कर लेते थे और उन्हीं शब्द रूपों के प्रयोग के द्वारा पद्य रचा करते थे। डिंगल के इस निपट काव्यगत प्रयोग को स्वीकार कर लेने के बाद भी इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता कि वैयाकरणिक, भाषा वैज्ञानिक एवं शब्द-स्वरूप में मरुभाषा अथवा राजस्थानी भाषा के ही नियमों का परिपालन हुआ है। संज्ञा के रूप, पुल्लिग-स्त्रीलिंग के स्वरूप, एक वचन से बहु वचन बनाने के नियम, क्रियाओं के 'काल' रूप आदि आदि सभी राजस्थानी भाषा के नियमानुकूल ही व्यवहृत होते हैं।

डिंगल की इस भाषागत चर्चा के साथ एक और तथ्य का संकेत कर देना भी राजस्थानी लोक साहित्य के लिये आवश्यक है। डिंगल साहित्य ने अपने शास्त्रीय काव्य रूप में एक विशिष्ट छन्दोगत व्यवस्था का निर्माण किया है।

---

१ - उदयराम, कविकुल बोध, चतुर्थ तरंग।

२ डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या– राजस्थानी भाषा।

यह छन्दोविधान 'गीत' नाम से जाने जाता है। भूल से कभी कभी इस [गीत] नाम करण के कारण हम इसे संगीतोमुखी तथ्य समझने का भ्रम कर लेते हैं। वस्तुत: डिंगल का यह गीत साहित्य भारतीय छन्दशास्त्र को एक अनुपम भेंट समझनी चाहिये। इन गीतों में वार्णिक, मात्रिक एवं तद्‌जनित काव्यात्मक गणना का प्रामुख्य है और इसकी रचना में चरण, तुक [झड़] और पद का उतना ही कठोर बंधन है जितना कि संस्कृत एवं इतर भाषाओं के छन्द शास्त्र में है।

लेकिन 'गीत' के इस प्रसंग पर ऐतिहासिक अध्ययन करना अभी शेष है। छन्दोव्यवस्था की स्वीकृति के वाद भी अन्ततः इसे गीत क्यों कहा गया? यह तथ्य अन्वेषण के योग्य है। 'गीत' का अभिधार्थ तो 'गेय' रूप में ही अंगीकार किया गया है। तब क्या गीतों (छन्दों) के स्वरूप कभी गेय रूप में भी प्रयुक्त होते थे? यदि होते थे तो उनका गेय रूप क्या था? बीकानेर, जैसलमेर एवं मारवाड़ के वाड़मेर क्षेत्र की कुछ विशिष्ट पेशेवर गायक जातियों की कुछ लोक गायन-शैलियों से इन गीत प्रकारों का संबंध निकल सकता है। क्योंकि गीत के भाषात्मक रूप और इन गायकों के गेय गीतों में प्रारंभिक समानता के दर्शन अवश्य होते हैं। इतना ही नहीं, छन्दात्मक गीतों में जांघड़ा एक छन्द विशेष है और पश्चिमी रेगिस्तानी लोक गायक जांघड़ा नामक लोक गीत भी गाया करते हैं। दोनों के काव्यगत रूप में अन्तर अवश्य है किन्तु चरण, पद एवं अन्वय में एकता के दर्शन प्राप्त होते हैं। इन गीतों के लय रूप में भी अद्भुत समानता के दर्शन होते हैं। बहुत संभव है कि लोक गायन शैली की काव्यगत व्यवस्था से अनुप्राणित होकर ही डिंगल गीतों की काव्यात्मक रचना और शनैः शनैः संपूर्ण छन्द शास्त्र का ही निर्माण हुआ हो। शास्त्र-गत नियमोपनियमों की स्थापना के पश्चात निश्चय ही गीतों में से गेय रूप हट गया और वह निष्णात काव्य की ही विद्या शेष रह गयी। यहां इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि डिंगल गीतों का पाठात्मक स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सामान्य छन्दों की तरह नहीं पढ़ा गया। इसके उच्चार एवं पठन के लिये भी नियम वनाये गये हैं जिसमें लय एवं गति के साथ कंठ के प्रयोग का वैशिष्ट्य भी सम्मिलित किया गया है। गीत के चरण (तुक) या पद (द्वाळै) के उच्चरित पठन में 'स्वांस' के अद्भुत प्रयोग किये गये हैं।

राजस्थान के छंदोमय साहित्य और गेय रूप की चर्चा के साथ उन छंदों का वर्णन भी प्रासंगिक होगा जो लोक गीतों की गेय-शैली के भी अंग रहे हैं। इनमें प्रमुख छंद दोहा एवं सोरठा माने गये हैं। दोहा एवं सोरठा तो राजस्थान के अलिखित या मौखिक साहित्य की मुख्य छंदोमय अभिव्यक्ति का साधन रहा है। साथ ही साथ उसको लोक गायन शैली में भी प्रमुख स्थान मिला है। 'दोहे

देना 'एक विशिष्ट गायन शैली का नियामक बन सका है। इतना ही नही, हमें लोक गायन रूपों में अनेक ऐसे काव्यगत प्रयोग दिखाई देते हैं, जहां दोहे छंद की विद्या के साथ अन्य चरणों को जोड़कर पूर्ण रूप से गेय प्रकार बना लिया गया है। कहीं कहीं स्वतंत्र दोहे के गायन के बाद एक टेक की लयात्मक पंक्ति (चरण) को जोड़ कर पूरे गेय रूप की सर्जना करली गई है। 'केसरिया बालम' नामक गीत इस प्रवृति का एक प्रमुख उदाहरण है।

राजस्थानी लोक वार्ता के सर्वागीण अध्ययन के लिये दोहे और सोरठे के रूप को भी आत्मसात करना उचित होगा। भारत के पश्चिमी क्षेत्र की लोक-संस्कृति में दोहे छंद ने मुख्य स्थान प्राप्त किया। दैनन्दिन कार्यों में अथवा अभिव्यक्ति में निर्द्वन्द रूप से दोहों का प्रयोग प्राप्त होता है। जन सामान्य ने इस छंद की शाब्दिक एवं लयात्मक अवस्था के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है जिससे वे अत्यंत सहज रूप से या तो दोहे की रचना कर लेते हैं अथवा उन्हें प्रयोग में ले आते हैं।

भारतीय छंद शास्त्र में भी दोहे का महत्वपूर्ण प्रयोग प्राकृत अपभ्रंश काल में प्रारंभ हुआ। शास्त्रज्ञों की स्वीकृति तो इस छोटे से मात्रिक छंद को बहुत बाद में मिली। किन्तु धीरे धीरे यही छंद अपनी संक्षिप्त, तिक्त और सूक्ष्म व्यंजना के कारण संपूर्ण साहित्य पर छा गया। मुक्तक एवं प्रबंध दोनों प्रकार के काव्यों में इस छंद ने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

दोहे के जो रूप राजस्थानी में प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं —

नाम	प्रति चरण में मात्राएं १. २. ३. ४.	तुक विधान चरण क्रम से
दूहौ	१३ ११, १३ ११	द्वितीय - चतुर्थ
सोरठौ	११ १३, ११ १३	प्रथम - तृतीय
सांकळियौ [वड़ो दूहौ]	११ १३, १३ ११	प्रथम - चतुर्थ
तूंवेरी (मध्य मेल दूहौ)	१३ ११, ११ १३	द्वितीय - तृतीय
चरणा दूहौ	१६ ११, १६ ११	प्रथम-तृतीय, द्वितीय-चतुर्थ
पंत्रा दूहौ	१२ ११, १२ ११	द्वितीय - चतुर्थ
चोटियौ दूहौ	१३ २३, १३ २१	प्रथम-तृतीय, द्वितीय-चतुर्थ
खोड़ौ दूहौ	११ १३, ११ ६	तृतीय - चतुर्थ

इन स्वरूपों के अलावा राजस्थानी छंद शास्त्र ने तो प्रस्तारादि भेद-विभेदों को लेकर काफी संख्या में दोहों के नाम गिनाये हैं। किन्तु गणित से उत्प्रेरित

छंदोव्यवस्था का सृजनात्मक अथवा लोक साहित्य में महत्व प्रस्थापित नहीं हो सकता है।

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में दोहों का गायन विधान लोक संगीत का प्रमुखतम प्रयोग है। ये दोहे रोमांस, प्रेम, नीति, प्रतीक, कथा, प्रशंसा आदि के लिये मौखिक साहित्य एवं गेय रूप में प्रचलित हैं। जहां तक इनके गेय रूप का प्रश्न है – ये अधिकतर पेशेवर लोक गायक जातियों की संपदा है। ये गायक अपने मुख्य गीत की भूमिका के रूप में 'दोहे' देते हैं और तत्पश्चात लयपूर्ण शैली में गीत प्रस्तुत करते हैं। इनके कुछ गीत ऐसे भी होते हैं जो दोहे के रूप को ज्यों का त्यों कायम रखते हुए गेय होते हैं। टेक रूप में या गीत के मुखड़े [बन्दिश] के रूप में एक अन्य पंक्ति प्रचलित रहती है। ये दोहे गद्य कथा-कथन शैली के साथ भी गाये जाते हैं। ढोला-मारू, नागजी - नागवन्ती, बींझा-सोरठ आदि गद्यात्मक कथाओं के साथ ऐसे ही गेय दूहे या सोरठे प्रचलित हैं। राजस्थान की कुछ घुम्मकड़ जातियों में दोहे के प्रत्येक चरण के साथ कुछ गेय शब्द जोड़कर गाने का स्वरूप भी प्रचलित है। उपरोक्त सभी रूपों में दोहे या सोरठे का प्रयोग मौखिक साहित्य या संगीत की परंपरा में ही मिलता है। जहां शास्त्रज्ञ कवि ने दोहे को अंगीकृत किया है–वहां राजस्थानी साहित्य के महत्वपूर्ण शब्दालंकार वयण सगाई एवं अखरोट आदि अत्यंत महत्व पूर्ण माने गये हैं।

सोरठ शब्द को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में समझना अनिवार्य है। यों तो सौराष्ट्र प्रदेश को सोरठ कहा ही जाता है। और वस्तुतः यह प्रदेश - वाची शब्द ही है। परन्तु इसी नाम से एक राग भी प्रचलित है अर्थात् सोरठ राग। सोरठ राग और सोरठ प्रदेश का संबंध अत्यंत निकट है। इसी प्रकार सोरठ से संबंधी 'सोरठा' छंद शास्त्र का शब्द है। साथ ही साथ सोरठ नाम की एक नायिका भी है जो बींझा नामक नायक से प्रेम करती थी। बींझा - सोरठ के प्रेम की कथा प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार सोरठ शब्द के प्रयोग से 'प्रदेश, राग, छन्द और नायिका विशेष' के चार अर्थ प्राप्त होते हैं। इन सभी संज्ञात्मक अर्थों को बड़ी सतर्कता से प्रयोग में लाना आवश्यक है। सोरठ राग के लिये कहा गया है:

सोरठ राग सुहावणी, जे कोई सुणनै जाय।
चतर हुवै तौ उठ सुणै, मूरख सोवण जाय॥

अथवा: सोरठ राग सुहावणी, लीज्यौ आधी रात।
मूरख सोवण उठ चलै, चतर सुणण नै आत॥

इसी प्रकार सोरठ नायिका के लिये कहा है:

सोरठ गढ़ सूं ऊतरी, पायल री झणकार।
धूजै गढ़ रा कांगरा, धूजै गढ़ गिरनार॥

जिण संचै सोरठ घड़ी, घड़ियौ राव खेंगार।
कै तौ संचौ गळ गयौ, [कै] लाद बुवा लवार॥

सोरठ डाळी आंम री, सूवौ बैठ्यौ आय।
पांख सवार उडण करै, रंग में भीज्यौ जाय॥

और जब इसी सोरठ के नाम से छंद वर्णन अपेक्षित होता है तो कहा जाता है:

सोरठियौ दूहौ भलौ, भल मरवण री वात।
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात॥

सोरठियौ दूहौ भलौ, कपड़ौ भलौ सुपेत।
ठाकरियौ दाता भलौ, घोड़ौ भलौ कुमेत॥

उपरोक्त सभी रूप मुख्य तया राजस्थान के मौखिक साहित्य एवं लोक संगीत की विशिष्टतम संपदा है और जिस संपदा से राजस्थान के शास्त्रीय-सम्मत काव्य एवं साहित्य ने वहुत शक्ति एवं संवल प्राप्त किया है।

लोक संगीत — राजस्थान के लोक गीतों को सांगीतिक विश्लेषण की दृष्टि से हम मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे लोक गीत जो सामूहिक रूप से, पारिवारिक-क्रिया कलापों, अनुष्ठानों, पर्वों एवं उत्सव आदि अवसरों पर गाये जाते हैं। इन गीतों को गाने वाले स्वयं परिवार व समाज के ही स्त्री-पुरुष होते हैं। दूसरे वे लोक गीत हैं जो पेशेवर लोक गायकों द्वारा किन्हीं विशिष्ट लोक वाद्यों के साथ गाये जाते हैं। इस श्रेणी के लोकगीत सांगीतिक दृष्टि से कुछ उन्नत दशा के द्योतक होते हैं और उनमें धुनों का वैभिन्य भी अधिक होता है।

जो लोक गीत परिवार या समाज के कंठों एवं कल्पना पर निर्भर करते हैं—उन्हें संगीत की ही दृष्टि से बाल गीत, आदिवासी गीत एवं अन्य गीतों के रूप से विभक्त किया जा सकता है। क्योंकि ये तीनों प्रकार के लोकगीत सांगीतिक विधा में एक दूसरे से विभिन्नता लिये होते हैं। इन तीनों ही प्रकार के लोकगीतों के शाब्दिक गठन अथवा पद्यात्मक कल्पना के स्वरूप में भी अन्ततः भेद होता है। बाल गीत सहजतम होते हैं और स्वरों की दृष्टि से दो से पांच स्वरों के बीच में चलते हैं। गीत का पाठ पूर्व-निश्चित नहीं होता। स्वतः स्फूर्त रचना-तत्व इसका एक मुख्य गुण होता है। इसी प्रकार आदिवासियों के गीतों का पाठ भी पूर्व-निश्चित नहीं होता। वे गायन के समय ही पंक्तियों के रच लेने की सहज क्षमता को काम में लेते हैं। यही कारण है कि आदिवासियों के

गीतों में प्रत्येक सामाजिक एवं भौतिक परिवर्तन का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। बाल गीतों से आदिवासियों के गीत संगीतात्मक दृष्टि से विकसित होते हैं। धुनों का वैविध्य और कल्पना का शब्दमय संसार भी उन्नत होता है। सामाजिक रूप से अन्य गाये जाने वाले गीत महिलाओं पुरुषों के गीतों में उपविभक्त किये जा सकते हैं। पुरुषों के गीतों की संख्या अत्यंत सीमित ही होती है। उधर महिलाओं के गीतों की संख्या असीमित है। संगीत की दृष्टि से महिलाओं के गीत स्वरों, धुनों एवं लयों की दृष्टि से भी विविधता लिये होते हैं। किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सामूहिक गीतों का पाठ बहुत कुछ निश्चित एवं स्थिर होता है। ये गीत किसी पंक्ति से प्रारंभ होकर पंक्ति पर समाप्त होते हैं। यों इन गीतों में भी परिवर्तन, परिशोधन एवं विभिन्न पंक्तियों का आगम अथवा लोप भी होता है। किंतु इन स्थितियों में भी गीत में एक सुनिश्चित पाठ अवश्य रहता है।

राजस्थान के लोक संगीत में पेशेवर लोक गायकों की संगीत शैली को आत्मसात किये बिना एक बहुत बड़ा अंश छूट जाता है। राजस्थान की लगभग सभी बड़ी या छोटी जातियों के अनुष्ठानों, रीति - रिवाजों एवं अन्य मनोरंजन के अवसरों के लिये कोई न कोई जाति गायन पेशे के साथ जुड़ी हुई है। राजपूत, जाट, गूजर, महाजन, मुसलमान, भांबी, बावरी, चारण या अन्य कोई भी जाती हो — सभी की अपनी अपनी गायक जातियां है। इन जातियों में हिन्दू-ढोली, मुसलमान ढोली, नगारची, सरगरे, फदाळी, ढाढ़ी, मिरासी, लंगे, मांगणियार, विभिन्न जातियों के भोपे, कामड़, हुड़कल, जागे आदि हैं। समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह संभवतया बहुत महत्वपूर्ण है कि अन्ततः किस प्रकार जातीय परंपराओं के साथ ही लोक संगीत का यह पक्ष उत्पन्न हुआ और आर्थिक रूप से अपने इसी कार्य [संगीत] पर निर्भर रह सका। इन जातियों ने राजस्थानी लोक संगीत को सर्वाधिक सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की और साथ ही साथ अपनी धरती की सांगीतिक सुवास को उन्नत भी बनाया।

पेशेवर लोक गायकों ने राज़स्थान में लोक - वाद्यों को जीवित रखने में जबरदस्त योगदान दिया। यह आश्चर्य जनक सांगीतिक तथ्य है कि राजस्थान में प्रायः सभी संगीत वाद्य किसी न किसी गायक जाति से संबंधित है और वह उन्हीं की 'सुरक्षा' में आज तक प्रचलित रह सके हैं। यदि हम शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो संगीत वाद्यों को भरत मुनि की धारणा के अनुसार चार विभागों में बांट सकते हैं। ये विभाग है: १. तत वाद्य — अर्थात् तार से बजने वाले वाद्य, २. सुषिर वाद्य अर्थात् फूंक से बजने वाले वाद्य, ३. अवनद्ध वाद्य अर्थात् चमड़े से मंडे हुए वाद्य एवं ४. घन वाद्य अर्थात् विभिन्न धातुओं से बने हुए या वस्तुओं

से बने हुए घर्षण या आघात से बजने वाले वाद्य।

ये चारों ही मुख्य वाद्य प्रकार राजस्थान के लोक संगीत के साथ प्राप्त होते हैं। केवल इतना ही नहीं, इनके जितने भेद विभेद हो सकते हैं, वे सभी वाद्य भी इस प्रदेश में प्राप्य हैं। यहां इस तथ्य की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है कि आज जो संगीत वाद्य राजस्थान प्रदेश में प्राप्य हैं – उन्हें केवल राजस्थानी वाद्य के नाम से संबोधित नहीं किया जा सकता। ये सभी वाद्य भारत ही नहीं, विश्व की संपूर्ण संपदा के ऐतिहासिक प्रतीक हैं जो अपने कालक्रम में किन्हीं देशों में काल-कवलित हो गये और किन्हीं देशों में आज भी जीवित हैं।

यहां राजस्थान के सभी वाद्यों का विवेचन संभव नहीं है। अतः कुछ प्रमुख वाद्यों की ही चर्चा की जा रही है। सबसे पहिले तत वाद्यों में जतर एवं कामायचा का विवरण दिया जा रहा है। जंतर नामक वाद्य गूजरों के भोपे बजाते हैं। यह वाद्य वीणा के प्रकार का होता है जिसमें एक डांड [बांस] और दो तूंबे होते हैं। वाद्य पर सितार की भांति पर्दे लगे रहते हैं। इस वाद्य को 'नखी' के आघात प्रकार से बजाया जाता है। सबसे महत्व पूर्ण बात यह है कि आघात से बजाये जाने वाले वाद्यों [सितार, वीणा, सरोद] को ऊपर से अनुरणित किया जाता है लेकिन जंतर की बनावट ऐसी होती है कि जिसमें तारों को नीचे की तरफ से गुंजित किया जाता है। इसी प्रकार इस वाद्य पर जो मेरू होता है–वह भी सीधा खड़ा रहता है। यह व्यवस्था अन्य किसी भी वाद्य में नहीं मिलती।

जंतर का वादन गूजर जाति के भोपे करते हैं। ये लोग इस वाद्य की सहायता से 'बगड़ावतों' जैसी वृहद लोक गाथा गाते हैं। इसका वादक गायन के साथ साथ नृत्य भी करता है। यह वाद्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार थोरियों या भीलों के भोपों का रावण हत्था नामक वाद्य भी संगीत की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। इसका वादन घोड़ों की पूछ के बाल के तारों पर होता है जिससे अधिकांश वाद्यों के गज बनते हैं। इसकी ध्वनि अत्यंत गंभीर होती है।

तत - वाद्यों में कामायचा का स्थान भी मनन के योग्य है। यह वाद्य हमें मध्य एशिया की संस्कृति के निकट पहुंचा देता है। यह एक गज से बजने वाला वाद्य है और इसे बजाने वाले बाड़मेर जैसलमेर क्षेत्र में मांगणियार नाम से संबोधित किये जाते हैं। यह गज से बजाये जाना वाला वाद्य है। इसके मुख्य तार तांत के होते हैं। गज काफी लंबा होता है और इनके वादन के प्रकार से गायन शैली पर भी प्रभाव पड़ता है।

तत वाद्यों में सिंधी सारंगी, गुजरातण सारंगी, तंदूरो या निसांण या

वीणो, धानी सारंगी, चिकारा आदि अनेक और वाद्य भी मिलते हैं। यहां पुनः कह दें कि ये सभी वाद्य विशिष्ट गायक जातियों द्वारा ही वजाये जाते हैं।

सुषिर वाद्यों में मुरली, पावा या सतारा, नड़, पूंगी व उनके प्रकार, वरगू, बांकिया, तुरही आदि प्रकार के बाजे आते हैं। इसमें सतारा [पावा] और नड़ संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण ज्ञात होते हैं। सतारा दो बांसुरियों का वाद्य है और दोनों बांसुरियां एक साथ ही मुंह में रहती हैं और बजाई जाती हैं। होठों से दो फूंकें निःसृत होती हैं। किंतु उनमें एक बांसुरी पर धुन बजाई जाती है और दूसरी से केवल श्रुति ली जाती है। इस वाद्य को रेगिस्तान क्षेत्र के भेड़ या पशु पालक वजाते हैं। मुख्यतया इसमें संगीत के रूप में अलंकार या पल्टों का ही वादन किया जाता है। यों यह वाद्य उन्नततम संगीत अथवा राग - वादन के काम में भी आ सकता है। कुछ अन्य पेशवर गायक जातियां इसका धुन के लिये भी प्रयोग करती हैं। इसी प्रकार 'नड़' नामक वाद्य भी संगीत की अत्यंत प्रारंभिक स्थिति को पहिचानने के लिये महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य एक लंबे व पतले बांस की तरह के वृक्ष से बनता है और टेढ़ी बांसुरी की तरह बजाया जाता है इसमें कांच की शीशी की भांति फूंक दी जाती है और इसमें केवल पल्टों या अलंकारों का ही वादन हो सकता है। इसमें केवल चार ही छेद होते हैं। किंतु लंवाई के कारण उनका घोष वहुत गंभीर होता है।

अवनद्ध वाद्यों में ढोलक, ढोल, चंग, डफ जैसे वाद्य गिने जाते हैं। ये वाद्य यों विश्व भर में ही अपने विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। राजस्थान के अवनद्ध वाद्यों में डेरू एक महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य माताजी के स्थानों [थान] एवं लोक गाथाओं के साथ काम में आता है। इस वाद्य को काळबेलिये भी वजाते हैं। यह डमरू के आकार का वाद्य होता है और उस पर चमड़े को कसने वाली रस्सियों को दवाने से भिन्न भिन्न लयात्मक ध्वनियां निकाली जाती हैं। एक हाथ रस्सी के बंधाव पर और दूसरे हाथ में पतली लकड़ी होती है — जिससे लयपूर्ण ध्वनियों को उत्पन्न किया जाता है। यह वाद्य लयों के अत्यंत सुन्दर पेटर्न्स वनाने में समर्थ है।

घन वाद्यों में मंजीरा, ताल, दो छोटी लकड़ियां, कांच, थाली, घंटी, कटोरे जैसे वाद्यों को माना जाता है। ये वाद्य परस्पर घर्षण या आघात से संगीतात्मक लय उत्पन्न करते हैं। इसी वर्ग में मोरचंग एवं घोराळिया जैसे वाद्य भी आते हैं। दोनों वाद्य वहुत ही आनन्ददायक और मनोरंजक हैं। ये वाद्य प्रकार विश्व भर में प्रचलित हैं। योरोपीय देशों में इसे ज्यूज़हार्प कहा जाता है। दक्षिण भारत में इसे 'मुखचंग' कहा गया है। मोरचंग लोहे का वना हुआ एक वाद्य है जिसमें एक पतली लोहे की रीड होती है जो फूंक के प्रभाव से ध्वनि उत्पन्न

करती है और उसी रीड पर अंगुली के आघात से लयपूर्ण बन जाती है। इसी प्रकार घोराळिया वांस का बना वाद्य है जिसे होठों में पकड़ कर बजाया जाता है। ठीक मोरचंग के ही आकार प्रकार का होता है। लय के लिये धागे को काम में लिया जाता है। यह वाद्य मुख्यतया काळबेलियों [संपेरा जाति] के पास मिलता है।

राजस्थान में अभी लगभग अस्सी प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं और सभी वाद्य अपने प्रकार से राजस्थान के लोक संगीत की सेवा कर रहे हैं। इन वाद्यों की सुरक्षा का मुख्य कारण यही रहा है कि उन्हें विशिष्ट जातियों ने अपनी जीविका का साधन बना रखा है। अब ज्यों ज्यों आर्थिक प्रश्न विकट होने लगेगा त्यों ही त्यों ये वाद्य लोप होने लगेंगे।

लोक संस्कृति एवं राजस्थानी—हमने उपरोक्त पृष्ठों में राजस्थान प्रदेश के गठन, राजस्थानी भाषा एवं उसकी छंदोमय व्यवस्था और राजस्थानी लोक संगीत को विहंगम दृष्टि से देखा। इसके पश्चात एक तत्व जो प्रमुखतम बनकर सामने आता है – वह है क्या राजस्थान नामक प्रदेश में हमें सांस्कृतिक एकता का आभास मिलता है ? यदि यह आभास मिलता है तो उसका आधार कहां है और उसे किस प्रकार अनुभूत सत्य पर स्थापित किया जा सकता है।

इस तथ्य या सत्य के निरूपण के लिये सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न भाषा का है। भाषा ही मनुष्य की वह सर्वोच्च थाती है जिससे मानववंशीय समूहों को राष्ट्रीयता अथवा प्रादेशिकता की सीमा में बांधा जाता है। राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है – यह कह देने से वर्तमान समय में किसी को संतोष नहीं होता। क्योंकि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भारत में जिस प्रकार भाषावार प्रान्तों का गठन हुआ और उसके लिये संघर्ष हुआ—उसके कारण राष्ट्रीय चेतना के प्रति सजग व्यक्ति चौंक गये और उन्हें भय लगने लगा है कि कहीं भारत की राष्ट्रीयता ही खंडित न हो जाय। भाषायी प्रांतों की मांग के पीछे प्रादेशिक संकीर्णता के तत्व उभरते दिखाई दे रहे हैं और वे हमारे वृहत् देश को नष्ट - भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं – ऐसा सतही तौर पर दिखाई देता है। किंतु भाषावार अथवा सांस्कृतिक एकता के आधार पर प्रदेशों का निर्माण व उसके जरिये भारतीय विकास की कल्पना ही वह दृढ़ आधार प्रदान करने में समर्थ है जो भारत की एकता को कृत्रिम रूप से नहीं, अपितु वास्तविक रूप से स्थापित करने में सशक्त है। यदि यह आधार नहीं लिया गया होता तो विखंडन का क्रम अधिक उग्र और विनाशकारी होता। यह समस्या भारतीय राष्ट्र के लिये चाहे नये रूप में आई हो, किन्तु विश्व के अनेकानेक वृहत् देशों ने इस समस्या को सुलझाया है और इसके परिणाम ऐतिहासिक रूप से हमें उपलब्ध हैं। यदि हम उन परिणामों

का, पूर्वाग्रहों को छोड़ कर, अध्ययन करें तो पता चलेगा कि संस्कृति की अपनी विशिष्टताओं के मानवीय विकास क्रम में एक स्वतंत्रता का भाव अपेक्षित हैं। यदि वह स्वतंत्रता उस संस्कृति को नहीं मिलती है तो उसे दमन कहा जाता है और दमन के विरोध में विद्रोह और हिंसा का साम्राज्य फैलने लगता है। अतः विश्व के दार्शनिकों एवं लोकतंत्रीय विचार-शैली के विद्वानों ने संस्कृति की एक इकाई को अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं के साथ, एक स्वर से स्वीकार किया है।

किन्तु यहां प्रश्न उठता है कि क्या संपूर्ण भारत एक सांस्कृतिक इकाई नहीं है ? इसका उत्तर है कि भारतीय संस्कृति एक इकाई है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों के पुष्प अपने विभिन्न रंगों में पुष्पित हुए हैं — किन्तु उनका मूल एक है। डाली, पत्ते और पुष्पों के प्राकृतिक गठन में विभेद है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता का एक महान देश है। इस विराट सत्य की स्वीकृति के उपरान्त जब हम लोक संस्कृति के विषय पर आते हैं तो प्रत्येक टहनी और पुष्प को स्वस्थ व नैसर्गिक सौन्दर्य प्रदान करने का प्रयत्न प्रारंभ हो जाता है और तभी हमें 'विभिन्नता' का भय ग्रस्त कर लेता है। वस्तुतः यह भय व्यर्थ है और जहां इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकारोक्ति नहीं है — वहां हमें भारतीय संस्कृति के एकता के तत्वों को प्रकाश में लाना जरूरी है।

राजस्थान का प्रदेश भी भारतीय संस्कृति के विराटत्व में अपने ही प्रकाश-पुंज से आलोकित है। इस प्रकाश - पुंज का अभिव्यक्त रूप राजस्थानी भाषा या वाणी में उच्चरित हुआ है। इस प्रदेश का यह दुर्भाग्य रहा है कि स्वतंत्रता की स्वर्ण वेला के समय अनजाने और अनायास ही अपनी भाषा को मान्यता नहीं दिला सका। यह मान्यता भी कौनसी ? हमारे द्वारा बनाये गये संविधान की एक सूची में। किन्तु भारत के विद्वान एवं दिग्गज संवैधानिक विद्वानों ने यह स्पष्ट संकेत संविधान में छोड़ा कि ज्यों ज्यों विभिन्न भाषाएं विकसित होती जायेंगी — उन्हें राष्ट्रीय भाषाओं की सूची में मिला लिया जायेगा।

लेकिन वास्तविक समस्या राजस्थानी भाषा की संवैधानिक मान्यता नहीं है। उसकी समस्या तो है कि वह भाषा के रूप में मानी भी जाय अथवा नहीं। इसमें आग्रह है, पूर्वाग्रह है और दुराग्रह है। किन्तु यदि हम इन सभी 'आग्रहों' को छोड़कर सोचें तो स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय भाषाओं के उदय काल [अर्थात् ७ वीं-८वीं शताब्दी] से ही राजस्थानी का अस्तित्व बनने लगा था और साहित्य के इतिहास क्रम में अटूट रूप से चलता रहा। इस तथ्य से कोई भी विज्ञ विद्वान इन्कार नहीं करता। लेकिन एक प्रश्न को फिर भी उठाया जाता है कि संपूर्ण राजस्थान में एक टकसाली भाषा का रूप नहीं है। उसके किस रूप को स्वीकार किया जाय ? इस प्रदेश में अनेक बोलियां हैं – किस बोली को भाषा

मानलें ? राजस्थानी भाषा का जो विघटनात्मक स्वरूप है, उसे तूल देकर यह सहज ही मान लिया जाता है कि राजस्थानी नामक कोई भाषा नहीं है। लेकिन भाषाविद् इस बात को मानते हैं कि किसी भी भाषा को भाषा मानने के लिये पहली आवश्यकता है कि उसकी अपनी बोलियां हों। आज हिन्दी स्वयं भी विभिन्न बोलियों के अस्तित्व के साथ अपने को भाषा मनवाने में सफल हो सकी है। इतना ही नहीं, जिन जिन भाषाओं को संविधान में मान्यता मिली है--उन सभी भाषाओं की अपनी अपनी बोलियां हैं, उनके रूप भेद हैं, उच्चारणगत तथ्यों में अन्तर हैं। अतः इस तर्क में भी वजन नहीं है कि बोलियों की गणना के आधार पर राजस्थानी भाषा के अस्तित्व से मना किया जाये।

हम यदि राजस्थानी भाषा के व्याकरणगत रूप को भलीभांति देखने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि जैसलमेर से लेकर ढूंढाड़ तक और गंगानगर से लेकर हाड़ौती क्षेत्र तक बोली जाने वाली भाषा में न केवल एकता है अपितु वह संस्कृति की दृष्टि से एक उन्नततम विधा है। इस भाषा के संज्ञा-रूप, एक वचन व बहु वचन रूप, काल के रूप, कृदन्तों के रूप एवं क्रियाओं के प्रकारों में न पूर्ण रूप से केवल साम्य है, अपितु एक प्रकार के नियमों पर संचालित हैं।

भाषा की इस एकता को राजस्थान की लोक संस्कृति के अध्ययन से तो पृथक किया ही नहीं जा सकता। जब लोक कथा, लोकगीत, कहावतें, मुहावरे, रीति-रिवाज, जातीय गठन, अल्पनाएं, अनुष्ठान, त्यौहार, देवी देवता, शकुन, मान्यताएं, विश्वास आदि आदि तथ्यों को देखते हैं तो सारा राजस्थान एक सत्व की तरह आंखों में घूम जाता है। विशेषकर वे कलात्मक अभिव्यक्तियां जिनका आधार भाषा है [यथा कथा, गीत] — उनको लिखित रूप देते हैं तो समानता का विस्तृत रूप एकदम स्पष्ट हो जाता है। इस लिखित रूप को यदि हम प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजस्थानी के लिखित साहित्य के नियमोपनियमों से संचालित कर लेते हैं तो सभी बोलियों का विभेद समाप्त हो जाता है। यह आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिये कि आज के संपूर्ण राजस्थान में 'लोकगीतों' की भाषा में, उसके व्याकरणगत गठन में एवं सांगीतिक आवेग में सुस्पष्ट एकता है।

यह लोक संस्कृति का अध्ययन राजस्थान के किसी भी अध्येता को, अपने ही तर्क और विवेक से इस बात को मानने के लिये मजबूर कर देता है कि राजस्थान की संस्कृति का पुष्प एक ही है -- उसमें विभाजन नहीं है, उसमें विघटन नहीं है, उसमें अन्तर नहीं है और जो कुछ है वह एकत्व लिये हुए है।

३

लोक गीत

लोक गीत — हमारे यहां लोक गीतों की परंपरा बहुत पुरानी है। वाल्मीकि और व्यास, भास और कालिदास तथा कबीर, तुलसी व सूर की कविताओं का तो समय निश्चित है, पर गीतों की रचनाओं का कोई समय निश्चित नहीं है। वेदों के मंत्र दृष्टाओं का तो पता है, पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु इनकी उत्पत्ति का समय और स्थान उपलब्ध नहीं होता। यह गीत रचने वालों की दृष्टि से अनाम और व्यक्तित्व की छाप से मुक्त होते हैं। किन्तु ऐसे सुन्दर एवं सरस गीतों की रचना करके समाज, नाम, ग्राम और समय की चिन्ता किये बिना अपनी अभिव्यक्ति कर लेता है। परन्तु गीतों का सृजन मानव उत्पत्ति के साथ ही हुआ ज्ञात होता है। इनकी प्राचीनता का पता हमें संस्कृत के आदि ग्रंथों से मिलता है। ऋग्वेद में गाथिक शब्द है। वह गाने के काम में लिया गया हैं। वैवाहिक गीतों के लिये नराशंसी अथवा रैमी नाम के शब्द रूप भी मिलते हैं। उक्त समय की सारी पद्य-बद्ध गाथाएं मंगल अवसरों पर गाई जाने वाली जान पड़ती हैं। ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में इस समय की अनेक गाथाओं से लोक गीतों की साकारता के प्रमाण मिलते हैं। ब्राह्मण ने ऋक को देवी से और गाथा को मानवी से संबंधित बताया है। अतएव गाथा शब्द के संबंध से लोक गीत की प्राचीनता का पूरा पता लग जाता है। महाभारत के आदिपर्व की बहुत सी गाथाओं के रूप भी अति प्राचीनतम हैं। गीत उल्लसित लोक-मानस से निकलने वाली अटूट धारा है, जिनका लोक प्रतिभा द्वारा विभिन्न अवसरों पर सृजन एवं गान होता आया है। यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक किया जान पड़ता है। गीतों की अनाम रचना करने में महिला समाज की अपनी विशिष्टता तथा अपना योगदान रहा है। स्त्रियों द्वारा गीत गाये जाने का वर्णन श्री सोमदेव ने ११ वीं शताब्दी के अभिलाषार्थ चिंतामणि ग्रंथ में भी किया है। संगीत रत्ना-

कर में ओवी को एक गेय प्रकार बताया है। रामचरितमानस में सयानी सखियों के गीत गाने का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी किया है – "चली संग लइ सखी सयानी, गावत गीत मनोहर वानी।"

लोक गीत आदि-मानव के आनंदावेशमय उद्‌गार हैं। यह जन साधारण की प्रफुल्लित एवं मस्त अनुभूतियों के अजस्र श्रोत है। आदिम-मानव हृदय की भावनाओं का यह भंडार अपनी संजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है और एक कंठ से दूसरे कंठ में, एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रतिध्वनित होता चला आ रहा है। इसमें विशाल लोक समूह की भव्य भावनाएं भरी रहती हैं।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में यह मत व्यक्त किया गया है कि कोई भी संगीत, यहां तक कि कैसा ही संगीत क्यों न हो, वह लोक गीतों पर ही निर्भर है। संगीत की दृष्टि से, लोक गीत बिना किसी वाद्य-यंत्र के, स्वाभाविक एवं हृदय-स्पर्शी स्वरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक गीत मानव जाति के हृदय से, अपने अनुभवजन्य प्रकृति - प्रदत्त आवाज के द्वारा अचानक घुमड़ कर प्रकट होने वाला संगीत है, जो हृदय का बोझ हलका करने के लिये एवं भावों की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त किया जाता है। लोक गीतों में साधारण जनता की मधुर भावनाओं एवं जटिल समस्याओं का सुन्दर चित्रांकन मिलता है। हर एक राष्ट्र का इतिहास सृजन उसके शासन सत्ताधारियों से प्रेरित नहीं परन्तु वास्तविक इतिहास, लोक की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर आश्रित रहता है, जिसका अनुभव हमें लोक गीतों द्वारा प्राप्त होता है। इनमें जन-मानस, देश-काल और मानव मात्र की स्थिति का संपूर्ण वर्णन और प्रतिफलन मिलता है।

लोक वार्ता साहित्य में राजस्थानी लोक गीत अमूल्य हीरे हैं। इनका प्रादुर्भाव मानव वाणी के साथ ही हुआ है। इस तरह के लोक गीत विश्व भर के समस्त राष्ट्रों में पाये जाते हैं। ये मौखिक परंपरा पर ही आश्रित रहे हैं और ये कला गीतों से पृथक होते हैं। कला गीत साहित्यिक परंपरा में आते हैं। पर लोक गीत केवल अनुश्रुति पर ही अवलम्बित रहते हैं। लोक (जन साधारण) में कलामय काव्य क्रम प्रचलित होता है। संत साहित्य परंपरा-श्रुत होकर भी काव्य-कला प्रवीण होता हुआ साहित्य के नजदीक पहुंच जाता है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान मौखिक प्रेरणा से मिलने वाले इस गीत साहित्य को कला पूर्ण साहित्य से भिन्न मानते हैं। पर ये गीत पैतृक निधि होते हुए भी अपने कई तत्वों में तो कला पूर्ण हो ही जाते हैं। कला गीत भी अपने मूल रूप में लोकाभिव्यक्ति से कतई दूर नहीं रह सकते।

लोक गीत, ग्राम गीत और जन गीत—लोक गीत लोक साहित्य का ही संगीत-

प्रधान अंग है–जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण मानव के द्वारा होता है, इसमें ग्राम गीत भी हैं और कस्बों तथा शहरों में गाये जाने वाले गीत भी। लोक गीत सामान्य जनता के मुखारविन्द से निःसृत मौखिक गीत हैं और ग्राम गीत लोक गीत के पुरवणी एवं सहायक गीत हैं। ग्राम गीत को लोक गीत कहा जा सकता है पर लोक गीत को ग्राम गीत नहीं। कई लोग लोक गीत का शब्दार्थ जन गीत कर देते हैं। पर जन गीत विशिष्ट मानव गीत होते हैं। लोक गीत और जन गीत में बहुत बड़ा भेद है। जहां लोक साहित्य के प्रणेता का व्यक्तित्व लोक समाज की अनुभूतियों में विलय होकर लोक स्वरूपी बन जाता है और अपने अस्तित्व को खो देता है। वहां जन साहित्य में उसका रचयिता अपने व्यक्तित्व की छाप को प्रत्यक्ष लिये रहता है। उसका साहित्य [जन साहित्य] कंठानुकंठ गति से नहीं चलता। वह तो प्रेस के मार्फत मुद्रित एवं प्रकाशित होकर जनता के सामने आता है अथवा अन्य साधनों से जन प्रिय (पोपुलर) बन जाता है। वस्तुतः जन-साहित्य शिक्षित जन द्वारा ही रचा जाता है और जन-सामान्य की संवेदना के आन्दोलन सहित अभिव्यक्त होता है। श्री नामवरसिंह के शब्दों में– "जन साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है।"

यह किसी विशेष व्यक्ति की कलम से लिखा जाकर जनहित-रक्षक के रूप में सामने आता है। पर लोक साहित्य जन-साधारण के अनुष्ठानार्थ, विनोदार्थ तथा शिक्षार्थ जन साधारण द्वारा ही निर्मित होता है। यह गीत व्यक्ति सापेक्ष नहीं होता। यही अन्तर लोक गीत और जन-गीत के लिये लागू होता है।

डिंगल साहित्य में विशिष्ट छन्दों को भी गीत कहा जाता है। यद्यपि ये गीत कहे जाते हैं, मगर गाये नहीं जाते। इनका एक विशेष लय के साथ पाठ होता है। कई लोग इन्हें गाने की वस्तु समझकर लोक गीतों में मिलाने लग जाते हैं, पर ये डिंगल गीत अधिकांशतः चारणों की कृतियां हैं तथा ये डिंगल गीत वार्णिक एवं मात्रिक छन्दों के ही नियमों में प्रतिबंधित होते हैं। साथ ही इनका रचना विधान हमारे शास्त्रीय छंदोविधान से भिन्न होता है।

लोक गीत, लोक के मनोभावों को प्रगट करने के लिये सरलतम साधन हैं। इसमें मानव समाज की आदि मनोवृत्तियां और भावनाएं, उसके हर्ष-उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, भय-आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय, भक्ति, निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। समाज में जो नर-नारी कोई विशेष काम करते हैं, जनता उनके गीत भी गाने लग जाती है। इनकी ध्वनियों में लोक संगीत के तत्व मौजूद होते हैं। इससे मानव के समूहगत भावों की अभिव्यक्ति प्रदर्शित होती है। पर इनमें

रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। निर्वैयक्तिक तत्व की महत्ता उन्हें समूह-परक बनाती है। तभी लोक गीतों की संज्ञा इन्हें मिलती है। इनका यही गुणात्मक तथ्य कला गीतों के तथ्य से भिन्न है।

प्रोफेसर किटरिज और जेम्स ग्रिम लोक गीतों का निर्माणकर्ता जन-समूह को ही मानते हैं। आदिम मानव समाज, नृतत्व शास्त्र एवं समाज विज्ञान के विज्ञाता भी पर्याप्त प्रमाणों से इस बात की पुष्टि करते हैं कि मानव प्रारम्भ से ही समूह में रहता आया है और उसने अपने मूल भावों की अभिव्यक्ति सदा सामूहिक गीतों में की है। विश्व भर के कार्य और उत्सव लोक गीतों से पूर्ण होते हैं। शास्त्रीय संगीत के विद्वान, गीतों को लयबद्धता एवं भाव सबलता का प्रमाण मानते हैं। वे सारे संसार के लोक गीतों की धुनों में भारतीयता का संमिश्रण एवं सार पाया जाना सिद्ध करते हैं। विश्व के लोक गीतों का लक्षण बताते हुए एक पाश्चात्य विद्वान लिखते हैं—"फ्रान्स के गीत या तो सुन्दर [स्वादु] होते हैं या नाटकीय, जर्मन गीत बोझिल एवं हृदय-स्पर्शी, सामान्य योरोपीय गीत गेय, गुनगुनाने योग्य, पुष्ट एवं असम्बद्ध, रूसी गीत उदास और अनगढ़, स्पेनी मंद और स्वप्निल तथा हिब्रू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी नीग्रो गीत विलक्षण, सुन्दर एवं गहरी मार्मिकता लिये होते हैं" [१]

हिन्दी साहित्य कोष के संपादकों ने अपने विशद ग्रंथ में लोक गीत शब्द द्वारा १. लोक में प्रचलित गीत २. लोक निर्मित गीत ३. लोक विषयक गीत आदि अर्थ संकेत दिये हैं। फिर लोक गीत का स्पष्ट विवेचन करते हैं और लोक-सृजनकर्ताओं के निर्वैयक्तिक गीतों को लोक गीत बताते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति है।

लोक गीत लोक के लिये अपार ज्ञान के श्रोत हैं। वसुधा पर मानवता का अभ्युदय गीत-शिक्षा का ही अमृत फल है। इसी साहित्य केन्द्र से हमें सारी कलाओं की व्यंजनाएं मिलती हैं। लोक गीत हमें समाज-सापेक्ष नियम सिखाते हैं, नीति बताते हैं एवं अपने कार्य में ध्यान केन्द्रित कराते हैं। इनमें बुद्धि को सत्पथ की ओर ले जाने वाली एक महान शक्ति है। भारतीय लोक अति प्राचीन समय से गीत गाता आया है। उनमें गीतों का अपना गृहस्थ है, और उसमें उनका अनुशासित परिवार है। वह व्याकरण के संज्ञा शब्द की भांति आदमी, जानवर, जाति, स्थान और गुण आदि प्रत्येक वस्तु की संश्लिष्ट गौरव गाथा लिये हुए है। वास्तव में गीत मानव जीवन के छाया-स्वरूप पुरातन संगी हैं। उसके हर घड़ी के साथी हैं। फिर भी कभी कभी कोई भारतीय साहित्य शास्त्री लोक गीत संग्रह कार्य को देखकर नाक भौंह सिकोड़ते दिखाई देते हैं और गीत संग्रह के

---

१ भारतीय लोक साहित्य—श्याम परमार

हानि - लाभ विषयक प्रश्न भी पूछ लेते हैं। किन्तु ये प्रश्न उन्हें रसिक विधाता से ही करने चाहिये क्योंकि उसीने भारत भूमि को तमाम दुनिया से अनुपम बनाया है। मनुष्य के लिए प्रकृति के उन्माद से उन्मत्त होना स्वाभाविक ही है। जब प्रकृति का रूप सौन्दर्य ही आकर्षक एवं मनमोहक हो तो उनका दास [मनुष्य] कब कुंठित रह सकता है ? अस्तु, मैं यहां उन सर्व महानुभावों की शंका का समाधान लोक गीतों की उपादेयता का महत्व बताकर करना चाहता हूं।

गीतों में विवाह और जन्म के अवसरों को बड़े सरल ढंग से गाया जाता है। इसलिए गीतों द्वारा मानव रीति - रिवाजों का सरल रहन-सहन ही सामने आता है। उनमें न ओसर है, न दहेज, न पर्दा है, न अनमेल विवाह है। केवल अलौकिक आदर्शों के ही पाठ मिलते हैं। मातृ-पितृ भक्ति, आज्ञापालन, पतिवृत धर्म, भाई बहिन का प्रेम, पति-पत्नी का सुखी जीवन, सतीत्व की रक्षा, नीति के बोल, सरल शिक्षा, शील और साहस, शूरता - वीरता आदि की अनेक कोमल कथाएं गीतों में उच्च आदर्शों सहित व्यक्त हैं। गीत का मानव चरित्र के गठन पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वे उनके अभिन्न मित्र हैं। ओर वे साधुता की ओर ही ले जाते हैं। गांव के वृद्ध स्त्री - पुरुषों से वार्तालाप किया है और वे जानते हैं कि गीतों से उनमें कैसी नीतिमयता आ जाती है। गीतों को सुनकर जब हम अपने चरित्र को टटोलते हैं कि हममें ये गुण कहां तक विद्यमान हैं और फिर उन्हें धारण करने का प्रयत्न करते हैं। सास-वहू की कलह, देवरानी जेठानी तथा ननद-भौजाई की लड़ाई और नव - वधू के साथ दुर्व्यवहार करने वाली स्त्रियों को सन्मार्ग दिखाने के पथ-प्रदर्शक हैं। गीतों में दुष्टों के कुकर्म की सजा को सुनकर तो कितने ही व्यक्ति गिरते गिरते बचते हैं। कौन सा ऐसा स्त्री पुरुष होगा, जो गीतों की पवित्रता और स्वच्छता सुन लेने के बाद अपने चरित्र को सशक्त बनाने के लिए प्रेरित न हुआ हो ? इनकी त्याग - विराग भावना से चरित्र शुभ गुणों से भरने लगता है। यह प्रभाव बालक, युवा और वृद्ध पर अनायास ही पड़ता रहता है। लोक गीत मानव - मात्र के अनुपम आदर्श हैं। जिससे इन्हें हृदय में स्थान दिया गया है, सज्जनता उनकी अपनी सीख है।

लोक गीतों का अध्ययन करने से हमें अपने देश के रंगीले स्थान, सुन्दर वस्तुएं, कला-कारीगरी और रीति-प्रथाओं का परिचय मिलेगा। जिनसे कवियों, लेखकों, नेताओं और कलाकरों को पर्याप्त लाभ होगा। इनके संग्रह संपादन से मौखिक एवं विस्मृत-साहित्य की रक्षा हो जायेगी और नारी जाति के बुद्धि विवेक तथा रचना विज्ञान के पवित्र तत्वों की अन्य कवियों से तुलना करना संभव होगा। कविता की नवीन विधाओं पर लोक गीतों की सरसता का प्रभाव भी उनके लिपिबद्ध होने से ही पड़ेगा। आधुनिक कविता की कृत्रिमता की अपेक्षा लोक गीतों की

स्वाभाविकता का असर मानव मात्र पर अधिक शीघ्र एवं स्थायी होगा। इनके द्वारा जन-साधारण को भी प्रभावित किया जा सकता है। इन गीतों में असंख्य सुन्दर, अनोखे, सरल एवं उपयोगी शब्द मिलते हैं, जिनको प्रकाशित करवा देना ही राष्ट्रभाषा की उन्नति में श्रेष्ठ सहयोग है। हिन्दी साहित्य में प्रवाद, पहेलियों, कहावतों, और चटपटे मुहावरों की अभी अत्यन्त आवश्यकता है। लोक नाट्यों और उनकी शैली से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इन नाटकों में अनेक मानवीय परिस्थितियों के सफल चित्रण मिलते हैं। प्रेमी को पाने का प्रयत्न, विघ्नों के बाद फल प्राप्ति, विश्वासघात, दुर्घटनाएं, सौतिया डाह, पहेलियों द्वारा सौभाग्य निर्माण, पुनर्जीवन की कल्पना, स्वर्ग-नरक, भूत-प्रेत, डायन-स्यारी, परीलोक, पशुओं की मनुष्य सेवा, प्रतिज्ञा की दृढ़ता, आवृत्ति, ध्रुवक, संख्या, वर्णन, लोक साहित्य के गंभीर तत्व हैं। संस्कृत शास्त्रियों व वैदिक वाङ्मय का मुंह फुलाकर अभिमान रखने वाले लोगों ने अपनी पेटपूर्ति के लिए दुनिया को बहुत गुमराह किया। उन्होंने धर्म के नाम पर अन्य लोगों को मूर्ख बनाने की सदैव चेष्टा की है। प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने जन साधारण को पढ़ने से रोका है। बाहर जाने से मना किया है। लुक छिपकर पढ़ या बढ़ जाने पर उनका सर्वनाश करवाया है। केवल कबीर, नानक, रैदास, मीरां जैसे भक्ति संप्रदाय के उन्नायक संत ही इसके अपवाद हैं।

वैदिक धर्मावलंबियों ने अपने आप को सर्वे-सर्वा बनाये रखने के लिए प्रत्येक संस्कार को वैदिक मंत्रों से पूर्ण करने का विधान प्रचलित किया है। जन-साधारण के लोकाचार को बंद करने का भारी प्रयत्न भी किया है। मगर प्रतिभा पर किसी जाति या वर्ग विशेष का अधिकार नहीं रहता है। प्रकृति का न्याय मानव मात्र पर एक जैसा होता है। तभी तो यह आचार व्यवहार आज भी ज्यों के त्यों चल रहे हैं।

लोक गीत क्या है — समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं गीत-बद्ध होकर व्यक्त हुई, उनके लिए लोक गीत उपयुक्त शब्द है।[१] यह शब्द जन समुदाय द्वारा गाये जाने वाले गीत विभागों का एक विशेष परंपरागत गीतात्मक वृत्त है। गीतों की प्राचीनता तथा सत्यता हमें उनके मौखिक रूप से प्राप्त होती है। दादी-पोती और नानी-दोहिती के कथ्य संबंधों में यह लोकाभिव्यक्ति विकसित होती है। भारतवर्ष में आर्य आगमन से पूर्व की यह मूल समाज-शिक्षा पद्धति वैदिक सभ्यता से भिन्न होती हुई भी मूल सभ्यता के रूप में अमर, अखंडित एवं सतत् प्रवहशील है। आज भी प्रत्येक मांगलिक मौके पर आचार, परंपरा एवं अनुष्ठान को मनाने के लिए लोक गीत ही श्रेष्ठ माने जाते हैं।

१ भारतीय लोक साहित्य पृ. २५ डॉ. श्याम परमार

लोक गीत तो मानव-जीवन के वेद, उपनिषद्, पुराण और महाकाव्य हैं। संभवतया आरंभिक युग के वेद भी आर्य जाति के गीत ही थे। अतः जिस प्रकार वेद आर्य संस्कृति के ज्ञानागार हैं, वैसे ही लोक गीत भी हमारी संस्कृति के भव्य भंडार हैं।

लोक गीतों की विशेषता — लोक गीतों की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ एकदम घुले मिले हैं। यह साहित्य जन-समुदाय का हीरक मंडित अमूल्य भूषण है। इसे हृदय का नवसर हार, कंठ का कंठाभूषण और कानों का शृंगार कहा जा सकता है। गीत जीवन के साथ तादात्म्य होकर चलते हैं। लोक इनकी आत्मा हैं और ये लोक की आत्मा हैं। किसी एक के नहीं, सारे लोक का अपनत्व इनमें निहित है। गीत जनता की मौखिक भावाभिव्यक्ति है, लिखित साहित्य नहीं। लिखित होने पर तो उन पर देश व काल की छाया दिखाई देने लगती है। मगर जन मानस का सरल स्वभाव उनसे कदापि अलग नहीं हो सकता। वह प्रेम और अभिन्नता को एकनिष्ठ भाव से व्यक्त करता रहता है। पल पल की पवित्र भावनाएं लोक गीतों में गुंफित हैं। पारिवारिक पोशाक का कौनसा ऐसा आंचल है, जो इन गीतों की लोकानुभूति से न गूंथा गया हो। जीवन की मृदुलता और कठिनाइयों की घड़ियां, दोनों ही दशाएं गीतों में आकर मिली हैं। ज्ञान की सरलता और सत्यता, विचारों की गंभीरता एवं व्यापकता इन लोक गीतों में ऐसी ओत-प्रोत हो रही है कि इनके कलात्मक महत्व को देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। ये गीत दुख-सुख भरे जीवन का इन्द्रधनुष है। इनकी मौलिकता, विशेषता, आह्लाद, आह्वान और मर्म अपने ही निरालेपन में लवलीन है।

गीतों का महत्व एवं उपयोगिता — मनुष्य अपने सांस्कृतिक विकास में पीढ़ियों से राग-रंग रहस्य, एवं दुख-सुख की बातें लिये हुए चल रहा है। हर्ष और खुशी में उसने गीत गाकर आनन्द मनाया है और दुख व विषाद में भूलकर भी गीत द्वारा उसको सहन कर लेने की शक्ति पाई है। अतः कहना पड़ता है कि लोकगीत मानव जीवन को प्रमुदित करने वाली एक अचूक औषधि है। दुख-सुख के समय मानव मन में जैसे भी भाव उठे, वे सब रामबाण का काम कर गये। इनसे हमारी रागात्मक वृत्ति जागृति होती है, जिससे सारा संसार प्रिय भी लगता है। लोक गीत न होते तो दुखी और निराशामय संसार होता। लोक गीत विषाद को मिटाने, शोक को समेटने एवं दुख को मेटने वाले नित नये उपदेश हैं। विवाह, त्यौहार पुत्र-जन्म पर हर्ष का भाव — तो बहिन और बेटी की विदाई पर ये लौकिक-दुख की तीव्रता को सहने की शक्ति देते हैं। कहीं कहीं मृत्यु के अवसर पर भी लोक गीत या भजन गाकर आपत्ति वेला को शीघ्र व्यतीत किया जाता है। राजस्थान में वृद्ध की मौत पर हर के हिंडोले और शिशु की मौत पर 'छेड़े'

प्रचलित हैं। इन विरह गीतों को राजस्थानी में झुरावा या झोरावा कहते हैं।

लोक गीतों के साहित्यिक अरमान भी हैं। ये विशुद्ध भावों से परिपूर्ण हैं। तीज और भात के गीत किसी भी भाई और बहिन को विह्वल कर देंगे। ओळूं, आम्बो, इमली, इकथंभियो महल, उमराव, निहालदे, नींबू, नारंगी, नीमड़ली, नीमड़ली, नागजी, नींदड़ली, वड़ली, बांवळियो, वदळी, पीपळी, पपीयो, पन्नामारू, पनजी, मरवो, मूमल, मिरगो, महल, सूवटो, सपनो, कुरजां, कसुंभो, लहरियो, जल्लो और हिंडोळो आदि राजस्थानी लोक गीतों का महत्व जितना दाम्पत्य प्रेम के लिए संभव हुआ है, उतना किसी अन्य काव्य का नहीं। कितनी ही ऐसी काव्य व्यंजनाएं हैं जो हमारे पारिवारिक संबंधों को सशक्त बनाती हैं। लोक गीत प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा होते हैं। ये प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार करके सुख शान्ति प्रदान करते हैं। सामूहिक लोक गीत अत्यंत रंजक और रमणीय होते हैं। कृत्रिम सौन्दर्य की व्यवस्था के अभाव में मनुष्य को अपने मनोरंजन की स्वयं ही व्यवस्था करनी पड़ती है। छोटे नाडों पर, मोटे टीवों पर, खेतों और खोडों में, पगडंडियों एवं पहाड़ों पर, सीर-सांझे में ठेके-चेजे पर, संयोग-वियोग में, रम्मत-रास के रागात्मक अवसर पर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव भावनाएं गीत बनकर उनके कंठ से निकलती हैं। खेती में हल चलाते हुए तेजा का गान, श्रम-कार्यों में रामभणत, कुओं पर दूहों का संगीत, पशु चराते हुए डोरी का गाना और फागुन में धमालें बोलना मानव प्रकृति के नाना रूपों को व्यक्त करते हैं। मनुष्य के इन्हीं गानों का नाम लोक गीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसकी समस्त सुख-दुख की कहानी गीतों में चित्रित है। मानवीय जीवन की प्रसन्नता व झुंझलाहट या क्रोध व प्रेम या राग व विराग का लोक गीतों में सर्वोत्कृष्ट रूप मिलता है। जन जीवन में व्यापक रहने वाली आकांक्षाएं और इच्छाएं जितनी लोक गीतों में स्पष्ट और सजीव होती हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ हैं।

गीतों में उपमान एवं विशेषण—राजस्थानी लोक गीतों में पारिवारिक व्यक्तियों के उपमान एवं विशेषण बड़े बेजोड़ रूप से उपस्थित किये जाते हैं। उनमें पति को भंवरजी, कंवरजी, ढोलामारू, जल्लामारू, गाढ़ामारू, पन्नामारू, बिलालो, वादीलो, आंटीलो, हठीलो, मदछकियो, मनभरियो जैसे अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है, पत्नी को इन्ही गीतों में, धण, गोरी, मरवण, नाजो, मृगानैणी, मांनेतण, तनक मिजाजण, सदा सुरंगी नार आदि नामों से पुकारा जाता है। पिता को जलधर, हेमाचल, माता को रातादेई, भाई को कांनकंवर और भोजाई को रावा आदि अपनत्व एवं श्रद्धा भरे उपमानों से गाया

जाता है। इनमें बहिन-बहिनोई, सास-स्वसुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी, ननद-ननदोई और पुत्र-कन्या आदि के विशेषणों के सुन्दर रूप पाये जाते हैं। स्त्री सौन्दर्य के नखशिख उपमान तो गीतों की जान ही हैं। इनमें स्त्री शृंगार पति शृंगार, अभिवादन, आशीर्वाद के संकेत भी देखने योग्य होते हैं।

गीतों में प्रश्नोत्तर की कला — याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान एवं गार्गी जैसी विदुषी के वाद विवाद की भांति कुछ लोक गीतों में प्रथम प्रश्न करके फिर उसी में सीधा उत्तर दिया जाता है। इस संवादी पद्धति से गीत का रूप निखर जाता है। गीतों का मान और इज्जत भी प्रश्नोत्तर के ढंग से बढ़ती है। यह प्रवृत्ति सामाजिक भावना से संयुक्त होकर विशुद्ध रूप में चलती है और इसी से लोक मानस का सही पता पड़ता है तथा जीवन को विशालता का आकर्षण बढ़ता है। कांकरड़ी, कलाळी, पणियारी, लाडूड़ौ, कुरजां, सारसड़ी, सुपनौ, ओळूं, इकथंभियौ महल, वायरौ आदि जवाब सवाल के श्रेष्ठ गीतात्मक उदाहरण है।

पशु पक्षियों को संबोधन — पशु-पक्षी मानव जाति से निकटतम प्राणी हैं। जगत में इनसे पर्याप्त सहयोग मनुष्य को मिलता है। पक्षियों के आकाश में उड़ने की विद्या और ऊंट घोड़ों की शीघ्र संचार कला, दुख-सुख के मौके पर मानव को सदा से सहायता देते आये हैं। महाकवि कालिदास ने अपने शृंगार वर्णन में अनेक पशु-पक्षियों को स्थान दिया है। लोक गीतों में भी ये पशु-पक्षी, मानव के सुख-दुख की अनुभूति में सरोबार दिखाई देते हैं। काग, कबूतर, कुरज, तीतर, कमेड़ी, सारस, सूवो, मिरगौ, खोड़ौ मिरगलौ, मिनड़ी, कुत्तौ, गऊमाता, रुणझुण बैल, भाजणौ करहलौ, लीली घोड़ी, सिंह, सूकर, रींछ आदि का सहयोग-वर्णन गीतों की एक प्रवृत्ति है। नाम जोड़ना, संख्या बताना और बाट जोहना भी राजस्थानी लोक गीतों के कुछ विशिष्ट तथ्य हैं।

लोक गीतों में नारी का स्थान — लोक गीतों के सृजन में जितना महिलाओं ने हाथ बंटाया है, उतना पुरुषों ने संभवतया नहीं। नारी जाति सीधी, सरल एवं भावप्रवण होती है। उसके मृदुल कंठों ने अपने अभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति सुख तथा दुख दोनों मौकों पर गाकर ही प्रगट की है। नारियां पुरुषों की तरह वाद्य का सहारा नहीं चाहतीं। भाई से भेंट करते समय बहिन अपनी जीवन-गाथा गीतों में व्यक्त कर देती है। उसके स्नेहपूर्ण विलाप में भी एक लयपूर्ण संगीतात्मकता होती है। स्त्री गीतों में शृंगार, प्रणय, वियोग तथा वात्सल्य का भाव प्रचुर मात्रा में है। हर्ष, विषाद, प्रेम-घृणा, उल्लास-उमंग, करुणा-विलाप भी नारी जीवन के बालिका, वधू एवं जननी आदि रूपों में एक एक कर यथा अवसर मिलते रहते हैं। उसके जीवन का धार्मिक स्वरूप लोक गीतों में चित्रित है। वह प्रत्येक उत्सव, त्यौहार, रीति-रिवाज, पर्व, प्रथा को मनाने के

लिए गाती है। इन सब के माध्यम से उसका संपूर्ण जीवन ही संगीतमय है।

राजस्थानी लोक गीतों में नारी के दो चित्र प्रायः प्रस्तुत हुए हैं। वह एक ओर तो भाव-प्रवीण नागरी, पतिव्रता प्रियतमा, गृह-लक्ष्मी, सती-साध्वी तथा श्रेष्ठतम माता एवं सास है। उसके बालिका, युवती, प्रौढ़ा और वृद्धा के विभिन्न रूप अपनी सीमाओं में पूर्ण हैं। दूसरी तरफ स्त्री का अन्य रूप फूहड़, कर्कशा, कलहगारी, कामणगारी, छिनाळ, जैमती, जेळू आदि व्यवहारों से विभूषित भी है। स्त्री अपने सामाजिक संबंधों में माता, ननद, सास, देवरानी जेठानी, मासी, विमाता, सौत आदि कई रूपों में नियोजित है। इन सभी संबंधों के बीच गीतों में उसे सुन्दर उपमानों सहित अत्यंत मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पत्नी-पद्मनी, ननद-सोदरा (सुभद्रा), सास-सावित्री, देवरानी-बाला, भोली-नार, जेठानी-नारादूती, विमाता-मांई मां, सोक, मा जाई-सी के नामों द्वारा गाई जाती है।

लोक गीतों में महिला जीवन की सभी परिस्थितियों एवं अवस्थाओं का अनुपम उल्लेख पाया जाता है। गीत उनके जीवन के बहुत प्रिय साथी हैं और वे बचपन से ही तन्मय होकर उन्हें गाया करती हैं। गीतों के काल्पनिक जगत की अभिव्यक्ति उनकी भावी इच्छाओं की पूर्ति के साथ शिक्षा का क्रम भी बन जाया करती है। नन्हीं बालिकायें लोक गीतों द्वारा अपने जीवन के रहस्यों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। गीतों की क्रियाओं में वे सभी बातें प्रत्यक्ष होती हैं, जो उसे बड़ी होने पर निभानी पड़ती हैं। प्रायः देखा जाता है कि बालिकाओं के गीतों में गृहस्थी के कर्त्तव्य संभालने की सहज स्वाभाविक कामना व्यक्त होती है। एक बालिका गीतों में बड़े चाव से मां की इजाजत लेकर ही ऊंचे मगरे पर जाना चाहती है। वहां से वह पक्की काचरियां लाने की इच्छुक है। उनको छीलकर छौंकेगी और भैया को जिमायेगी। भैया उसका भाई है, वह भैया की बहिन है—

ऊंचे मगरे जाऊं अे माय, किरिया काचर लाऊं अे माय
छोलनै छमकाऊं अे माय, वीरा नै जीमाऊं अे माय
वीरो म्हारो भाई अे माय, हूं वीरा री बाई अे माय

बालिकाएं अपने छोटे भाइयों को सुलाने या खिलाने के लिए भी ममत्वपूर्ण लोरियां गाती हैं—

सोई रे भाई सोई, थारी मां करै रसोई
रसोई में खाजा, थारो बाप दिल्ली रो राजा
लोरी अे बाई लोरी, तनै दूध भरी कटोरी
ऊपर सक्कर भोरी।

बालिकाओं के हृदय की भावकुता का परिचय उनके प्रारम्भिक जीवन से ही पाया जाता है। वे नानेरा, दादेरा, गौरी-पूजा, घुड़ला-चुड़ला, अम्मा-धीवड़ गुड्डे-गुड्डी और साथण-सहेलियों से संबंधी अनेक भावी विषयों पर दुख-सुख के गीत गाने आरंभ कर देती हैं। बचपन बीत जाने के बाद उनका मिलन बड़ी मुश्किल से होता है। उसी का चित्रांकन इस गीत में है —

वीरा रै विवाह में बहिन सूं मिलस्यां
बाबल सूं मिलस्यां मायड़ सूं मिलस्यां
साथण सूं कद मिलस्यां अे
साथण मेळौ दोरौ अे

कीड़ी होस्यां नगरां फिरस्यां
नटणी होस्यां बास्यां चढ़स्यां
साथण सूं कद मिलस्यां अे
साथण मेळौ दोरौ अे

टाटी ओले नणदल बोली
जद म्हारौ जीवड़ौ दोरौ अे
मगरै (धोरां) लारै साथण बोली
जद म्हारौ जिवड़ौ सोरौ अे
साथण मेळौ दोरौ अे

वास्तव में नारी जीवन की यह एक मार्मिक स्थिति है। लड़के बड़े होकर अपने बचपन के साथियों से हर जगह मिल सकते हैं, पर लड़कियां विवाहोपरांत अपनी सहेलियों को कदापि नहीं पा सकतीं। ये पीहर और खेल के गीत उसे बड़ी होने पर भूलने ही पड़ते हैं। बालिका से किशोरावस्था में पहुंच कर उसे अपने नये जीवन के गीत गाने होते हैं। इन गीतों में बना-बनी, सास-ससुर, और देवर-जेठ, नणद-भोजाई आदि कुटुम्ब वालों के साथ अपने रहन-सहन और व्यवहारों का वर्णन होता है। कन्या का यह गीत व्यवहार ही उसको गृहरानी या गृह लक्ष्मी बना देता है। रमणी बन जाने पर उसके हृदय में सुमधुर, रमणीय एवं करुण कल्पनाओं के नव्य नीरद उमड़ पड़ते हैं। जिससे हर समय जीवन के अथाह समुद्र में गीतों की हिलोरें उठती रहती हैं। गीतों में स्त्री अपना सारा मन और मस्तिष्क लगा देती है। काल्पनिक वर्णनों में उन्हें खूब सोचना पड़ता है, जिसका प्रभाव उसकी बुद्धि पर पड़ता ही है। यही गीत स्वरों में अनुरंजित होते हैं और उनका सहज स्त्रैण कंठ उनका सहायक सिद्ध होता है।

बचपन से पीहर की धूल में खेलती हुई लाडली बेटी को औरों की होकर विदा होना पड़ता है। तब उसका जीवन एक नया प्रश्न बन जाता है। वह पिता के घर पर पराई बन जाती है। वह पशु की तरह दूसरों के हाथ संभला दी

जाती है। फिर तो वह कभी कभी अनजाने मौकों पर ही पुनः अपने घर आ सकेगी —

के आवूंगी मैं ओसर-मोसर , के वीरा रै विवाह

कन्या को ससुराल गमन के समय कोयल की उपमा दी जाती है। उसे वर के साथ विदा करते समय गीतों की हृदयद्रावक कल्पना से अभिनन्दित किया जाता है —

वन खंड री अे कोयल , वन खंड छोड़ कठै चाली ?
थारै आळे अे दीवाळै गुड़िया घरी , वन खंड री अे कोयल
थारी सात सहेलियां उणमणी , वन खंड री अे कोयल

उधर वही कन्या अपने ससुराल पहुंचकर पुनः लोक गीतों के द्वारा आव-भगत करवाती है। उसके विवाहित जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य का उल्लेख इन गीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

गीत एक स्फूर्तिप्रद क्रिया है। इसके द्वारा स्त्रियां अपनी अन्तरंग इच्छाओं को प्रकाश में लाकर जीवन की परतंत्रता से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाती हैं। राजस्थान में नारियां अपने जेठ एवं ससुर से बोलती नहीं हैं, मगर जब उनके गीत गाने बैठती हैं, तब सारा हृदय खोलकर आगे धर देती हैं। अपने गहने-जेवर तथा मकानादि के अभीष्ट अभावों और अपनी सारी इच्छाओं का निर्भय होकर वर्णन कर देती हैं –

सुसराजी म्हानै चोवारो चिणवादो
बैठै थांरी कुळ, कुळ वहू जी म्हारा राज
बवड़ ओ म्हैं ई फेर चिणावस्यां
चेजारै रो बेटो घरां, घरां नही जी म्हारा राज
सुसराजी थैं बोली रा मीठा
दमड़ा थास्यू ना, ना कढ़ै जी म्हारा राज

वे नटखट देवरों को भी मीठे गीतों से खुश कर देती हैं—

आज तो म्हारै देवरियै नैं सरदी गरमी लागी रे
सळसळ करतो सीरी करदू रे
पण सारो कोनीं रे, देवर म्हारा रे।

ऐसे गीत महिलाओं के तृप्त जीवन, उज्ज्वल चरित्र तथा प्रौढ़ प्रवृत्तियों के द्योतक होते हैं। नारी के पास तो अपने आप को खुलकर अभिव्यक्त करने का साधन केवल ये लोक गीत ही हैं।

नारी ने अपनी गहरी मनोवेदनाओं को गीतों में गाकर समाज के सामने रखा है; अपने अन्तस्तल की पीड़ा को प्रगट करने का नारी ने गीत को एक सहज

और सरल माध्यम बना रखा है। मानव का प्रेमोद्यान सदैव नारी की देवसरि के गीतों के नीर से ही सिंचित होकर लहलहाता है । सुख या दुख कैसा ही समय क्यों न हो नारी ने अपना गान विसर्जन नहीं किया । उसने हंसी-विनोद और व्यंग की जो विशुद्धता बिखेरी है, वह सर्वोच्च साहित्य का कान्ता-सम्मत गुण है । इस प्रकार नारियों ने लोक गीतों में परंपरा, इतिहास और संस्कृति की संपत्ति को अपने कंठ के सहारे सुरक्षित रखा है।

भारतीय नारी परिवार के दैनन्दिन कार्यों में व्यस्त रहती है । इसीलिये वह गृहस्थ के प्रत्येक कार्य को गीत में गाकर मंगलमय भी बना देती है। हर घड़ी के कार्यों में उसके साथ लोक गीत लगे रहते हैं। खेती, चाकी-चूल्हा, चरखे आदि से ही स्त्री जाति की समृद्धि है। वे चरखा चलाती हुई गाती हैं—

चाल रै चरखला, हाल रै चरखला
ताकू तेरौ सोवणो, लाल गुलाबी माल
चरकूं मरकूं फिरै घणेरौ, मधरौ मधरौ चाल

चरखा महिलाओं के लिए एक उत्पादन-क्रिया का साधन हैं। रूई पैदा करके कारीगरी के साथ कपड़ा बुनना और रंगना उनकी अपनी परंपरा है । ये घरेलू धन्धों के छोटे छोटे कार्य ही नारियों के कल्पना बोध हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर वे गीत रचना करती हैं और सहयोगी वस्तु एवं पात्रों के माध्यम से अपने वर्ग की घटनायें गुंफित कर लेती हैं। इन लोक गीतों के साथ माताओं की लोरियां, बहिनों का स्नेह और पत्नियों की विरह वेदना बड़ी तिक्त एवं हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता से अंकित है । ये लोक गीत इतिहास, भूगोल, पिंगल, व्याकरण, तर्क और न्याय को आत्मसात किये हुये हैं और प्रकृति व कला का कोई प्रेरक तथ्य इनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा ।

शिक्षा के विद्या-मन्दिर—लोक गीत नारी शिक्षा के महान केन्द्र हैं । इनकी शिक्षा को हृदयंगम करने के लिए कोई खास स्थिति, समय एवं व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती । यह तो स्वतंत्र रूप से हर समय प्रत्येक जन मन में जमा होती जाती है। लोक गीत अनादि काल से भारतीय संस्कृति के अभिन्न तथ्य की भांति मानव के साथ साथ चलते आये हैं। राजस्थान को तो गीत-रत्नाकर कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । यहां के गीत अपनी प्रादेशिक अभिव्यंजना के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। ये संगीत तथा साहित्य दोनों पक्षों से संपूर्ण होते हैं। उपदेश और नीति की दृष्टि से लोक गीत बड़े गौरवशाली परंपरा के नियामक हैं और यहां की स्त्रियों के लिए ज्ञान कोष का कार्य करते हैं । इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आंखों द्वारा अंगीकृत नहीं करके, कानों द्वारा ग्रहण करती है। नारी इन्हीं गीतों से शील, साहस, सतीव्रत, सहृदयता एवं प्रेम आदि अनेक आदर्श गुणों के

ज्ञान एवं लाभ को प्राप्त करती है। छोटी - छोटी बालिकायें माताओं से अपने भावी वधू जीवन में पृथक पृथक प्रकृति वाले लोगों के साथ पृथक पृथक परिस्थितियों में रहने की बातें इन लोक गीतों को सुनकर गुन लेती हैं, जो नये जीवन में प्रवेश करने पर उन्हें सुखी गृहस्थ की नारी [रानी] बना देने में समर्थ होते हैं। वह मां का प्यार, बहिनों का दुलार, सखी-सहेलियों का प्रेम भूलकर श्वसुर, पति, सास और जेठानियों आदि से लाड़प्यार तथा दुलार को पाने की अधिकारिणी बन जाती हैं। वह अपने शिष्ट व्यवहार से सारे घर को सम्पन्न, यशस्वी एवं मंगलमय कर देती हैं। सचमुच राजस्थान की नारी घर की शोभा, शृंगार, त्याग और तपस्या की देवी है। धरती की भांति सहिष्णु, गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह अडिग और शरत् बाबू के शब्दों में मंदिर की भांति पवित्र है। सद्गुणों से संपन्न महिलाओं की उक्तियाँ भी गंभीर और चारित्रिक महत्ता को व्यक्त करती हैं। उनमें छिछोरपन या हलकापन कभी नहीं आ पाता। पीहर से विदा होती हुई एक वधू की मनोभावना को संवादात्मक शैली में इस प्रकार गाया गया है :

> अेकर करहला थारा, मारूजी पाछा मोड़,
> राजींदा ढोला ओळूं घणी आवै म्हारा बाबोसा री।
> सुन्दर गोरी ओळूं थारी परी रे निवार,
> चम्पक बरणी, बाबोसा री ओळूं सुसरोजी थारी भांगसी।
>
> अेकबर मारूजी घुड़लाजी पाछा बेर
> राजींदा ढोला ओळूं घणी आवै म्हारी माय री।
> सुन्दर गोरी ओळूं थारी परी रे निवार
> मिरगा नैणी, माऊजी री ओळूं सासूजी थारी भांगसी।

राजस्थानी में ओळूं याद को कहते हैं। इस गीत में पत्नी पति से प्रार्थना करती है कि केवल एक बार प्रियतम अपने ऊंट को लौटा लो। राजन ! मुझे अपने पिता की बहुत याद आती है। पति उसको विश्वास दिलाता है कि चम्पकवरणी प्रियतमा, तुम पिता की याद छोड़ो, पिता की कमी आगे तुम्हारे श्वसुरजी पूरी कर देंगे। फिर वह अपनी मां की बात कहती है। तब वह पुनः कहता है कि मां की कमी तुम्हारी सासूजी पूरी कर देंगी। इस तरह नव वधू को अपने नवीन जीवन में कर्त्तव्यों की याद भी दिला दी जाती है और उसके नये परिवार में ही अपने परिवार का समाहार होना आवश्यक बना दिया जाता है।

एक अन्य गीत में सास एवं बहू का सुखद संवाद है। इस गीत में नव वधू अपने परिवार रूपी आभूषणों की उपमाओं में ससुराल के संबंधों को पूर्ण आत्मसमर्पण के साथ व्यक्त करती है :

म्हारै आंगण आंबौ मोरियौ
पसवाड़ै जी पसरी गज वेल
सहेल्यां ओ आंबौ मोरियौ,
म्हारा सासूजी पूछै बहू थारै गहणां री अरथ बताय
सहेल्यां अे आंबौ मोरियौ।
सासूजी गहणां जी गहणां कांई करौ,
गहणां म्हारा देवर जेठ।
सासूजी गहणां जी म्हारौ सह परिवार,
सहेल्यां अे आंबौ मोरियौ।

इसी गीत का एक अन्य रूपान्तर है:

मधुवन रौ आंबौ मोरियौ
ओ तौ पसरियौ आखी मारवाड़
बहू रिमझिम महलां ऊतरी
आई कर सोळा सिणगार,
सासूजी पूछयौ बहू म्हारा
गहणां पहर दिखाव
मधुवन रौ आंबौ मोरियौ,
म्हारा सुसरौजी गढ़ रा राजवी
सासूजी म्हारा रतन भंडार
मधुवन रौ अे आंबौ मोरियौ

मधुवन का यह आम्र मौर खिल आया है। वह सारे मारवाड़ में फैल गया है। सुखी संपन्न कुटुंब का प्रतीक यह आम्र वृक्ष है। सोलह शृंगार करके बहू महल से उतरी तब सासू ने कहा: बहू अपना शृंगार तो हमें बताओ? तब मुस्कराकर बहू कहती है: मेरे ससुर गढ़ के राजवी हैं और सासू रत्नों की भंडार है। इसी तरह सारे परिवार की सराहना मधुवन के आम्रमौर की भांति फैली हुई बताकर बहू कहती है कि वह सासू की कोख पर न्यौछावर है। तब सासू कहती है कि वहू मैं भी तुम्हारे वोल पर बलिहारी जाती हूं कि तुमने सारे परिवार को इस स्नेह से दुलराया है।

स्त्री का सच्चा आभूषण तो उसका परिवार ही है और पति की सेवा ही उसका शृंगार है। तुलसीदासजी ने भी कहा है—

एक ही धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पतिपद प्रेमा।

लोक गीतों की शिक्षा तुलसीदासजी की कविता की व्यापकता की तरह राजस्थान के प्रत्येक घर और गांव की नारियों में व्याप्त है। वह एक किसान की झोपड़ी से लेकर राजमहलों की महारानियों तक यही उज्जवल संदेश देती है।

गीत रचना में नारी का योग—घर गृहस्थी के सांस्कृतिक एवं पारिवारिक लोक गीतों की रचयिता प्रायः नारियां ही हैं। इन्होंने भांति भांति के अवसरों पर अनेक प्रकार के गीत रचे हैं। नारी के गीतों में करुण रस के अनोखे झरने प्रवाहित हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल एवं सरस होती है। स्त्रियों ने अपनी वृत्तियों के अनुरूप, सहज स्फूर्तिवश, औपचारिक एवं स्वयं के मनोरंजनार्थ इस साहित्य का निर्माण किया है। प्रकृति प्रेम तो इनमें कूट कूट कर भरा हुआ है और स्वाभाविकता इनका अविच्छिन्न गुण है। यहां आदर्श गृहस्थी का चित्र स्पष्ट रेखाओं में अंकित मिलता है। ये गीत मानव इतिहास के सुनहरे अनुभव हैं। अधिकांश लोक गीतों के सृजन का श्रेय नारियों को ही प्राप्त हो सका है। यह देवताओं एवं सिद्ध कवियों द्वारा सृजन किया हुआ साहित्य नहीं, ग्राम स्त्रियों के मुखारविन्द से निःसृत अपौरुषेय वाङ्मय है, जिसका तात्पर्य लोक साहित्य से है। अतः लोक साहित्य में विविध स्त्रियों के गीतों के अखूट खजाने भरे हुए हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे सांस्कृतिक गीत अपौरुषेय वाङ्मय कहलायेंगे। गीत ही क्या, अधिकांश कथायें, कहावतें, पहेलियां भी इसी वाङ्मय के अन्तर्गत आती हैं। पर गीतों का सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से पूर्ण अध्ययन होना चाहिये। क्योंकि समाज द्वारा सदियों से सताई जाने वाली स्त्री जाति के इन वैविध्य पूर्ण रत्नों का अब उनके स्वर, लय, टेक, चरण एवं काव्य आदि की सृजन क्रिया का मूल्यांकन किया जाना अत्यन्त आवश्यक बन गया है।

लोक गीतों के महिला समाज द्वारा सृजन किये जाने के विषय में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित 'क्यूं दीनी परदेस' की भूमिका में विजयदानजी देथा ने लिखा है "लोकगीतों की कलापूर्ण अभिव्यंजनाओं का सृजक कौन है और वह सृजक स्वयं को किस प्रकार इतनी सदियों से छिपाये हुए चले आ रहा है। लोक गीतों में वर्णित विषयों की महत्ता, कल्पनाओं की अनोखी सूझ-बूझ, अलंकारों का सहज ताना-बाना और उनकी अभिव्यक्ति के सामाजिक दायित्व को आत्मसात करते हुए क्या हम सृजक के अस्तित्व का आभास नहीं लगा सकते? लोकगीतों रूपी भव्य महल के असंख्य गवाक्षों में से किसी एक गवाक्ष में बैठकर क्या हम अपनी कल्पना से इस महल के वैभवशाली स्वामी का पता नहीं लगा सकते? सच है कि कला में कलाकार अदृश्य है! किन्तु अदृश्य होने मात्र से ही कला का कारण अस्तित्व विहीन नहीं होता। वस्तुतः कलाकार के अनुभूतिमय और संवेदनशील मन में ही कला का जीवन प्रश्रय पाता है और कलाकार अपने को कितना ही छिपाने का प्रयत्न करले, उसके अस्तित्व की झलक निरपेक्षतम कला में भी मिल ही जाती है।

तब लोकगीतों का निरपेक्षतम एवं अदृश्यतम सृजक कौन है? कहने को

सभी लोक साहित्य के मर्मज्ञ एक स्वर में कहते हैं कि लोक वांगमय की कलिका समाज की सामूहिक औसत भावनाओं में खिलती है। ये औसत भावनाएं समाज की मूल धारणा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, मांगलिक अनुष्ठान, पर्व-त्योहारों से रस संग्रह करती है और समाज की दिव्य वाणी में अपने आपको व्यक्त किया करती है। लोक-गीत सामूहिक व्यंजना है इसलिये इसका सृजन भी सामूहिक है और सृजक 'समूह' है। बात बिल्कुल सच है। किंतु हमें समूह नामक शब्द को कुछ और गहराई से समझना है।

किसी भी सामाजिक समूह को हम निश्चय ही दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं। समाज का एक विभाग पुरुष है और दूसरा – स्त्री। सामाजिक जीवन के दायित्वों को निभाने के लिये, पर्वों-अनुष्ठानों को मनाने या मानने के लिये इन दोनों ही सहज विभक्त समूहों को हम पृथक पृथक करें तो एक नवीनतम सत्य का आभास होने लगता है। ये जो लोकगीतों की कलात्मक अभिव्यंजनाएं हैं, उनका सीधा व सहज संबंध हमारे स्त्री समुदाय से निकल आता है। मानों महिलाओं की मांगलिक कामनाओं का छंदोमय और गीतिमय स्वरूप ही लोक संगीत की जीवात्मा है।"

लोकगीतों का वर्गीकरण: किसी भी अध्ययन की सुचारुता के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपनी प्रवृत्तिमूलक रूप में वर्गीकृत करके आत्मसात किया जाय। इसी दृष्टि से लोकगीतों का वर्गीकरण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण अपनी अपनी संग्रहीत सामग्रियों के अनुसार किया है। यदि अधिकांश विद्वानों के वर्गीकरण को सामने रखें तो मुख्यतया निम्नलिखित प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती हैं:

१. गीत के विषयानुसार यथा दाम्पत्य प्रेम, भाई-बहिन, देवी देवता आदि रूपों में।
२. गीत गाने वालों की दृष्टि के अनुसार यथा पुरुष गीत, महिला गीत, बाल्य गीत आदि।
३. गीत के प्रयोग विधा के अनुसार यथा नृत्य गीत, नाट्य गीत, सामुहिक गीत, एकाकी गीत आदि।
४. गीत के रचना-तत्व की दृष्टि से यथा मुक्तक एवं प्रबंध।
५. गीत के उपयोग के अनुसार यथा अनुष्ठान के लिये या मनोरंजन के लिये।
६. गीत का भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण यथा पहाड़ी क्षेत्र, समतल क्षेत्र आदि।
७. लोकगीतों का संस्कारों की दृष्टि से विभाजन यथा जन्म, विवाह,

मृत्यु इत्यादि सोलहों संस्कारों के अनुसार ।

निश्चय है कि ये सभी वर्गीकरण लोकगीतों की विभिन्न वृत्तियों के प्रतीक हैं और सभी में तथ्यात्मक स्थिति का अल्पांश ही मिलता है । कहीं वर्गीकरण में अत्यंत सहज विभागों को ले लिया गया है तो कहीं उसे अनेक विभागों में बांटा गया है । जहां विभागों का अभाव है, वहां वर्गीकरण की सुविधा का लाभ नहीं मिलता और जहां विभाजन को बढ़ाया गया है, वहां समान प्रवृत्तियों का पुनरावर्तन भी हो गया है । ये सभी वर्गीकरण के स्वरूप मुख्यतया उसी सामग्री से संबंधी मानने चाहिये जो विशिष्ट संग्राहक एवं विद्वान ने एकत्रित की है और अपने अध्ययन की मुख्य प्रवृत्ति को स्थापित करने की दृष्टि से उसने उल्लिखित किये हैं ।

अत: राजस्थानी लोक गीतों के विषय और प्रकारों का वर्गीकरण करना कोई साधारण प्रयास नहीं है । इनके असंख्य विषय और अनन्त प्रकार हैं । विभिन्न क्षेत्रों तथा जातियों के लोक गीतों में प्रकार ढूंढने पर प्रतीत होता है कि राजस्थान के सभी प्रदेशों और जातियों के लोक गीतों में अधिकांशत: समानता है । अत: लोक गीतों का सामान्य वर्गीकरण होगा [विषयानुसार गीतों का विभाजन] सामाजिक गीत, संस्कारों और रीति-रिवाजों के गीत, धार्मिक विश्वासों के गीत, वैलासिक रस सृष्टि के गीत और कार्य के गीत । गेय शैली की दृष्टि से यही वर्गीकरण हो सकता है : १. सामूहिक गीत २. एकाकी गीत ३. नृत्य गीत ४. नाट्य गीत और ५. ख्याल गीत । गायक-गायिकाओं की दृष्टि से लोक गीतों के तीन भेद कर सकते हैं– १. महिलाओं के गीत २. पुरूषों के गीत ३. बालक और बालिकाओं के गीत । भारतीय विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से लोक गीतों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है । पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय गीतों को ११ श्रेणियों में विभक्त किया है । श्री रामचन्द्र भालेराव ने गीत संग्रह की योजना में एक बार चार विभाग किये थे ; अर्थात प्रथम संस्कार विषयक, द्वितीय माहवारी, तृतीय सामाजिक व ऐतिहासिक, चतुर्थ विविध गीत । इस योजना में ९० प्रकार के गीतों की सूची थी । वृज लोक साहित्य के विद्वान डॉ. सत्येन्द्र ने गाने के उद्देश्य को लेकर सरल गीतों को दो भागों [अनुष्ठान संबंधी और मनोरंजन संबंधी] में बांटकर गायन के समय के मुताबिक विभाजन किया है । इनके वर्गीकरण में पांच विभाग मान्य हैं । डॉ. शंकरलाल यादव ने लोक गीतों को लघुगीत और प्रबंध गीत नामक दो श्रेणियों में बांटा है । फिर लघु गीत के पांच प्रकार और प्रबन्ध गीत के [लोक गाथात्मक] चार प्रकार लिखे हैं ।

सीता, दमयन्ती तथा लीला ने अपने धूलि धूसरित मणियां नामक लोक गीत विवेचन-ग्रंथ में गीतों के ६ खंड करके उनको १४ प्रकार में विभक्त किया

है। डॉ. श्याम परमार लोक गीतों की मुक्तक और प्रबन्धक दो श्रेणी मानने के बाद उनके पांच प्रकार बताते हैं। श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने संस्कारों को महिलाओं की अवसरोपयुक्त भाव भंगिमाओं से निखरे माधुर्य, संगीत एवं ऋतु-परिवर्तन से पैदा हुए गीतों के भेदों की दृष्टि से भोजपुरी लोक गीतों का वर्गीकरण किया है। श्री रामसिंह और उनके साथियों ने राजस्थानी लोक गीत साहित्य को पुरुष गीत और स्त्री गीत दो भेद बताकर इनके साथ बाल गीत नामक तीसरा भेद भी किया है। फिर इन तीनों के उपभेद भी बताये हैं। नरोत्तमदासजी स्वामी ने इन भेदों के बीस स्थूल प्रकार और २२६ सूक्ष्म भेद बताये हैं। श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने सात तथा श्रीमती स्वर्णलता अग्रवाल ने भी राजस्थानी लोक गीतों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया है। डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल ने संस्कार संबंधी गीत, व्यवसायिक गीत, अवसर के गीत एवं वैलासिक अथवा मनोरंजन संबंधी नाम से चार श्रेणियों में राजस्थानी लोक गीतों के करीब ५० प्रकार सम्मिलित किये हैं। श्रीमती अग्रवाल का यह विषय वर्गीकरण सन्तोषजनक नहीं है। श्री ओमप्रकाश ने बाल गीत, स्त्री गीत और पुरूषों के गीत नाम से मालवीय लोक गीतों का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया है।

श्री मनोहर शर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों में पौराणिक प्रकारों पर एक शोधपूर्ण निबन्ध लिखा है। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक प्रचलित नाम प्रकार भी बतायें हैं। श्री गींडाराम वर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों का महत्व सामाजिक, पारिवारिक और संगीत तीन प्रकार की दृष्टि से माना है। उन्होंने शेखावाटी के लोक गीतों का भी वर्गीकरण किया है, जो नीचे दिया जा रहा है— १. त्यौहारों के लोक गीत २. पर्वों के लोक गीत ३. सामाजिक एवं पारिवारिक सन्तों एवं ऐतिहासिक वीर पुरूषों के गीत। श्री देवीलाल सामर ने लोक गीतों को ६ प्रकार से समझने का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने निम्नलिखित तीन और प्रकार संभव बताये हैं— १. मरूभूमि के गीत [बीकानेर, जैसलमेर आदि के गीत] २. पहाड़ी प्रदेश के लोक गीत [डूंगरपुर, उदयपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही और आबू आदि क्षेत्र के गीत] ३. चंबल तथा बनास की समतल भूमि के लोक गीत [कोटा, जयपुर, भरतपुर, अलवर, करौली तथा धौलपुर आदि के गीत].

आज से तीस वर्ष पूर्व स्वर्गीय पंडित सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी लोक गीतों में क्षेत्र विस्तार की कल्पना निम्नलिखित तालिका लिखकर की थी। तालिका इस प्रकार है: १. देवी देवता और पितरों के गीत २. ऋतुओं के गीत ३. तीर्थों के गीत ४. व्रत, उपवास और त्यौहारों के गीत ५. संस्कारों के गीत ६. विवाह के गीत ७. भाई बहिन के गीत ८. साली-सालेलियों के गीत ९. पति-

पत्नी के प्रेम के गीत [संयोग-वियोग] १०. पणिहारियों के गीत ११. प्रेम के गीत १२. चक्की पीसने के गीत १३. वालिकाओं के गीत १४. चरखे के गीत १५. प्रभाती गीत १६. हरजस १७. धमालें १८. देश प्रेम के गीत १९. राजकीय गीत २०. राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत २१. जम्मे के गीत २२. सिद्धपुरुषों के गीत २३. वीरों के गीत एवं ऐतिहासिक गीत २४. ग्वालों के गीत, हास्यरस के गीत २५. पशु पक्षी संबंधी गीत २६. शान्त रस के गीत २७. गांवों के गीत २८. नाट्य गीत २९. विविध। यह तालिका गीत-प्रेमियों के लिए अत्यन्त ग्राह्य है। हम इसमें जन्म के गीत, नारी के शील और साहस के गीत, सती प्रथा के गीत, भोज्य पदार्थों के गीत, पक्षियों के संदेश गीत, रूढ़िवादी गीत आदि जोड़कर कुछ विषय और आप लोगों के समक्ष रखते हैं।

लोक गीतों की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से पाश्चात्य विद्वान प्रोफेसर किट-रिज ने परम्परागत लोक गीत, चारणी लोक गीत, साहित्यिक गीत और विकृत लोक गीत नाम के चार भेद बताये हैं। उक्त चार विभागों को ढोला मारू रा दूहा की साहित्यिक आलोचना करते हुए संपादकों ने काम में लिया है। मारिया लीच ने युगोस्लाविया के गीतों के पुरुष व नारी के रूप में दो ही भेद बताये हैं। परन्तु फोकलोर के साधारण वर्गीकरण में ६ भेद किये हैं। १. वालकों के गीत २. सगाई और विवाह के गीत [लव, कोर्टशिप एंड मेरीज] ३. मृत्यु संबंधी गीत ४. आवसरिक गीत ५. नृत्य गीत और ६. वैलासिक गीत। राजस्थान के लोक गीतों के लिए यह वर्गीकरण भी निर्दोष नहीं है।

राजस्थान में मेले, त्यौहारों, देवी देवताओं, सिद्ध पुरुषों, ऐतिहासिक व्यक्तियों, सतियों, शक्तियों और वायों, चारणी देवियों तथा आइयों, पितर-पितरानियों संबंधी गीतों के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। अतः उनके वर्गीकरण के साथ विषय विभाजन तालिका का होना भी अनिवार्य है। भिन्न भिन्न समयों पर भिन्न भिन्न गीत गाये जाते हैं। उन सबकी विधाओं का वैज्ञानिक प्रकटीकरण होना चाहिये।

संस्कार संबंधी गीत— १. जन्म के गीत – गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन के गीत जन्म से पहले के हैं। इनका शास्त्रों में भी नाम आता है। प्रसव के गीतों का तो बहुत ही प्रचलन है। इनमें नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। नाम-करण के समय पीड़ा, घेवर, घूघरी, दाई, अजवायन, सूंठ-गूंद, पीला, पीपला-मूल, जच्चारानी आदि विषयों से संबंधी कई मनोहर गीत गाये जाते हैं। इसके बाद जलवा, अन्नप्राश, झडूले और कर्ण-छेदन के गीत गाये जाते हैं। इस तरह से समाज में बच्चा जनने वाली जच्चा का गीतों द्वारा भारी स्वागत किया जाता है। देश के अन्य स्थानों में कन्या-जन्म हर्ष एवं उल्लास का विषय नहीं

माना जाता, मगर राजस्थान में 'आंधी लारै मेह अर बेटी लारै बेटौ' की कहावत प्रचलित है। 'धी बिना धरम किस्यौ' की कहावत चलती है। इसी आशा की वजह से कहीं कहीं यहां कन्या-जन्म पर भी गुड़ बांटना, गीत गाना आदि खुशी के कार्य किये जाते हैं। सभ्य घरों में लड़की को छोरी कहकर नहीं पुकारा जाता। भूल से नाम आ जाने पर माताएं एक दिन का व्रत रखती हैं। उसको बाई या कुंवरी कहा जाता है। लोक गीतों में कन्या के लिए धीवड़ या धीया शब्द का प्रयोग अधिक होता है। हमारे यहां धीवड़ को दादी द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से लोरियां भी दी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप उनकी कुछ पंक्तियां नीचे लिख रहा हूं—

१. लोरी बाई लोरी, गाय ब्याई गौरी
दूध भरी कटोरी, ऊपर सक्कर भौरी
इण राजबहिन रै कारणै, दो साजन आया बारणै
काकलिया कनै ही नहीं, मामलिया मनै ही नहीं, मां री नाक नवै ही नहीं,
भूवा कवै भतीजी देस्यां, पण गहणा घणा लेस्यां।
सेर सोनौ लो, थारी बाई म्हांने दो।
सेर सोनौ बाळां, म्हारी धीवड़ नीं दिखाळां।

२. बाई ओ बाई तूं बारै मती जाई, थारै सोनै रा केस कतर लेली काई,
बाई ओ बाई तूं बारै मती जाई, थारा झबरक झूंटणा तोड़ लेली काई,
बाई ओ बाई तूं बारै मती जाई, थारै साळूड़े री कोर कतर लेली काई,

३. बाई रा काकलिया किस्या? हाथां में कड़ी कड़ौला, रावतियां जिस्या।
बाई रा मांमलिया किस्या? हाथां में कसी कुवाड़ा, ओडड़ियां जिस्या।

४. दुर कुतिया दुर जाई कुत्ता, बाणियै री हाट नै पाड़ी कुत्ता,
बाणियौ बूढ़ौ डोकरौ, बाई रै लावै खोपरौ, खोपरियै में कांकरिया,
बाई रा काका ठाकरिया, ठाकरिया ठुकराई करै, हाटां बैठ बड़ाई करै,
कुतियौ सोवै कांटां में, बाई सोवै हाटां में, कुतियौ सोवै आकां में,
बाई सोवै काका में, कुतियौ सोवै आंमा में, बाई सोवै मांमा में।

राजस्थानी लोक गीतों में कन्या जन्म के अवसर को अशुभ नहीं, निराशा-जन्य जरूर मानते हैं। माता का वही खान-पान, मगर पिता को अर्थ संग्रह के लिये अभी से ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है और फिर उसी कन्या को भारी लाड़-प्यार से पाल कर सम्बन्धी को सोंपते हुए बड़ा विनम्र बनना पड़ता है। तभी तो किसी ने कहा है—बेटी जाई रे जगन्नाथ, जारां हेटै आया हाथ। परिणामतः राजस्थानी गीत जगत में जच्चा को पुत्री न जन्मने का आदेश रहता है। प्रत्येक परिवार पुत्र-जन्म के लिए लालायित होता है। देखिये गर्भिणी की नौ

मास की अवस्था, दोहद, मनरळी तथा हूँस पुरवाते हुए पति देवता पत्नी को पुत्री न जन्मने के लिए कैसी धमकी देते हैं, सो नीचे के गीत में बड़ो विशेषता सहित वर्णित है–

कुहारै री धण लाई कड़ाली
सुरपी कंदोई री लाई ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

सळ सळ करतो घेवर सीजै
म्हारो जीवड़ो तरसै ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

ले घेवरिया जीमण बैठी
बाहर सूं राजन आया ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

गोडै हेटै घेवर लुकाया
गोरी धण गोडो सांमो ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

गोडै नीचै घेवर राजन
सासू नै ना कहज्यो ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थै गोरी पूत जलमस्यो
घेवर और खुवाऊं ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थै गोरी धीव जलमस्यो
घेवर चोड़ै करस्यूं ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में

गर्भिणी स्त्री को विभिन्न स्वाद की चीजें खाने की इच्छा रहती है और कुछ चीजों को वह कतई नहीं पा सकती है। इस गीत में नारी को घेवर खाने की इच्छा है और बड़ी मिन्नतों व प्रयत्न के साथ घेवर बनाती है। लेकिन खाने की तैयारी करते ही उसके पति सामने आ जाते हैं। नारी सहज ही घेवर को छिपाने का उपक्रम करती है। किंतु पति से यह क्रिया छिपती नहीं। तब वह कहने लगती है कि मैंने घेवर तो बनाया है लेकिन मेरी सास को यह बात मत कहना। लज्जा-वश ही वह घेवर को छिपाने का प्रयत्न करती है। इस पर पति ने हंसते हुए कहा कि अगर उसके पुत्र हुआ तो वह किसी को घेवर की बात नहीं कहेगा। लेकिन यदि पुत्री का जन्म हो गया तो वह निश्चय ही सास के सामने घेवर की बात प्रकट कर देगा। इस गीत में स्त्री सुलभ सहज स्वभाव की जन्म विषयक मान्यता

पर प्रकाश पड़ता है ।

(जी श्रो) धण मुढ़लै पिव पिलंगै
तौ दोय जणा श्रे मतौ उपाइयौ ।

(जी श्रो) पिया जे म्हारै जलमेगी धीव
तौ किसड़ा लाड लडावस्यौ जी ।

(जी श्रो) गोरी जे थारै जलमेगी धीव
तौ खाट पिछोकड़ै घलावस्यां जी ।

(जी श्रो) लाडू खारै लूण का जी
तौ पड़दौ दयां काळी कांमळी जी ।

(जी श्रो) मुख सै कदैई नीं बोलस्यां
तौ म्हे सिधावांगा चाकरी जी ।

गर्भिणी को राजस्थानी में दो जीवों वाली कहते हैं। उसकी इच्छा को मन रळी, ऊख करना और हूंस पुरवाना कहते हैं। हिन्दी में इसको दोहद, उकाई तथा हरियाणा में इसको ओजणा कहते हैं। राजस्थानी में हूंस [गर्भिणी की इच्छा] के अनेक गीत हैं, जिनमें गर्भिणी अपने सास ससुरादि से भांति भांति की खट्टी मीठी वस्तुएं मांगती है। पर उसकी बात को सब टाल देते हैं। केवल पति ही उसकी इच्छाओं को तृप्त करते हैं। इस तरह के गीतों में घेवर, केर, मतीरा, फलियें एवं बोर की इच्छा पूर्ति के गीत उद्धृत हैं :

घेवर व अन्य हूंस का क्रमिक गीत

पेलौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ मन पड़छायां जाय
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ सुसरौजी पुरावै श्रो राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

दूजौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
खाटियै मन रळियौ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
श्रा तो हूंस भली छै घर री नार
थारी पाड़ौसण पुरावै औ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

श्रगुश्रौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ नींबूड़ां मन रळियौ राज

म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो देवरियो पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।

चोथो मास ज जच्चा रांणी नैं लागियो
म्हारो सिंघाड़लो मन रळियो राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो भाभीसा पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।

पांचवो मास ज जच्चा रांणी नै लागियो
म्हारो खोपरियां मन रळियो राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो नणदोई पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।

छठो मास ज जच्चा रांणी नैं लागियो
म्हारो घेवरियां मन रळियो ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो मारूजी पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।

सातवो मास ज जच्चा रांणी नै लागियो
म्हारो सावड़लो मन रळियो ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो माऊजी पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।

आठवो मास ज जच्चा रांणी नै लागियो
म्हारो वेनड़ियै मन रळियो ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
आ तो हूंस भली छै घर री नार
थारो रामइयो पुरावै ओ राज
म्हारो मन हरस्यो घेवर में ।
नवो मास ज जच्चा रांणी नै लागियो
म्हारो सीरैयै मन रळियो ओ राज

म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी सासूजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।

दसवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारी पीळैयै मन रळियौ ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ वीरौजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।

केर की हूंस का गीत

लाग्यौ धण नै पेलौ जी मास, पड़ छायां सुहावै
ओ म्हारै ससुराजी रै हाथ री जी।
आ तौ हूंस भली छै घर नार, थारौ ससुरौजी पुरावै
ओ बडभागण जच्चा थारी मनरळी।
भावै धण नै फीणा रोटी दाळ, केरिया तो भावै
ओ जच्चा रांणी नै छापर वाळै ताल रा।

मतीरे की हूंस का गीत

सुसराजी आगै वीनऊं
म्हानै भावै ओ सुसराजी हरियौ रे मतीरौ
लाल मतीरौ गुलाब गिरी रौ
भावै ओ म्हांनै सुसराजी हरियौ रे मतीरौ
सळ सळ करतौ सीरौ थे खावौ
म्हारी कुळ बहू कांई खास्यौ ओ सरद मतीरौ।

जेठजी आगै अरज वहू री
म्हांनै भावै ओ जेठसा हरियौ रे मतीरौ
लाल मतीरौ गुलाब गिरी रौ
भावै ओ म्हांनै जेठसा हरियौ रे मतीरौ
कच कच करतौ घेवर थे खावौ
कुळ बहू म्हारी कांई खास्यौ ओ सरद मतीरौ

मारूजी रै आगै अरज गोरी री
कोई भावै ओ जोड़ी रा ढोला हरियौ रे मतीरौ
चढ़िया मारूजी ढळती ओ रात
सूरज ऊगायौ अगूणा खेतड़ां म्हारा राज
लायौ जोड़ी रौ ढोलौ बोरा भराय

भावै जितरा लावो म्हारी गोरी धण हरिया मतीरा
थें जुग जीवो म्हारा वसदेवजी रा सींव
थें म्हारो रखो रे पुराई जी म्हारा राज
थें जुग जीवो बड़ सजना री जाई
थें तो म्हारो वंस वधायो जी म्हारा राज

गर्भवती को मतीरा खाने की इच्छा हो गई। उसने अपने ससुर, जेठ, देवर सबसे मतीरा मंगाने की विनती की। मगर सर्द मतीरे प्रतिकूल जान कर सबने सीरा, घेवर आदि खाने के लिए कहा। अन्त में उसने अपने पति से कहा, पति आधी रात को ही चढ़े और मतीरों का वोरा भर लाये।

फळियों की हूंस का गीत

ऊंचै धोरै चंवळा वावा, उग्या गोळ-मथोळ
हरी हरी फळियां भावै ओ राज
हरी हरी फळियां घी में तळियां
फळियां वडी सुवाद ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

रसोई बैठ्या माऊजी म्हारा
गोरी धण पतळा कांस्यूं पड़िया ओ राज
म्हे नीं जाणां बेटा म्हारा
जाय थारी भौजायां नै बूझो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

मेलां में बैठ्या भौजायां म्हारा
गोरी धण पतळा कांस्यूं पड़िया ओ राज
म्हे नीं जाणां देवरिया म्हारा
जाय थारी दासी बांदी नै बूझो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

सेज बिछावता दासीजी म्हारा
गोरी धण कांस्यूं कुमळाया ओ राज
अेक अेक ढोलियै दो दो सूता
अगूंवो जे रतन उपायो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

बोर की हूंस का गीत

लाल दिलंगड़ो पिछोकड़ै
सुनो, जे कोई बूझै वात
भंवर म्हांनै बोरिया भावै।

वारै सूं म्हारा सुसराजी आया
आज बहवड़ क्यूं सूत्या ओ राज
भंवर म्हांनै बोरिया भावै ।

खारक खोपरा खावौ म्हारी बहवड़
बोरां री रुत काहू ओ राज
भंवर म्हांनै बोरिया भावै ।

जन्म से पूर्व के इन गीतों के पश्चात् जन्म का सुअवसर आता है । पुत्र के जन्म पर थाली एवं पुत्री के जन्म पर सूप बजाया जाता है । इसी समय के कुछ गीत इस प्रकार हैं :

कंवळै तौ ऊभा राजीड़ां री कुळ बहू , अब कसमस दूखै छै पेट
पींडचां ओ धण री धगधगै जी
सासूजी म्हारा आळा-भोळा , नणदल बाई राजकुंवार
म्हारी चिन्ता कुण करसी म्हारा ओ राज
देरांणी जेठांणी मांडचौ रूसणौ म्हारी माय वसै परदेस
म्हारी चिन्ता वे करसी म्हारा ओ राज
ओरै जी मांयली ओरड़ी , ज्यां में सूत्या वसुदेवजी रा सींव
म्हारी चिन्ता वे करसी ओ राज

अंगूठौ मोड़ जगाणिया , जागौ बाई सोदरा रा वीर
खाली तौ करदचौ ओवरौ जी म्हारा राज
लटपट सूं पेच संवारिया , मुळकत लियौ रूमाल
ओल्यौ गोरी धण ओबरौ
ओल्यौ पिलंग नीवार रौ म्हारा राज
जणज्यौ गोरी लाडण पूत , खिलतौ फूल गुलाब सौ
वधाई मारूजी नै वेगी दिराज्यौ जी राज
मरूं अेक जीऊं म्हारी माय , मारूजी मोसौ बोलियौ
धरती माता उदै करियौ , हुयौ हुयौ चांद उजास
धेनड़ियौ जलमियौ जी म्हारा राज
भली करी भगवांन , मारूजी रा चित्या हो गया जी म्हारा राज

प्रसव वेदना की सूचना देने में संकोचशील पत्नी की व्याकुलता बढ़ जाती है । वह लज्जा के वश संकेतों से पति को वस्तु स्थिति का निर्देश देना चाहती है । ऐसी ही मार्मिक अवस्था का गीत है :

नान्ही सी नार नारेळी सो पेट
पीड़ चलै उतावळी जी
पीड़ चलै ओ धण लुळ लुळ जाय
करै भंवर सूं वीणती जी

अेकर पीवजी बागड़लै पधार
बागां में घुड़ला फेरज्यो जी म्हारा राज
आंगन अे गोरी बाग लगाय
म्हनां घुड़ला फेरस्यां जी म्हारा राज

अेकर माऊजी बावड़ियां पधार
बावड़्यां में जाय न्हावज्यो जी म्हारा राज
आंगण अे गोरी हौद कराय
हौदां में बैठर न्हावस्यां जी म्हारा राज

नीं समझ्या ओ सासू सुगणी रा पूत
नीं समझ्या भोळी बाईसा रा वीर जी म्हारा राज
अेकर ओ ढोला नीचै पधार
जाय थारा माऊजी नै मेलज्यो जी म्हारा राज

मग छूट्या जी ढोला भाज्या जाय
माऊजी नै जाय मेल्या जी म्हारा राज

इस सम्बन्ध में उदयपुर की तरफ गाया जाने वाला गीत भी नीचे देखिये—

ऊंची ऊंची मेड़ियां लाल किंवाड़
भंवर भंवर दिवलो जगै जी राज
अेक वर जी ढोला बागां में आय
बागां में कळी ओ मरोड़ज्यो जी राज
म्हे बाग बे कळी अनार
मैनां में कळी ओ मरोड़स्यां जी राज
नीं समझ्या सासू सुगणी रा पूत
नीं समझ्या भोळी बाईजी रा वीर

दाई को निमंत्रित करने का गीत :

सार रमन्ताजी पीव पासा, साहब दूर करो जी ।
सदा सुरंगा नार आज बिरंगा क्यूं खड़ा जी
लाज सरम री बात, मारूजी आगै कांई कहूं जी

कसमस दुखै छै पेट, पींड्यां घण री घमवगै जी
जे म्हारा देवर जेठ, दाई माई नै लावो नीं बुलाय जी

सूना छै देवर जेठ, आप मारूजी जीण करै जी
बूझै सहरिया री लोक, दाई माई री घर किस्यो जी

सूरज सांम्ही पोळ, सूवटा दाई रै केळ करै जी
बैठ्या दाई तखत बिछाय, बोलै दाई गरब भरया जी

कांई थारै करटी छै बहन, कांई उळझी छै भावजा जी
जै थारै जलमै जी धीव, दाई माई नै कांई देवो जी

रोक रुप्पयौ हाथ, कसुमा कांचळी जी
जै थारै जलमै पूत दाई माई नै कांई देवौ जी
पांच रुप्पया रोक पीळौ दाई नै गोठरौ जी
थें छौ जच्चा रांणी री मांय चालौ नीं उतावळा जी
झिर-मिर बरसै मेह, गळियां में है कीचड़ौ जी
दाई माई नै घुड़लै चढ़ाय, आप उपाळा होय चाल्या जी
आया दाई डोढ़्यां रै मांय, सुगन दाई नै भला हुया जी
आया दाई आंगणियै रै मांय घेनड़ गीगौ जलमियौ जी
भली रै करी भगवांन, दाई म्हारै कांई करियौ जी
आंगण सूखै छै सूंठ दाई माई चोरटी जी
दाई माई री बडी पेट, जच्चा रांणी लाज मरै जी
दाई माई री दुखै आंख, जच्चा रांणी सूग मरै जी
बाड़ै में बियाई गाय, पिछोकड़ै कूकरी जी
दौड़ सकै तौ दाई दौड़ म्हारी कुतड़ी खावणी जी
हुवै म्हारा देवर जेठ, दाई माई नै दो धक्का जी
बुलावौ घेनड़ियै रौ बाप, जका सूं म्हैं कोल करचा जी
पांच रुप्पया हाथ पीळौ दाई नै गोठरौ जी
सुगणौ घेनड़ियै रौ बाप नुगरी जच्चा है घणी जी
थे दाई घरां पधार, बरसोदी बुलावस्यां जी।

पींपळा मूळ का गीत

डूंगरियै रै डावै पास अलबेलौ हाळी हळ खड़ै जी
और तौ बावै तिल बाजरौ, मारूजी बावै पींपळौ जी
ऊग्यौ ऊग्यौ गोळ-मथोळ; पींपळा मोळ उग्यौ गोखरू जी
लाया-लाया पोट घुराय, पड़छांया लाय सुखाइयौ जी
कूट्यौ कूट्यौ ऊंखळती री कोर, भीणै सै साळू सूं छांणियौ जी
भेयौ भेयौ हिरण्यां रै दूध, रतन कटोरै घोळियौ जी
रतन कचोळौ सुसरैजी रै हाथ, सुसरौजी ऊभा बीनवै जी
बहवड़ ओ म्हारै वडा साजनां री धीव, पींपळा मोळ पीओ म्हारी वहूजी
दाझै दाझै म्हारी लाल कदम सी जीभ, पींपळा मोळ लागै म्हांनै चरचरौ जी
घेनड़ियै नै आवै ठंडौ बासी दूध, थांनै तौ आवै घणी नींदड़ी जी

इस तरह से रतन कचोला सासू, जेठ, जेठानी के हाथ से दिया जाता है और जबाब सवाल किये जाते हैं। फिर रतन कचोला देकर पति के हाथ से पींपळा मूळ पिलाया जाता है।

रतन कचोळौ म्हारै मारूजी रै हाथ, मारूजी ऊभा बीनवै जी

गोरी ले म्हारी बडा साजनां री धीव, पींपळामोळ पीम्रो म्हारी गोरड़ी जी
घेनड़ियें नैं आवै ठंडो बासी दूध, थांनै भल आवै नींदड़ी जी.
दाझै दाझै लाल कदम सी जीभ, पींपळामोळ लागै म्हांनै चरचरो जी
दीनी दीनी डावोड़ी आंख गटकाय पीयो गोरी पींपळो जी।

पीपळामूळ पीने के लिए बहुत मनुहारें की गई, तब जाकर जच्चा ने इसको पिया। इन गीतों के द्वारा पुत्रवती मां का मान-सम्मान किया जाता है। नामकरण संस्कार पर गाये जाने वाले गीत–

खाटड़लै सूं ऊठ सखी
पाटड़लै पग मेल सखी
सूरज रो मुख देख सखी
म्हारी सरव सखी

राजन रो मुख देख सखी
दाई माई वेग बुलाय पिया
गीगै नैं झबल झुलाय
म्हारी सरव सखी

दादी नैं वेग बुलाय
सोवन थाळ वजावसी
म्हारी सरव सखी

भुवाजी नैं वेग बुलाय
साळां रै सखिया पुराय
म्हारी सरव सखी
राजन रो मुख देख सखी

इस तरह से गीत को भुवाजी, सासूजी, वडियाजी, भोजाईजी आदि करके बढ़ावा दिया जाता है।

बालक के जन्म हो जाने के बाद जच्चा पुनः अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाती है। उसे विनोद और मनोरंजन का जीवन प्राप्त हो जाता है। मान-मनुहार और नखरों का यह गीत इसी नवीन स्थिति का द्योतक है:

पड़वलियो [घास से छाया हुआ छोटा मकान]

म्हानै ओ जोड़ी रा ढोला पड़वलियो चिणाय, पड़वलियै पोढ़ण रो घण नैं
चायवो जी म्हारा राज!
पड़वलियै ओ म्हारी मिरगानैणी, पीवरियै में पोढ़, म्हां घर पोढ़ो नीं महलर
माळियां जी म्हारा राज!
म्हांनै ओ जोड़ी रा ढोला खीचड़ली रंधाय, खीचड़ली जीमण रो जच्चा-राणी नै
चायवो जी म्हारा राज!

खांचड़ला अ गोरी धण पीवारय म जाम , म्हा पर जामा नी लाडू
दोवटा जी म्हारा राज !

सूती ओ जोड़ी रा ढोला सुखभर नींद, सूती नै सपनौ म्हांनै
आइयौ जी म्हारा राज !
लाध्यौ ओ सपना में म्हांनै नौसैरौ हार, सोळा मासां री लाधी म्हांनै
सांकळी जी म्हारा राज !
हूसी अे मिरगानैणी थारै लाडण पूत, अेकज होसी सुगणी
धीवड़ी जी म्हारा राज !

थै हो गोरी म्हारी हुकम हुलदार, हुकम करौ तौ रसोइयां
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, रसोइयां में सासूजी म्हारा
सौ रह्या जी, म्हारा राज !

थै हो मिरगानैणी हुकम हुलदार, हुकम करौ तौ ओरै म्हूं
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, ओरै में जेठजी
सौ रह्या जी म्हारा राज !

थै ओ मिरगानैणी हुकम हुलदार, हुकम हुवै तौ महलां
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, मैलां में म्हारौ धेनड़-गीगौ
सौ रह्यौ जी, म्हारा राज !

थै ओ जोड़ी रा ढोला खापरिया चोर, चोरीला धेनड़ रा पीळा
पोतड़ा जी म्हारा राज !
थै ओ मिरगानैणी म्हारी नखराळी नार, इतरा तौ नखरा
थै करचा जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला दिल रा दरियाव, इतरा तौ नखरा म्हारा
थै सह्या जी म्हारा राज !

सचमुच शिशु ही दाम्पत्य प्रेम की ग्रंथि है। एक पुत्ररत्न के जन्मने पर संसार स्वर्गोपम, समृद्धि और सम्मान का स्थल बन जाता है।

शिशु जन्म के साथ ही माता-पिता को उसके भावी जीवन-पथ की चिन्ता प्रारंभ हो जाती है। बालक के भाग्य में क्या बदा है? वह सुखी रहेगा या? उसे कहीं दुःख, संताप और कष्ट की यात्रा तो पूर्ण नहीं करनी है। नवजात शिशु के भाग्य-लेखन के लिए ही बेमाता का सहारा ढूंढ़ लिया गया है। राजस्थान में यह मान्यता है कि शिशु जन्म के छठे दिन बेमाता रात्रि को घर आती है और शिशु के भाग्य को लिख जाया करती है। बेमाता के लिखे 'आंक' कभी मिटाये नहीं जा सकते। बेमाता के विषय में एक ऐसी मान्यता भी है कि

वह शिशु को कभी हंसाती है और कभी रुलाती है। यदि हम नवजात शिशु की मुखाकृति को कुछ समय तक ध्यान से देखें तो ज्ञात होता है कि वह कुछ क्षणों के लिए मुस्कराता है और ठीक बाद में रोने-सा भाव उसके मुंह पर आ जाता है। मांस पेशियों की यह क्रिया ही बेमाता के हंसने-रुलाने के विश्वास में बदल गई है। मां का कहना है कि जब बेमाता बालक को कहती है — मां मर गई तो वह रोता है। दूसरे ही क्षण जब बेमाता कहती है कि वह जिन्दा है तो वह मुस्करा देता है। इस प्रकार शिशु के जन्म और बेमाता का चिर संबंध जुड़ गया है। अतः इस अवसर पर बेमाता के अनेक गीत भी गाये जाते हैं। दो गीतों के उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं:

सब गांवड़ला ढूंढ्यां, गांव काळू सुवायो
सब बासड़ला ढूंढ्यां, बास सांडां री सुवायो
सब कूखड़ली ढूंढी
कुखड़ली माता देवकी री सुवाई

बेमाता के गीत कृतज्ञता ज्ञापन स्वरूप गाये जाते हैं। वृज में बेमाता को वेह कहते हैं। वेह विधि का द्योतक है। पुत्र जन्म बेमाता की ही कृपा का फल है। ऐसी जनसाधारण की धारणा है। अन्य उदाहरण है:

कुण सुणेगो वीणती, कुण सुणेगो वीणती,
कोई बेमाता आगै पुकार, कुखड़ली सावळ हुसी।
रांम सुणी वीणती, रांम सुणी म्हारी वींणती,
मां म्हारी बेमाता सुणी ओ पुकार, कुखड़ली सावळ हुई।

अर्थ — कौन सुनेगा मेरी विनती? ए मेरी मां किसके आगे पुकार करूं? मेरी कोख वैरण हो रही है। तेरी विनती राम सुनेगा। बेमाता के आगे पुकार। तेरी कोख सौभाग्यशालिनी होगी। धन्य है बेमाता को जिसने अबला की विनती सुनी! धन्य है विधाता को जिसने उसकी कोख को पुत्रवती बनाया।

बालक के जन्म के बाद जननी को राजस्थान में सीरा, गूंद के लड्डू, अजवायन, सूंठ आदि से बने पौष्टिक पकवान खिलाये जाते हैं। एक दो मास तक उसके खानपान का पूरा ध्यान रखा जाता है। पुत्र जन्म तो खुशी का बड़ा कारण होता है। महीनों तक पारिवारिक लोग गुड़ बंटवाते हैं और गीत गवाते हैं। जन्मोत्सव के ये गीत घेनड़िये या हालरे कहलाते हैं। हिन्दी में इसको सोहर और वृज में सोभर कहते हैं। इनमें आनन्द बधावे, जच्चा की इच्छा, पुत्र कामना, पीला और नाना भांति के नेगों के गीत होते हैं। पुत्र कामना के गीतों में भैरूंजी के एक दो गीत यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं:

भैरुंजी काठै तो गवां री चादूं गूघरी

मांय रळाऊ बूरा खांड
कासी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलौ सांभळो

लिचपिच तौ रांधू लापसी
मांय सुरै गायां रौ घीव
कासी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारौ हेलौ सांभळौ

बारा मण रा रांधूं बाकळा
कोई तेरै घाणां रौ तातौ तेल
कासी रा बासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलौ सांभळी

तेल सिन्दूर भर बाटकौ
कोई मधरी मधरी ढाळूं थारै धार
कासी रा बासी चढ़ती असवारी म्हारौ हेलौ सांभळो

तोलाणै रै मारग चिणाऊं
थारौ देवरौ, देवूं थारी बरसोदी जात
भैरूंजी अेक तौ अरज म्हारी म्हारौ हेलौ सांभळी

सासू तो केवै म्हारी बहवड़ बांझड़ी
परण्योड़ौ ल्यावै ल्हौड़ी सोक
अेकलिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेलौ सांभळी

सासू नै करद्यौ गूंगी बावळी
परण्योड़ै री मरज्यौ नूंवी नार
अेकलिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेलौ सांभळी

भैरूंजी कदैयन भीजी म्हारी दूधां कांचळी
काळूड़ा कदैयन भीज्यौ कांधौ लाळ सूं
कासी रा वासी अमर बंधाद्यौ नीं जुग में पालणौ

देरांणी जेठांणी जुग में बोलै बोलणा
जकांरै हींडै पूतज पालणै
तोलाणै रा भैरूं अेक तो पुत्र बिन म्हैं कुळ में वांझड़ी

पुत्र जन्म के बिना स्त्री अपने जीवन को असफल मानती है। वह इसी चिन्ता में सदैव भूली रहती है। जप-तप, व्रत उपवास, जादू-टोने एवं देवी-देवताओं की पूजा उपासना में लगी रहती है। पुत्र होने पर स्त्रियां जच्चा को तरह तरह के गीत सुनाकर प्रमुदित किया करती हैं। कामना गीतों में भैरूंजी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं—

ऊंची नीची ओ भैरूं सरवरिया री पाळ
पांणीड़ौ भरै नवली पिणिहार
हार दै हार दै हरखिला भैरूं।

हारनईं रै चून्यां चौसठ चार
अस्सी रै रकां री गोरी री हार
हार दै हार दै नन्नण चौवटा रा राजा
हारला रै कारणै म्हारा सुसराजी रूसाया
सुसरोजी रूसाया सासू देवै म्हांनै गाळ
हार दै हार दै भींभळिया भैरूं
हारला रै कारणै म्हारा जेठसा रूसाया
जेठांणी जुदा होवण जाय
हार दै हार दै हरखिला भैरूं

पुत्रोत्पत्ति के समय राजस्थानी गीतों में गाडूली, गूघरी आदि गीत भी प्रसिद्ध हैं। वे जन्म पर गाये जाते हैं और गृह स्वामी दिल खोलकर खर्च करता है –

रण चढ़ण कंकण बंधण, पुत्र बधाई चाव
अै तीनूं दिन त्याग रा, कांई रंक कांई राव

नाई, ब्राह्मण, दाई, सास ननद और देवरानी-जेठानी, ढाढ़ी-ढोली इन सबके नेग होते हैं। इन सबने जच्चा-राणी की सेवा चाकरी की थी। अतएव अब नेग लेने के सब हकदार हैं। इनमें ननद नेग के गीत बड़े सुन्दर होते हैं। बधाई के बधावों में चंदर हार, पोमचौ, चुनड़ी, पूंचिया, भूरी भोट, धोळी गाय, मोहर, रुपया, भोळी भर मोती आदि वस्तुएं मांगी जाती हैं। पुत्र जन्म के छठे दिन, छठी का संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इस दिन बेमाता बच्चे का सौभाग्य लिखने को घर आती है – ऐसा विश्वास है। घर की सफाई, रातीजगे और नाम करण संस्कार नवमे दिन किये जाते हैं। पंडित यज्ञ कराता है, भाट या सेवग कुटम्बियों के लिए बुलावा देता है। मिष्ठान्न पकाया जाता है। भोजन के लिए दसोटण या, सिर धोवण नाम से सबको जिमाया जाता है। बच्चे के लिए भूवा टोपी, रुपये-खोपरे आदि भेंट में आते हैं। नव शिशु के लिए खाती पालना चमार तागड़ी, कुम्हार कलस आदि लाते हैं। भाट वंशावली बनाता है। ढाढ़ी यश गाता है और गीतेरणें गीतों से सम्मान प्रदान करती हुई सहानुभूति प्रकट करती हैं। जच्चा के पीहर से छूछक आता है। जिसमें सबकी भेंट होती है और सभी के लिए गीत गाये जाते हैं। इन सब में जलवा पूजन के समय का एक पीळा नाम का गीत बड़ा प्रसिद्ध एवं मधुर है।

दिल्ली सहर सूं सायबा पोत मंगाय दो, हाय पचीसां गज तीसां
गाढ़ा मारूजी पीळो रंगादो।
गढ़ नै बीकाणै री सायबा, रंगारो बुलादो, बूंदी री बंधारो बुलादो
अपणै आंगणियै सायबा कुंड खुदादो, आप नानड़िया बैठ रंगादो

अल्ला तौ पल्ला सायबा मोर पपीहा , बीच में चांदी रौ चांद कुरादो
आपरी जोड़ी रा दोय छैला बुलायदो , दे दे फटकारा खूब सूखा दो
रंगियौ रंगायौ सायबा हुवै रे तैयारी , जच्चा नै पड़दै में पकड़ा दो
पीळौ तौ ओढ़ म्हारी जच्चा पाटै जी बैठा , पीळै नै जोसीजी सरायौ
पीळौ तौ ओढ़ म्हारी जच्चा रसोयां पधारया , पीळे नै सासूजी सरायौ
पीळौ तौ ओढ़ म्हारी जच्चा पळिंडै पधारया , देरांणी जेठांणी मुख मोड़्यौ
थे म्हारा भाभीसा क्यूं मुख मोड़ौ , पीळौ म्हारै पीवर सूं आयौ
पीळौ तौ ओढ़ म्हारी जच्चा महलां पधारया , लारली पाड़ौसण निजर लगाई
आंख्यां नीं खोलै जच्चा मुखड़ै नीं बोलै , जच्चा रौ राजन विलखौ डोलै
दिलड़ी सहर रौ सायबा वेद बुलादो , जच्चा री नाड़ दिखादो
ताव नहीं छै मथुवा नहीं छै , लारली पाड़ोसण निजर लगाई
लारली पाड़ौसण सायबा उरै रे बुलाय दो , जच्चा नै थुथकारौ घलादो
आंख्यां भल खोली जच्चा मुखड़ै भल बोलौ , गोरी रौ राजन हरख्यौ बोले
तूं रे वेदां रा बेटा बड़ौ रे ठगोरौ , सूधै राजन नै ठग लीनौ
थे म्हारी जच्चा रांणी चिलता गारी , भोळै राजन नै चिलत दिखाया
म्है तौ मारूजी थारी मनड़ौ लेवा छां , प्यारा हो या दुप्यारा
थे म्हारी जच्चा रांणी घणा पियारा, धेनड़ सूं इधक पियारा
जच्चा रांणी पीळौ भल ओढ़ौ ओ

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'गाढ़ा मारूजी पीळौ रंगादौ' का पुनरावर्तन होता है] पीळो नामक गीत बहुत प्रसिद्ध है। पीळै चार प्रकार से गाये जाते हैं। पीळै की भांति एक वीरा [वैवाहिक गीत] भी बड़ा कारुणिक होता है। ब्राह्मण जाति में लड़के के विवाह पर जनेऊ के गीत भी गाये जाते हैं।

संस्कार गीत २. विवाह के गीत – संस्कारों में जन्म के बाद विवाह ही महत्व - पूर्ण संस्कार क्रम है। यह केवल प्राकृतिक नियम ही नहीं , किन्तु मनुष्य समाज द्वारा एक स्वीकृत विधान भी है। इसमें वैदिक आचारों से कहीं अधिक लौकिक आचारों का प्रभाव रहता है। विवाह संस्कार जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। नगर निवासियों से लेकर जंगली जातियों तक में इसकी मान्यता व्यापक है। यह प्रथा विश्व भर में बड़ें आनन्दोत्साह के साथ मनाई जाती है। सभी देशों में इस संस्कार के लिए सुन्दर गीत मिलते हैं। महिलाएं मौके मौके के गीतों से विवाह को रोचक मांगलिक एवं कारुणिक बना देती हैं। विवाह का बीज वपन सगाई से होता है। लड़की वाले अपने ब्राह्मण या नाई के साथ मुद्दा भेजते हैं। इसमें कुछ सिक्के , गहने , कपड़े मिठाई और फल रहते हैं। लड़के को पाट पर बैठाकर यह भेंट दी जाती है। गुड़ बांटा जाता है। मीठे चावल पकाये जाते हैं और औरतें बनड़े नामक गीत गाती हैं। विवाह के मांगलिक कार्यो का आरंभ चीकणी कोथळी से होता है। चीकणी कोथळो [द्रव्य , भेंट] के साथ लग्नपत्रिका सहित

कन्या पक्ष की ओर से विवाह की लग्न तिथि लिखी होती है । इसी दिन से बहन बेटियां बुलाई जाती हैं तथा वर और कन्या की माताएं अपने अपने भाइयों को न्योतने जाती हैं । पांच - सात दिन पहिले बान या बिरद बैठती है। तेल चढ़ाना या हाथ पीले करने का अनुष्ठान पूरा होता है। एक दो दिन पहिले रातीजगे के गान होते हैं। इन सर्व अनुष्ठानों को स्त्रियां गीतों द्वारा पूर्ण करती हैं । उबटण , पीठी , मेंहदी , तेल, झोळ, कांकण डोरा, विनायक , मूंदणी , बेह , वीराटीकना , बनड़े , हथणी आदि अवसरों पर अनेक गीत गाये जाते हैं । गीत ही से भात या मायरा की जीमणवार होती है । फिर लड़के को बींद [दूल्हा] बनाया जाता है । फिर वर निकासी होती है । इस समय टोरड़ी , घोड़ी आदि के बड़े मनोहर गीत गाये जाते हैं । इससे प्रथम वह [वर] अपनी मां का स्तन पान करता है । यहां एक दूसरे की न्यौछावरें होती हैं । बींद के विदा होते समय उसकी बहिन वर वाहन की मोरी पकड़ती है । इस तरह से राजस्थानी दूल्हा की विवाह के लिए विदाई होती है ।

आगे जान [बरात] कन्या के ग्राम में पहुंचती है । तब कन्या पक्ष की ओर से सामने पड़जान आती है । भेंट के साथ कलेवा जलपान करवाकर जान को निश्चित स्थान पर ठहराते हैं । एक बराती, मांढ़े [बेटी वाले के घर] में वर की बधाई लेकर जाता है , वहां उसकी स्त्रियों द्वारा गीतों के साथ पिटाई भी होती है । भोजनोपरान्त सायंकाल के समय तोरण , सहेले होते हैं । राजस्थानी में इसे ढुकाव भी कहते हैं । कहीं कहीं बरातियों का भी इस समय स्वागत होता है । तोरण के समय दही देना , आरती करना , गाघरड़ी घमकाना आदि नेग गीतों के साथ सासू के द्वारा संपन्न किये जाते हैं, तब कन्या पक्ष की स्त्रियां बड़े स्नेह से वर को घर में ले जाती हैं । इस समय केवल एक नाई ही वर के साथ रहता है । इसके बाद वह मुख्य संस्कार होता है जिसे चंवरी या फेरा कहते हैं । यह संस्कार वेद मंत्रों की साक्षी के साथ पंडित लोग संपूर्ण कराते हैं । मगर गायिकाएं भी साथ साथ अपने मधुर गीतों द्वारा रस बरसाती चलती हैं । फेरे उठने पर वर के पिता को बरात के डेरे पर बधाई भेजी जाती है । तब दूल्हा जाकर अपनी बरात में सम्मिलित होता है । इसके बाद मींडी-हाथ, परिचय , मुंह देखाळी आदि के गीत - नेग होते हैं । दूसरे दो दिनों में भात या जीमणवारों के गाली गीत , दहेज की वस्तुओं का सजाना आदि के गीत और बरात को विदा करने के व्यवहारी गीत गाये जाते हैं । इसके साथ कन्या की कारुणिक विदाई भी बड़े समवेत गीतों के साथ होती है । इसके [कन्या के] साथ एक छोटे भाई को भी भेजा जाता है । वह भी बहिन के ससुराल में गीत सुनता है । यदि कंवारा होता है तो उसको काली कुत्ती का गीत भी गाया जाता है ।

विवाहित होने पर उसको मधुर गालियां सुनाई जाती हैं। मात्र एक सुरीली गाली का नमूना नीचे पेश किया जा रहा है :

भाटै ऊपर भरी तळाई, हां क हां रे लाल।
सगैजी नै कूटै घर री लुगाई, हां क हां रे लाल।
रोवत कूकत म्हांरै आया, हां क हां रे लाल
म्हांरै कांनजी ले बुचकारया, हां क हां रे लाल।
आओ म्हांरा निमळा सगां, हां क हां रे लाल।
कण थांनै मारया, कण थांनै कूट्या, हां क हां रे लाल।
घर री तिरिया लार पड़ी है, हां क हां रे लाल।
मांगूं रोटी, तांणै चोटी, हां क हां रे लाल।
मांगूं पापड़, दै पड़ापड़, हां क हां रे लाल।
मांगूं चावळ, बोलै कावळ, हां क हां रे लाल।
मांगूं दाळ, काढ़ै गाळ, हां क हां रे लाल।
मांगूं सीरौ, धामै खीरौ, हां क हां रे लाल।
घी मांगूं घूतां सूं घालै, हां क हां रे लाल।
राबड़ी नै रात्यूं रोयौ, हां क हां रे लाल।
छाछ खातर छींकै चढ़ग्यौ, हां क हां रे लाल।

वर के घर वधू का गीतों से स्वागत होता है। उसका मुंह देखना, गोद में लेकर नाचना, पग पकड़ाई करवाना, कोथली में हाथ डलवाना, जुआ खिलवाना, देवी देवताओं के ले जाना, छापें लगवाना आदि रीतें गीतों के साथ ही चलती हैं। वर - वधू के वयस्क होने पर सुहाग रात की रस्म भी गीतों द्वारा अदा की जाती हैं। नहीं तो दो दिन ठहरकर वधू अपने पीहर चली आती है। वींद भी अपने ससुराल मांढ़े झांकने के लिए वापिस आता है। अतः दो दिन बाद दोनों [वर - वधू] वापिस वर के घर पहुंच जाते हैं। कई जगह इस समय मुकलावा या गौना भी कर देते हैं।

देवताओं के बनड़े गीत—ये विवाह से महीने भर पहले ही प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। इनमें सर्व प्रथम विनायक [गणपति] के निमन्त्रण पूजा वाले गीत होते हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ गीतों के अंश भर दिये जा रहे हैं :

गढ़ रणत भंवर सूं आयौ विनायक
करौ नीं अचिन्ती बिड़दड़ी
बिड़द विनायक दोनों जी आया
आय तौ उतरिया हरियै बाग में
ढूंढ़त ढूंढ़त नगरी जी ढूंढ़ी
घर तौ बताओ लाडलै रै बाप री

ऊंची सी मेड़ी लाल किवाड़ी
केन कंवरकी राजीडां रै बारणै

रणथम्भोर गढ़ से विनायक आये हैं। हे विनायक हमारे इस मंगल काम को चिन्तारहित करो। विनायक ने आकर बाग में डेरा दिया। नगर में दूल्हे का घर ढूंढने के लिए चारों ओर घूम गये। ज्ञात किया कि लाल किवाड़ों वाला ऊंचा महल जहां दरवाजों के सामने हरे पेड़ हैं, वही दूल्हे के पिता का घर है। दूसरा विनायक गीत है :

गोरी बूझै गुणी ओ विनायकजी
इण नगरी रो राजा किण विध परणीजै
फळसाळै आवण ओ विनायक जी
नवण चौकी बैठण ओ विनायक जी
छाछड़ल्यां रा नांवण ओ विनायक जी
दूधड़लै रा पीवण ओ विनायक जी
लापसड़ी रा जीमण ओ विनायक जी
सुपारयां रा खाता ओ विनायक जी
रोळी केरा चिरचण ओ विनायक जी
नाळेरां रा लगन ओ विनायक जी
इण नगरी रो राजा इण विध परणीजै।

विनायक के पश्चात घोड़ी संबंधी गीत बहुतायत से गाये जाते हैं। इन्हें वर के गीतों की श्रेणी में लिया जाता है। घोड़ी का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

घोड़ी म्हारी चन्दर मुखी इन्दर लोक सूं आई ओ राज
हरी हरी दूब चरै ओ राज, दूधां सूं धाई ओ राज
जठै ठाकुरजी घोड़ी ठांण बंधाई ओ राज
चौकी पर बैठा ठाकुरजी नै देवता जवारचा ओ राज
देवता जवारचा ठाकुरजी नै रुकमण परणास्यां ओ राज

बनड़े के लिए चंद्रमुखी घोड़ी इन्द्र लोक से आई है। वह हरी दूब चर रही है। दूध से छक रही है। इस घोड़ी को ठाकुरजी [श्री कृष्णजी] ने ठाण पर बंधवाई और आप चौकी पर बैठे हैं। उनको देवता पूज रहे हैं। देवता इसलिए पूज रहे हैं कि उनका रुक्मणीजी के साथ विवाह होने वाला है। इसी विषय पर दूसरा गीत है :

म्है तो आज सैर में इचरज देख्यो
देवता ओ ठाकुरजी पाट बिराज्या
माय जसोदा ओ बांटै बधाई
बहनज ओ सोदरा आरतो संजोवै

म्हैं तौ लेसां ओ बीरा
बैसण घोड़ी बैसण घोड़ी
कड़्यां री कटारी गळकंद वाळी
उड़ दांतूं री चुड़लौ
घोड़ी बांधौ ओ रूंख चनण रै, रूंख अगड़ रै
रूंख चढ़ै दो चंपा री कळियां
घोड़ी छूटी ओ बींरी हाल पड़ै
हलकार पड़ै ललकार पड़ै
कोई तेजण नै समझावौ
समझावै ओ बाबा नंदजी रौ कांन्ह
पून्यूं रौ चांद हीरां रौ हार
गढ़ गोकळगढ़ रौ वासी

[इसके आगे लड़के लड़कियों और उनके माता-पिताओं के नाम लिये जाते हैं।]

अर्थ — आज सखियों ने शहर में एक आश्चर्यजनक बात देखी। श्री कृष्ण चौकी पर विराजमान थे। उनकी माता यशोदा बधाइयां बांट रही थी। बहिन सुभद्रा आरती के लिए दीपक सजा रही थी। बहिन ने कहा — भाई मैं तो अमीर सजी हुई घोड़ी, कमर बांधने की तलवार, कंठों का हार और तारों से जड़ी हुई चूड़ियां लूंगी। भाई ने कहा — घोड़ी, तलवार, हार और चूड़ियां वही दूंगा। तब बहिन ने आरती की और घोड़ी को अगड़ चनण तथा चंपा के पेड़ों से बांधने का हुक्म दिया गया। घोड़ी खुलकर चल दी। सब उसके तेज से डर गये। कोई पकड़ो। पकड़ेंगे बाबा नन्दजी के बेटे श्री कृष्ण, जो पूर्णिमा के चांद तथा हीरों के हार की तरह गोकुल ग्राम के गढ़ में वास करते हैं। घोड़ी विषयक तीसरा उदाहरण है :

घोड़ी चतर सुजांण
हे म्हारै गोविन्द रै मन भावै
अेक चालै मधरी चाल
सुवावै हे म्हारी तेजण खड़ी रे
सुवावै हे घोड़ी चतर सुजांण

यह चतुर सुजान घोड़ी गोविन्द के मन को अच्छी लगती है। तेज मय घोड़ी सुन्दर चाल से चलती है, तब बहुत सुहावनी लगती है। यह खड़ी भी सुन्दर लगती है। अन्य गीत है :

इन्दरियौ घररायौ अे घोड़ी
मधरी मधरी चाल

चौमासो लग रायो ऐ मगेजण
हळवां हळवां हाल
थारा बाबोजी मोलावै ऐ घोड़ी
धीमी धीमी चाल
माऊजी निरखण आय ऐ मगेजण
हुळराई सूं हाल वछेरी ।

[ऐसे ही काका मामा के आगे नाम लेकर गीत वृद्धि की जाती है ।]

अर्थ– हे घोड़ी । इन्द्र के बादल गहर उठे है । तू धीरे धीरे चल । सावन लग गया है । तू धीमे धीमे चल । दूल्हे के पिता घोड़ी का मोल करवा रहे हैं, उनकी मां देखने आई है । घोड़ी तू धीमे धीमे चल । वछेरी तू धीमे धीमे चल ।

विवाह संबंधी गीतों में सर्वाधिक गीत बना एवं बनड़ी के नाम से प्रचलित है । विवाहोत्सव के मंडन के साथ ही वर एवं वधू के घरों में ये गीत गाये जाने लगते हैं । इन गीतों में वर-वधू के सौन्दर्य, सुख जीवन, आभूषण - अलंकार, वेशभूषा और पारिवारिक समृद्धि की कल्पनाएं प्रस्तुत की जाती हैं । इन गीतों के आंशिक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

काची दाख हेठै बनड़ी पांन चावै, फूल सूंघै, करै ओ बावैजी सूं वीणती
बाबाजी, देस देता परदेस दीज्यो, म्हारी जोड़ी रो वर हेरज्यो

कच्ची दाख की बेल के नीचे खड़ी बनड़ी पान खाती है और फूल सूंघ रही है । वह अपने पिता से अर्ज करती है कि मुझे देश की अपेक्षा किसी अन्य देश भले ही ब्याह देना, मगर वर जोड़ी का देखना । कन्या अपने समान ही सुन्दर वर की कामना करती है ।

बाई रा दादोजी चाल्या रथ जोड़, बाई रथ थाम लियो,
दादोजी वर मांगूं भगवांन, देवर तो छोटो लिछमणजी ।

बाई के दादा रथ पर चढ़कर कन्या की सगाई के लिए चले तब पुत्री ने रथ रोक कर कहा — दादाजी, मैं आपसे राम जैसे वर और लक्ष्मण जैसे देवर का वरदान मांगती हूं ।

१ बनड़ी ऊभी गोखड़ियै, दादाजी ओह म्हारी जोड़ी रो सासरै

२ बीकांणै मत दो म्हारा बावल, सासरियै ऐ लोय
बीकांणै रो पांणी घणो दूर, सासरियै ऐ लोय

३ कसूंबी रा डागळ डागळ पांन
गूंथ लाय ऐ म्हारी मालण सेवरो
सेवरियो ना पैरै म्हारी बनड़ी हठ करै
लाय ऐ म्हारी मालण सेवरो

परणूं परणूं वसदेवजी री सींव
नीं तौ रैवूं कुंवारड़ी जी
लाय अे म्हारी मालण सेवरौ ।

४ बनौ म्हारौ असल गंवार, बनी म्हारी चतर सा जी चतर सा

ये सब संवादात्मक गीत होते हैं, जो रोचकता की दृष्टि से बड़े सुन्दर लगते हैं। इनमें वसुदेवजी, ठाकुरजी आदि के नाम लेकर फिर गीत की भावना सहित गाया जाता है। वर वधू के संवादात्मक बनड़े और देखिये —

हस्ती तौ कजळी देसां रा लाज्यौ जी, घुड़ला तौ पारस देस रा लाज्यौ जी
वाहण रै भळकै आज्यौ जी बना, करवां रै रळकै आज्यौ जी बना

बनी कहती है कि हे बना कज्जल देश के हाथी और फारस के घोड़े लेकर आना। ठाट की सवारी सजा कर ऊंटों के समूह से सजधज कर आना।

१ सिरदार बना जी, हस्ती थै लाइज्यौ ओ कजळी देस रा
उमराव बना जी, हस्ती थै लाइज्यौ खुरसांणी देस रा
सिरदार बना जी, सेवरियै झबूकै ओ आभा बीजळी

२ बना थै हस्ती भल लाज्यौ, घुड़लां रै घमकै आज्यौ जी बना
बनाजी म्हारै दादौसा रै बुलाया, थै मोड़ा किण विध आया
बनी थारी थोथौड़ी थळियां में म्हारा घोड़ला थाक्या अे
बना थारा घोड़लां नै घीरत दिरास्यां, भायां नै लूंग सुपारी
बना थै आप पियौ भांगड़ली भायां नै सरवत पावौ

बान बैठने के बाद प्रतिदिन वर-वधू को उबटन करके नहलाते हैं। ये पीठी के गीत कहलाते हैं। उदाहरण है :

मगरै रा मूंग मंगाओ अे, म्हारी पीठी मगर चढ़ाओ अे
म्हारी तेलण आ भल आई अे, तेलण तेल घड़ो भर लाई अे
म्हारी माळण भल आई अे, आतौ चंपौ मरुऔ लाई अे
चंपलै री चौसठ कळियां अे, बनौ पूरै बनी री रळियां अे

इसी भांति पतासा, तमासा, डोरी, गोरी, कूंची, ऊंची की तुक मिलाकर वर से वधू को विशेष बताकर विनोद किया जाता है। पीठी के गीतों में हल्दी का विशेष महत्व होता है। हल्दी संबंधी भी अनेक गीत प्रचलित हैं।

म्हारी हळदी रौ रंग सुरंग निपजै माळवै
हळदी अमोल पंसारी री हाट, बनड़ै रै सिर चढ़ै
चिर जीवौ रायजादा रा बाबौजी, हळदी मोलावै
बांरी माता मन कोड घणा, म्हारी हळदी रौ रंग सुरंग

मेंहदी सुहाग का एक चिन्ह है। दाम्पत्य जीवन में प्रेम का रंगीन श्रृंगार

है। हिन्दू स्त्रियां विवाहोत्सवों पर सदैव इसे लगाती हैं। औरतें विवाह की पहली रात इसे लगाकर रातीजगा रखती हैं–

मेंहदी वाही वाही वालूड़ा री रेत, प्रेम-रस मेंहदी राचणी,
मेंहदी सींची सींची जळ जमुना रै नीर, प्रेम रस मेंहदी राचणी

इसी भांति सेवरी, कांमण, जली, ओळूं, चंवरी, फेरा, वायरौ, वधावो, भात, जंवाई आदि के असंख्य वैवाहिक गीत गाये जाते हैं।

संस्कार गीत ३. मृत्यु संस्कार के गीत—यह मानव जीवन की अन्तिम व चिर-शान्ति का संस्कार है। कहीं वृद्ध पुरुष या स्त्री की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी वैकुंठी निकाली जाती है और आध्यात्मिक गीत गाये जाते हैं। इनमें मृत व्यक्ति का स्मरण गुण-गान रहता है। उर्दू साहित्य के मरसियों की भांति ये गीत बड़े मार्मिक तथा कारुणिक होते हैं। इनमें व्यथा तथा शोक के भाव भरे रहते हैं। मृत्यु के अवसर पर सामाजिक रूप से स्वर एवं लयपूर्ण रुदन बीकानेर की पुष्क-रणा जाति में भी हृदयद्रावक अभिव्यक्ति के साथ चलता है। यह लय सहित रोना केवल स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों द्वारा अधिक होता है। बालकों की मृत्यु पर भी रोने के साथ छेड़े नामक दुखद गीत गाये जाते हैं। उनको घर का दीपक बुझ जाने या उजास [प्रकाश] मिट जाने की उपमा द्वारा याद किया जाता है। दड़ी गेडियो जैसी उनके खेलने की वस्तुओं का शून्य भाव भी प्रस्तुत किया जाता है। बूढ़े को मेढ़ी [घर का स्तम्भ] और बूढ़ी को मेढ़ण नाम से पुकारा जाता है।

खूब अवस्था प्राप्त करके मरने वाले पुरुष-स्त्रियों को भाग्यवान माना जाता है। इनके बेटे पोतों का ठाट-बाट होता है। अतः उनकी मृत्यु के अव-सरों पर गाये जाने वाले गीतों को हर के हिंडोले या हरजस कहते हैं। मैं एक प्रसिद्ध हर का हिंडोला यहां दे रहा हूं जो मरणोत्सव पर गाया जाया है:

कठै सूं आई बडेरां थांनै पालकी, कठै सूं आया रे वीमांण
जी ओ बडभागण, आयौ हलकारौ स्त्री भगवांन रौ, राजा रांम रौ
सुरगां सूं आई बडेरां थांरी पालकी, दरगा सूं आया रे वीमांण
जी ओ बडभागण आयौ हलकारौ स्त्री भगवांन रौ, राजा रांम रौ
खाली तौ मेलां बडेरां थांरी पालकी, छवियोड़ी जासी वीमांण
जी ओ बडभागण ऊभा थे रहज्यौ कदम्ब री छांवळी, राजा रांम री
कुणा जी घड़ावै, बडेरां थांरी पालकी, कुणा जी मोलावै रे वीमांण
जी ओ बडभागण हर रौ हिंडोळौ बडेरां थांरै संग चालै
बेटा जी घड़ावै बडेरां थांरी पालकी, पोता जी घड़ावै रे वीमांण
कुणा जी उठावै थांरी पालकी, कुणा जी उठावै रे वीमांण
बेटा जी उठावै थांरी पालकी, पोता जी उठावै रे वीमांण
हर हर करता बडेरां थे उठ चाल्या, तुळछां री माळा थांरै हाथ

वेटा जी उठावै थांरी पालकी, कोई पोता जी करै रे डंडौत
जी श्रो बडभागण ऊभा थै रहज्यौ, कदम्ब री छांवळी
किणनै थै सूंप्या चौकी चूंतरा, किणनै थै सूंप्या घर बार
वेटां नै सूंप्या चौकी चूंतरा, बहुश्रां नै घर बार
जाय उतारचा बडेरां थांनै भोमका, कांप रही बनराय
तूं क्यूं कांपै श्रे बनरी लाकड़ी, म्है हां फूसै जी री माय
वेटा तौ पोता घरां सिधाइया, होज्यौ थांनै वेंकुंठा रा वास
चावळ तौ रांधां बडेरां थांनै ऊजळा, श्रसल जाळापुर री खांड
पोळी तौ पोवां थांनै लड़छड़ी, कोई तीवण तीस बत्तीस
पोहर उगंतौ बडेरां थांनै पांतियौ, जीमौ नीं फूसै जी री माय

बूढों [स्त्री पुरुषों] की मौत पर हर का हिंडोला गाया जाता है। इस गीत के साथ सगी बहिन बेटियें रोती भी रहती हैं। मृत्यु एक अवश्यम्भावी तथ्य है, उसे स्वीकार करके ही जीवन की गति चल सकती है। इसलिये मृत्यु में ही जीवन का संदेश छिपा हुआ है। ऐसा ही दूसरा गीत है

थांनै रांम जी बुलावै श्रो बडेरां, थै माइनै सूं बारै आव
जावांला द्वारका
थै दस दिन भगवत धीरज धरौ, म्हारा कंवरां नै लेवां समझाय
थै दस दिन भगवत धीरज धरौ, म्हारी माया नै लेऊं सुळझाय
थै सुणज्यौ हो कंवरां इग्याकारी, म्हारौ पीछौ दीज्यौ सुधार
थांनै प्रभु जी बुलावै बडेरां थै माइनै सूं बारै श्राव
थै दस दिस भगवत धीरज धरौ, म्हारी बहुवां नै देवां समझाय
सुणौ थै बहुवां इग्याकारी, म्हारी ताळा कूंची लेवौ नीं सैभाळ,
थांनै रांम जी बुलावै श्रो बडेरां माइनै सूं बारै श्राव
थै दिन दस भगवत धीरज धरौ, म्हारी धीवड़ल्यां नै देवां समझाय
सुणौ थै धीवड़ल्यां लाडली, म्हारी गुवाड़ी दीज्यौ जगांण

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'जावांला द्वारका' की कड़ी दुहराई जाती है]

शोकावस्था में भी सरल रीतियों सहित लौकिक तत्वों के सूक्ष्म विधि-विधान होते हैं। बाप दादे की मृत्यु पर बेटों, पोतों को बाल कटवाने पड़ते हैं। पति की मृत्यु पर स्त्री की चूड़ियां तोड़कर उसके साथ भेजी जाती हैं। मृत व्यक्ति को डोरे तागड़ी उतार कर नहलाते हैं। फिर नवीन कपड़े [खापण] ओढ़ा दिया जाता है। सुहागिन स्त्री की मृत्यु पर मोती मिणिये, चूड़ियां, काजल आदि करके उसे पीला या कसूंमल ओढ़ना ओढ़ाते हैं। सबके वक्ष पर आटे का पिंड और पैसा रख देते हैं तथा श्मशान के निकट स्थान पर जल का कलश फोड़ते हैं। यदि मृत्यु पंचकों में होती है तो घास के पूलों की पुतली बना कर साथ जलाई जाती है। श्मशान में पहुंचकर जलाने की जगह पर उल्टा श्रीराम लिखा जाता

है। मां और बाप को बेटा, स्त्री को उसका पति दाग देता है। चिता के आधी जल जाने पर दाग देने वाला घी, डाल कर कपालक्रिया [सिर फोड़ना] करता है। इस समय उसके द्वारा जोर से बांग भी दी जाती है। श्मशान से घर आते समय हरे वृक्ष की एक डाली को लांघ कर निकलते हैं। संख का छींटा लेते हैं। स्वर्ण स्पर्शित जल से नहाते हैं, चंदन लगाते हैं और नीम के पत्ते चबाते हैं। किसी गर्भिणी स्त्री का पति साथ होता है तो वह मृत के खापण [कफन] से फाड़कर एक लीरी अपने हाथ के बांधता है। पहले दिन खाना घर पर नहीं बनाया जाता, कुटुम्बियों के यहां से आता है। फिर बारह दिन तक घर के लोग एक समय खाते हैं। इसे इकोळिया करना कहते हैं। जमीन पर सोते हैं और खड़ाऊ पहिनते हैं।

मृत व्यक्ति की अस्थियां गंगाजी भिजवाना, गरुड़ पुराण बिठाना और तीन दिन का तीसरा करना आदि मृत्यु के लोकाचार हैं। बारह दिन तक सर्व परिचित सगे सम्बन्धी मिलने आते हैं। ग्यारहवें दिन क्रिया-कर्म और बारहवें दिन द्वादशा होता है। गांव के सारे ब्राह्मणों का भोजन ब्रह्मपुरी और सारे ग्राम के लोगों की जीमणवार 'सैरसारिणी' कहलाती है। महीने के बाद महीने का घड़ा और छः महीने के बाद छः माही का घड़ा 'भराया' जाता है। अस्थियां गंगाजी में डालकर आने के बाद गंगेड़े भी किये जाते हैं। साहित्य में यह वर्णन एक नवीन वस्तु माना जायेगा।

अन्य गीत ४. मौसमों के सामयिक गीत – इनमें देवी-देवता और व्रत त्यौहारों के गीत होते हैं। प्रकृति अपने नये नये स्वांग बनाती है। ऋतुएं आकर उसको सजाती हैं। समयानुसार मानव भी गाता चलता है। ये गीत संस्कारी गीतों से अलग होते हैं। ऋतुएं अपने अपने उत्सव, त्यौहार, पर्व, और देव पूजन साथ लाती हैं। फाल्गुन में होली, चैत्र में गणगौर और सावन भादों में तीज तथा झूले के गीत उल्लासपूर्ण एवं रसीले होते हैं, जिनका थोड़ा विवरण प्रस्तुत कर रहा हूं।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तक कुंवारी लड़कियों के गौरी पूजन और गीत महामधुरता के आदर्श कारण हैं। प्रातः काल कन्याएं टोली बनाकर जवारों एवं कुंकुम आदि से गौरी पूजन करती हैं। शीतलाष्टमी से वे घुड़ला घुमाती हैं –

१. घुड़लो घूमै छै जी घूमै छै, घुड़लै रै बांध्यो सूत,
घुड़लो घूमै छै जी घूमै छै
ठाकुरजी रै जायो पूत, घुड़लो घूमै छै जी घूमै छै

२. जाळोड़ी जळ नीपजै रे वीरा, पाटण भुकी रे जवार

सादुळसिंगजी रा करणीसिंगजी म्हांरै घुड़लै रै सांमा श्राव
म्हे घुड़लै री तीजण्यां ओ वीरा थै घुड़लै असवार
घुड़लौ मांगै रोक रुप्पयौ, जिणरौ नेग चुकाय

तृतीया एवं चतुर्थी को गवर के बड़े भारी मेले लगते हैं। गवर को ढोकळों का चूरमा चढ़ाया जाता है। गौरी के एक नख-शिख वर्णन के गीत का प्रारंभ इस प्रकार है:

गवरल रूड़ौ हे नजारौ तीखै नैणां री
गढ़ां कोटां सूं गवरल ऊतरी
हो जी वांरै हाथ कंवळ केरौ फूल

ईसर-गणगौर के अनेकानेक गीत राजस्थान प्रदेश में गाये जाते हैं। इस त्यौहार के साथ कुमारी कन्याओं की आशा - आकांक्षाओं का संसार भी चित्रित हुआ करता है। साथ ही साथ विवाहित जीवन के आनंद एवं हर्ष का वर्णन भी इनमें मिलता है। गवर को विभिन्न आभूषणों से सजाने की क्रिया का निम्न-लिखित गीत राजस्थान भर में व्याप्त मिलता है:

खेलण दौ गिणगौर भंवर, म्हांनै पूजण दौ गिणगौर
ओ जी म्हारी सैयां जोवै बाट
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

कै दिन री गिणगौर, थांरै कै दिन री गिणगौर
ओ जी थांनै कितरा दिन रौ चाव
भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

दस दिन री गिणगौर ओ भंवर, म्हारै दस दिन री गिणगौर
ओ जी म्हांनै सोळा दिन रौ चाव
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

ओ अे म्हारी रात रिझावण, थांनै नहीं पूजण दां गिणगौर
ओ अे म्हारी दिन बतळावण, थांनै नहीं खेलण दां गिणगौर
भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

माथा नै मैंमद ल्याव भंवर, म्हारै कांनां कुंडळ ल्याव
ओ जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

मुखड़ा नै वेसर ल्याव भंवर, म्हारै हिवड़ा में हांस घड़ाय
ओ जी म्हारै बाजूबंद में लूंब लगाय
भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

नहीं पूजण दां गिणगौर, भायां री बैनड़ नहीं पूजण दां गिणगौर
म्हांरी सेजां री सिणगार, थांनै नहीं खेलण दां गिणगौर

भंवर म्हांनै पूजण दो गिणगौर

बहियां नै चुड़लो ल्याव भंवर; म्हारै बहियां नै चुड़लो ल्याव
ओ जी म्हारै गजरा वैठ पुवाय
म्हारा साईणा सिरदार, म्हांनै खेलण दो गिणगौर

पगल्यां नै पायल ल्याव भंवर, म्हारै बिछिया रतन जड़ाव
ओ जी म्हारी चूंदड़ी इचक रंगाव
म्हारा वादीला सिरदार, म्हांनै पूजण दो गिणगौर

म्हारी रात रंगीली गिणगौर, नहीं पूजण दां गिणगौर
म्हारै सेजां री सिणगार, थांनै नहीं पूजण दां गिणगौर
खेलण दो गिणगौर भंवर, म्हांनै पूजण दो गिणगौर

ओ जी म्हारी सैंयां जोवै बाट
भंवर म्हांनै खेलण दो गिणगौर

इसी तरह वरदान - याचना, खोल किवाड़ी, जवारों और बाड़ी के गीत बहुत सुन्दर होते हैं। इनमें ब्रह्मादत्त जी के दो पुत्र ईसरदास और कानीराम तथा रोवां और सूरजमल नाम आते हैं। नवरात्र और रामनवमी इसी मास के उत्तर पक्ष में आते हैं। वैसाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया पूजन होता है। राजस्थान में यह पर्व कृपकों का माना जाता है। जेठ में निर्जला एकादशी और अषाढ़ में सुद नवमी के धार्मिक एवं मांगलिक दिन होते हैं।

सांवण पहली सुद नवूं, घण बादळ घण बीज,
ढांडा ढोरा सामलो भेळो करल्यो बीज।

सावण में तीज का त्यौहार बहुत प्रसिद्ध है। बालिकाओं के मेंहदी, चूड़ियां, झूले और गुड्डे गुडियों का विवाह विशेप शोभनीय होता है।

सावण रा सतरह गया, आज नीलड़ी तीज,
घाल तराजू तोल दे, के मारगी बीज।

रक्षा बंधन, गुरु पूर्णिमा और श्रावणी भी इसी मास के मान्य पर्व हैं। भाद्र पद से जन्माष्टमी, गोगा नवमी और जळझूलनी एकादशी मनाई जाती है। अनन्त चतुर्दशी भी इसी मास का पर्व है। आश्विन में फिर नवरात्र, दशहरा, अस्त्र पूजा और लीलटांस के दर्शन शुभ माने जाते हैं। कार्तिक में कार्तिक स्नान, कार्तिकेय पूजा, करवा चौथ, अहोई अष्टमी और तुलसी पूजन होता है। इस मास में दीपावली और देवोत्थान एकादशी के पर्व भी प्रसिद्ध हैं। इसमें गोवर्धन पूजन और लक्ष्मी पूजन होते हैं। मिगसर पोप में संक्रांति पर्व आता है। माघ में वसन्त पंचमी और फागुन में शिव रात्रि का उत्सव मनाया जाता है। इसके उत्तर पक्ष में होलिकोत्सव मनाया जाता है। लड़कियां होली के साथ गोवर

के भरभोलिये जलाती हैं। स्त्रियां पानी का लोटा भरकर खेत बीजती हैं। लड़के फेरे देकर खोपरे खाते हैं। कृषक आज के दिन कुश्ती खेलते हैं और तेजा गाते हैं। अगले दिन गहर या धूलेंडी मनाते हैं।

साल के आरम्भ में देवी-देवता अधिक पूजे जाते हैं। राजस्थान में माताओं के बहुत से मंदिर हैं। काळू की कालिकाजी, पलू की माताजी, देशनोक की करनी माई, खुड़द में इन्द्र बाई, सिन्धु मोरखाने में मेहआई माता, बीकानेर में नागणेचियांजी और ओसियां में ओसियां माता विशेष प्रसिद्ध हैं। झडूले और गंठजोड़े की यात्रा के लिए दूर दूर से चलकर यात्री आते हैं। उनके द्वारा जोत और त्रिशूल का मंगल कार्य मनाया जाता है। सच्चियया माता और नगर कोट की ज्वाला का भी विशेष महत्त्व है। इनके सिवाय जमवाय माता, सकराय माता, जीण माता, खीमेल माता, शिलादेवी, नाग पोचिया का नाम लिया जा सकता है।

इन माताओं के अतिरिक्त एक विशेष माता मनाई जाती है, जिसका नाम है—शीतला माता। राजस्थानी में इसे सेढ़ळ माता भी कहते हैं। इसका मढ़ नोखा ग्राम में है। शेखावाटी में बाघोर की शीतला विख्यात है। इस माता का भक्त कुम्हार और वाहन गधा माना जाता है। इसका त्यौंहार ठंडा वासी खाकर मनाते हैं। इसके त्यौंहार को वासीड़ा कहते हैं। यह चेचक की अधिष्ठात्री देवी है। इसके कई गीत हैं। इन गीतों में बच्चों की चेचक से रक्षा करने की प्रार्थना की जाती है। जैसे—

सेढ़ल आई माता देस में अे माय, देस में अे माय
अड़सट गधियां पलांण मोरी माय
डरप्या राजा राजवी अे माय, राजवी अे माय
डरपी टाबरियां री अे माय
सेढ़ळ धोकै म्हारै तीरथ री अे माय, तीरथ री अे माय
हाथ कुंडाळौ पग नेवर अे माय
नवनेवज कर धोकस्यां अे माय, धोकस्यां अे माय
टाबरियां नै ठंडा झोला देय मोरी माय
उदौ रै उदौ कर नीसरी अे माय, नीसरी अे माय
उदौ करी परिवार मोरी माय
उदौ रै उदौ कर नीसरी अे माय, नीसरी अे माय
उदौ संस्करता री पोळ मोरी माय

१. माता सेढ़ळ आई देस में
माता अड़सठ गधिया पलांण
म्हैं सेढ़ल रा जातीड़ा
वीरै जुगराज नै तूठी पंचफूली

बाई बारप रा जतन कराय
माता सेढ़ळ आई देस में

बीरै सिवराज नै तूठी पंचफूली
बाई राजू रा जतन कराय
माता सेढ़ळ आई देस में

शास्त्रीय विधानानुसार चैत्र के नौ दिनों में शक्ति पूजा की जाती है। इस अवसर पर स्फुट एवं कथात्मक दोनों प्रकार के गीत गाये जाते हैं। पुरुष बड़े गीतों को जागरण के नाम पर रात भर गाते हैं और स्त्रियां रातीजोगे में दोनों प्रकार के गीत गाती हैं। स्फुट गीतों में देवी की यात्रा, महत्ता और सुन्दरता का वर्णन रहता है। लंबे गीतों में देवी के बलिदान, देवी की महिमा, मंदिर की शोभा और भैरूं-लंगड़िये के पराक्रम का उल्लेख होता है। प्रबन्ध गीतों में धन्ना भगत का नाम बार बार आता रहता है। इन गीतों में ध्वजा, नारियल, सिन्दूर, माला का वर्णन भी होता है। इन में बाघ की सवारी और राक्षसों का संहार विशेष बताया गया है। शीशदान और बलिदान की कथाएं भी बहुत आती हैं। जगदेव पंवार, बाळूड़ी, दूबळी आदि शीश चढ़ाने वाले भक्त इसी समय स्मरण किये जाते हैं।

देवी रातीजगे का एक स्फुट गीतोदाहरण —

माता काळी सी बदळी भवांनी बीजळी चमकै अे माय
माता बीजळी चमकै भवांनी मेहलासा बरसै अे माय
माता मेहलासा बरसै भवांनी थारै ताल छिलीजै अे माय
माता ताल छिलीजै भवांनी डेडर डरपै अे माय
माता डेडर डरपै भवांनी रै मोर झिलोरै अे माय
माता मोर झिलोरै भवांनी रै चातक सुरंगा बोलै अे माय
माता चातक सुरंगा बोलै भवांनी रै कोयल कुलकै अे माय
माता कोयल कुलकै भवांनी रै जीवड़ो जातीड़ां रो हुलसै अे माय

माता परबत चढ़ती भवांनी रै चोळो चीन्हो अे माय
माता कित लख चीन्हो भवांनी कित लख रह्यो अे माय
माता नव लख रह्यो भवांनी रै दस लख चीन्हो अे माय
माता सारै री सूई भवांनी रै पाट्ट रो तागो अे माय
माता सींव लावै दरजीड़ै रो बेटो पहरै सकड़ भवांनी अे माय
माता सोवण पिलंग पालखड़ो भवांनी सोनै रा पाया अे माय
माता घड़ लावै सोनीड़ै रो बेटो पोढ़ै सकड़ भवांनी अे माय
माता पाट्ट री बेग दावण दो मखतूल री अे माय
माता बण लावै पटवारै रो बेटो पोढ़ै सकड़ भवांनी अे माय

माता म्हारी रै सोनै री छत्तर कुंण चढ़ावै अे माय
चढ़ावै रामेस्वर रौ भागीरथ पेरै सकड़ भवांनी अे माय

आगे इस देवी के गीत में नाम लेकर इसे बढ़ाया जाता है। पुरुषों के कथात्मक गीतों में बाळूड़े का गीत बड़ा मनोहर एवं मार्मिक है।

गीत बाळूड़ौ–

भलां म्हारा बाळा माई के जायौ इक लाल, बाळूड़ौ म्हारौ चाकरी गयौ
हां रे बाळा, गयौ मुगलकै देस, नौकरी जवेरियां लागी
हां रे बाळा माया कमाई लख चार, आ सुरता वैरण देस नै गई
भलां म्हारा बाळा पैलोड़ौ वासौ विसवावीस, दूजोड़ै वासै बहन रै गयौ
भलां म्हारा बाळा वीरै नै आवतौ देख, बहन थांरी पांणी नै चाली
भलां म्हारा बाळा दीठौ माया री कनै जोर, वीरै सूं बहनड़ जोर री मिली
भलां रे बाळा गयौ दिक्खण रै देस, बहनड़ नै आतौ कांई तौ ल्यायौ
भलां अे बाई, बहनड़ नै ल्यायौ दिखणी चीर, जीजै नै पिचरंग पागड़ी ल्यायौ
भलां अे बाई, भाणजियां नै फामड़ली चीर, भाणजड़ां मैंमद मोळिया ल्यायौ
भलां म्हारी बाई, जीजै नै मुरक्यां कांन, बहनड़ नै झबरक झूंटणा ल्यायौ
भलां म्हारा वीरा, रैज्या तू अेकण रात, भोजनियां म्हारा जीमतौ सरी
भलां रे बाळा गई मोदीकै री हाट, मोदीड़ा सीधौ तोलतौ सरी
भलां अे लिच्छू के आयौ जामण जायौ वीर, कुणां रौ सिगरथ पांवणौ आयौ
भलां रे मोदी, नीं आयौ जामण जायौ वीर, नहीं तौ सिगरथ पांवणौ आयौ
भलां म्हारा बाळा रांध्या है चावळ भात; साळौ बहनोई जीमनै रह्या
भलां रे बाळा उजळा चावळियां री खीर, मुट्ठी भर खांड घिरत लेवौ
भलां म्हारा बाळा; खूंणी में ढाळी ऊंडी खाट; ओरै में वीरा सुख भर सूवौ
भलां म्हारा सायब, तारां छाई है मांझळ रात, परण्यौड़ा म्हारी अरज सुणौ
भलां म्हारा परण्या वीरै नै लेवां आपां मार, तौ माया आखी आपणै रैवै
भलां म्हारा परण्या माया है सात हजार, जकां नै दुनियां ब्याज भरै
भलां अे रंडी, जूत लगाऊं दोय चार, कुळ में बहनोई कुण तौ कवै
भलां म्हारा देवर, वीरै नै लेवां आपां मार, तौ सारौ धन आपणै रैवै
भलां म्हारा बाळा देवरियै पकड़्या दोनूं हाथ, लिच्छूड़ी छाती गोडौ धरयौ
भलां म्हारी बहनड़, अबकै तू जीवतौ छोड, ओ सारौ धन तनै ही दियौ
भलां म्हारा बाळा देवरियै पकड़्या दोनूं हाथ लिच्छूड़ी माथौ काट तौ लियौ
भलां रे बाळा धड़ तौ नाखी है कूवै मांय, अर माया माथौ कोठी में धरयौ
भलां म्हारा बाळा मूवै नै हुग्या दिन चार, मायड़ रै बाळौ सपनै गयौ
भलां म्हारी माता मूवै नै हुग्या दिन चार, बाळूड़ौ थांरौ मार तौ दियौ
भलां रे सपना पड़ज्यौ नीं आळ जंजाळ, बाळूड़ौ मेरौ चाकरी गयौ
भलां म्हारी माता नहीं बहनोई जी नै दोस, जायोड़ी तेरी करम करया
भलां म्हारी माता, धड़ तौ नाखी है कूवै मांय, पण माया माथौ कोठी में धरयौ

भलां ऐ माता हाथ लीनी है तिरसूळ, रीसाळू मायड़ मदा तो चढ़ी
भलां मेरी बेटी, आयो नीं जामण जायो वीर, आयोड़ो भाई कुनीनैं गयो
भलां म्हारी माता आयो हो जामण जायो वीर, सौदागर बाळो पाछो ही गयो
भलां म्हारी बेटी खोलो नीं सजड़ किवाड़, कोठी में मेरो भरम गयो
भलां ऐ माता, ऐ खोल्या सजड़ किवाड़, मायड़ नै माथो हंसतो मिल्यो
भलां ऐ बेटी, थारी हत्यारी पापण रांड, बाळूड़ो मेरो मार तो लियो
भलां ऐ माता कुवै सूं धड़ लीनी काढ़, माथो धड़ दोनूं जोड़नै दिया
भलां म्हारी माता मिळग्या झट भोळा सिभू नाथ, बाळूड़ो सट अमर कियो
भलां म्हारा बाळा काळी जोगण रो उपदेस, मा, बेटो दोनूं गांव नै गया
भलां म्हारी माता, नहीं बहनड़ नै देवूं दोस, लिख्योड़ा लेख कदै ना टळै

वालूड़ा नौकरी से धन कमा कर वापिस घर लौटता है। रास्ते में बहिन के यहां ठहरता है। बहिन अपने भाई को देवर की सहायता लेकर मार डालती है। उसका सिर अपनी कोठी में छिपाकर, धड़ [शरीर] कुए में डाल देती है। तथा सारा धन हजम कर जाती है। मगर देवी इस घटना को प्रकट करके वालूड़े को पुनः प्राणदान देती है। इस कथा का वालूड़े के गीत में वर्णन है। विशेष कारणों से मरे हुए अनेक सेवकों को पुनः जीवन दान देने के कथात्मक अगणित गीत मिलते हैं। ऐसे चमत्कारिक गीतों में वादशाह की कैद से देवी द्वारा मुक्त किये जाने के कुछ गीत भी मिलते है। थोड़ा दूसरा उदाहरण देखिये—

कुळ छत्री राजा भवीचन्द राजा, कुळ छेत्र में नहांण कियो
जागो सूंवै चोक वाळी, तेरै भवन में उजियाळो
गढ़ दिलड़ी सूं चढ़ियो है मुगल को, भवीचन्द नै कैद करावै।
हाथां तो पगां में बीरै बेड़ी घलाई, गळै बिच तोप जड़ायी
जागो सूंवै चोक वाळी तेरै भवन उजियाळो।
काळा पाड़ां सूं माजी सिंह पलांणै अर भगतां री मदा पधारै।
सिंह चढ़ी माता हाकळ मारै मे तो भवीचंद बारै आवै
हाथां पगां री बेड़ी कटाई, गळ सूं तोप कढ़ाई
जागो सूंवै चोक वाळी तेरै भवन में उजियाळो।
पकड़ पछाड़चो तेरे वादसाह नै औ हुरमां अल्ला जपै
जागो सूंवै चोक वाळी तेरे भवन में उजियाळो।

एक राजा को मुगल बादशाह ने कैद कर लिया। तब राजा ने देवी का स्मरण किया। देवी जेल के द्वार खोल कर भक्त को मुक्त कर देती है। बादशाह और उसकी हुरमें घबराकर देवी की शरण में आते हैं। इस तरह के चमत्कारिक गीत काफी मिलते हैं। उक्त दोनों गीत भोपे माता जी के जागरण में गाते हैं।

कथात्मक गीतों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत अधिक हैं। इनमें सहसण माता और जीण माता के गीतों की कथा भी बड़ी अमर

एवं आदर्श है। गीत सैंसण माता का —

उत्तर दीखण सूं दोय मुनिवर आया हो, आय उतरिया हरियै बड़ तळै
ढूंढ़त ढूंढ़त संतां नगर ढिढ़ौळचौ सैंसण माता रौ बतावौ घर किस्यौ
ऊंची सी मेड़ी माता अजब झरोखा, केळ झबरकौ माता रै बारणै
म्हारा सासूजी ओ साधां रै पधारिया, मुनिवर गोचरी पधारिया जी
सीरौ बेरायौ माता सावू वैराया, मोदकिया वैराया बळ भाव सूं जी,
लाडू वैराया माता जळेवी वेराई, घेवर वैराया बळ भाव सूं जी।
दाल वेराई माता चावळ वैराया, घीव वैराया बळ भाव सूं जी।
साग वैराया माता फलका वैराया, पापड़ वैराया बळ भाव सूं जी
ओगा वैराया माता पातरा वैराया, टोपसियां वैराई बळ भाव सूं जी।
सुण सुण अे म्हारी लाल पाड़ौसण, म्हारी सासूजी नै मत कहियौ जी
गून्द-गिरी रौ इक लाडू देस्यूं, भळे कसूंबा कांचळी जी
गूंद-गिरी रौ लाडू नदी ववाडूं, कांचळी फाड़ धजा करावूं जी
म्हांरी जीभ बाई लर-लर चालै जी, कद थारी सासू आवै अर म्हैं कहूं
हमैं म्हारी सासूजी घरां पधारिया, पाड़ौसण दौड़ सामी गई जी
सुण-सुण अे म्हारी लाल पाड़ौसण, थारी बहू साध वैराइया जी
देई ना धोक्या देवता ना धोक्या, सैं सूं पैल्या साध वैराइया जी
उठौ वेटा हठीसिंह सपूत म्हारा, वेगी तौ काढ़ौ घर री कुळ बहू जी
कांई रै विगाड़ियौ माता कांई रै उजाड़चौ, किण विध काढ़ौ घर री कुळ बहू जी
सारौ विगाड़चौ वेटा सारौ ही उजाड़चौ, सारा सूं पैल्यां साध वैराइया जी
काळा वळदां सूं रथ जुड़वायौ, काळा वसतर पैराइया जी
उठौ वेटा सिवकरण उठौ वेटा देवकरण, थारी दादी देसूंठौ दे दियौ जी
पीवर ना छोडी वांनै सासरै ना छोडी, अन्न रोही में छोडचा अेकला जी
सिवकरण बेटा नै भूख लग आई, देवकरण तौ तिसाइयौ जी
सूकी तळायां दूध भर आयौ, सूका रूंखां रै फळ हुया जी
हमैं म्हारा सासूजी रसोयां पधारिया, रसोयां रा थांभा रतन जड़चा जी
सीरौ संभाळचौ दाळ भात संभाळचा, सारी तेवड़ दूणी डोढ़ी हो रही जी
उठौ वेटा हठीसिंह रथ जोड़ावौ, वेगी तौ ल्यावौ घर री कुळ बहू जी
बहू बिना म्हारौ आंगणियौ अडोळौ, पोता बिना वाखळ विरंगी जी
धोळै वैलां रौ रथ ले पौंच्या, थांनै थारी सासू चेतै करचा जी
अौ लेवौ देवकरण अौ लेवौ सिवकरण, म्हे नहीं आवां थारै बारणै जी
पाट्ट पहरतां सूती पंहरस्यां, भळै नहीं आवां थांरै बारणै जी
साबती खांवता आधी खास्यां, भळै नहीं आवां थांरै बारणै जी
सतरंज जास्यां माता सैंसण कुवास्यां, कुळ में नांवौ वधारस्यां जी
वेलां चोलां पख, तप बळ देस्यां, महीणांळा मोख पुगावस्यां जी

साधुओं की सारी चीजें सैंसण माता नै बैरादी, मगर ये सब बातें पड़ौ -

सिन के नजर में आ गई। लाख प्रलोभन देने पर भी पड़ौसिन ने उसकी सास से साधुओं के परोसने की सारी बात कह डाली। सासू ने अपने बेटे से शिकायत की। और बहू को घर से निकालकर बाहर छोड़ आने की बात कही। बेटे को वही करना पड़ा। न पीहर न सासरे, जंगल के अन्दर जाकर सैंसण माता को छोड़ा। वहां उसके पुत्र देवकरण शिवकरण को भूख प्यास लगी। सत के कारण पेड़ पौधे फूल गये। पीछे सासू के भंडार भी भर गये। अब तो सैंसण माता को वापिस घर बुलाया गया। किन्तु सैंसण माता ने कहा –

ढोलियै पोढ़तां धरती पर पोढ़सां, भळै नहीं आवां थारै बारणै जी।

सैंसण तपस्या के कारण माता कहलाई। जैन धर्म के तेरा - पंथी सम्प्रदाय में सैंसण माता की भारी मान्यता है। जैन मंदिरों में प्राय: सैंसण माता की मूर्ति स्थापित होती है। श्रावकों में वास [उपवास], दो दिन, तीन दिन, पंचोला एवं अठाई तथा क्रम से महीने भर तक निराहार तपस्या करने वालों को सैंसण माता ही बल देती है, ऐसी उनके धर्म में गाढ़ी धारणाएं हैं। इन उपवास रखने वालों की जब तक तपस्या चलती हैं; उनके घर रात्रि को अन्य गीतों के साथ 'सैंसण माता' का उक्त गीत भी गाया जाता है। अंत में तपस्या पूर्ति के दिन [पारणा करने दिन] यही गीत गाती हुई महिलाएं तपस्या करने वालों को माता के मंदिर में ले जाती हैं। इसकी भांति एक जीण माता भी भावज द्वारा पीड़ित होकर पहाड़ों की गुफाओं में जाकर तपस्या के द्वारा प्रसिद्ध देवी हुई है। जीण का भाई पहाड़ों में मनाने जाता है, तब बहिन कहती है –

हरसा भाई म्हारा रे सिखर आयोड़ो रे सूरज मुड़ चले
समय भी गयोड़ो मुड़ आय, जामण रा जाया जीण आयोड़ी रे पाछी ना मुड़ै।

इस गीत का कुछ भाग राजस्थान भारती भाग एक अंक १ में और पूरा गीत मरुभारती वर्ष १० अंक दो में छपा है।

तपस्या गीतों की भांति शील और साहस के कथात्मक गीत भी राजस्थानी लोक साहित्य की जान है। सुपियार दे, हंजर, बेना बाई, चंद्रावळी, निहालदे, जसमल, सजनां जतणी, उदली भीलणी आदि के गीत प्रसिद्ध कथानक हैं। इन गीतों की नायिकाओं ने अपनी आन पर हंसते हंसते मृत्यु का आलिंगन किया है। ऐसी इनकी करुण कथाएं हैं। तभी तो जनता इनके गीत गाती है। नारी साहसोदधि में पातिव्रत्य धर्म की हिलोरें बड़े वेग से प्रवाहित होती हैं। उनकी भाव लहरियां दृढ़ता, सबलता और बड़े धैर्य के साथ तरंगित होती हैं, जिनमें अनेक राजा महाराजाओं की लोलुपता विलीन हुई है। ऐसी ऐसी सती नारियां अपने पति के समक्ष राजा ही क्या सुर तक का तिरस्कार कर चुकी हैं। वे अपने स्वामी के सामने

किसी को कुछ भी नहीं मानती। घर, खेत और पशु सब सराहने योग्य हैं और उन सब पर उसे अभिमान है। अपनी वस्तुओं के आगे वह दूसरों की धन-संपत्ति और रूप-यौवन को तृणवत् समझती है। इन गीतों में नारी का चरित्र कठिन परिश्रम करके अपने आत्मबल द्वारा औरों के ऐश्वर्य को सहज ही ठुकरा देता है।

देखिये एक जसमल का गीत—

राजाजी तौ कागद मोकळ्या अे
जसमल झिलती जोधांणै वेगी आव
प्यारी म्हांनै लागौ ओडणी अे
जसमल थां पर रीझ्यौ राव, राव खंगार

बसवांनै देस्यां अे जसमल धोरियौ अे
जसमल खिणवानै देस्यां समंद तळाव
जिमवानै देस्यां अे जसमल बाजरी अे
जसमल दुयवानै देस्यां धोळी गाय

ओड खोदै ओडणी ढोवै अे
जसमल झूलरिया तौ बांधै धोळी पाळ
थोड़ी थोड़ी ढोवौ अे जसमल ढोकरी अे
जसमल पतळी कमर बळ खाय

राजाजी तौ बैठा है पाळ तळाव री अे
जसमल चुग चुग कांकरड़ी सी वाय
मतना वावौ राजाजी कांकरी ओ
सांमी राजा देखै म्हारा देवर जेठ
अकल अलूंणा राजवी ओ
ठरक्योड़ा ठाकर भूल्यौ भूल्यौ राव खगार

किसड़ै उंण्यारै थारौ घर धणी अे
जसमल किसड़ै उंण्यारै देवर जेठ
सांवळी सूरत म्हारौ घर धणी ओ
सांमी राजा लाल दुमालै देवर जेठ

कवै तौ मराद्यूं थारौ घर धणी अे
जसमल कवै तौ मराद्यूं देवर जेठ
मारूजी मरायै बाजूं रांडड़ी ओ
सांमी राजा देवर जेठां सूं हुवै कुनांव

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
जसमल महल जोवण म्हारा आव
कांई तौ जोवां थांरै महलां रौ ओ
भूल्या राजा म्हांनै म्हारी सरवयां रौ कोड

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
तनक मिजाजण कंवर जोवण म्हारा आव
कांई तो जोवांला थारै कंवरां री ओ
भोळा भूपत म्हांनै म्हारै ओडड़ियां री कोड

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
ऊजळदंती राणियां जोवण म्हांरी आव
कांई तो जोवांला थांरी राणियां ओ
कांमी राजा म्हांनै म्हांरा ओडणियां री कोड

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
रेसम रंजी घोड़लिया जोवण म्हारा आव
कांई तो जोवांला थांरा घोड़ला ओ
पापी राजा म्हांनै म्हारै रासविदां री कोड

ओडणियां लदी है सूंई सांझ री ओ
कुबधी राजा ओड लदया है ढळती रात
काग पड़ै कुतड़ा भुसै ओ

जुलमी राजा ओड ऊंचाळी घाल्यां जाय
इसड़ी जै जांणतो जसमल ओडणी अे
केसर वरणी डेरा थांरा देवतो लुटाय

तूं म्हारा घोरिया सोभागियो रे
धोळा धोरा थां पर लोटी, जसां दिन चार
तूं म्हारी सिलड़ी सोभागणी अे
पक्की सिलड़ी थां पर धोया जसमां पांव
तूं म्हारी कुतड़ी सोभागणी अे
सूधी सिवदी जसमल राळया तनै टूक

सौ घोड़ा सौ हाथियां ओ
टरकयोड़ो राजा फौज वणायर चढ़ियो वार
कांकड़ जावतां नरपत नावड़या ओ
वगनै राजा जसमां रा पकड़या दोनूं हाथ

म्हूं तूं राजाजी थारी धीवड़ी ओ
बावल राजा थें म्हारा जळहर जामी बाप
मरण मारण नै मच गई ओ
कोपी नारी हाथां में भांप दुधार

जलमी ही रंग महल में ओ
बावल राजा दीनी मनै संमदरियै तिराय
तू म्हारी धरती देई बराड़ी अे

धीवड़ली नैं बोल्यौ भारी पाप
सैं घोड़ै गडणौ चावूं अे
भोमी माता किसड़ै मुख जाऊं राव खंगार

[राजा के पद में 'प्यारी म्हांनै लागौ ओडणी अे' और ओडणी के पद में ठरक्योड़ा राजा भूल्यौ भूल्यौ राव खंगार' के वाक्य बार बार दुहराये जाते हैं]

गीत क्या है ? गीता के अट्ठारह अध्यायों का सार है। सुख सम्पत्ति में शील - संयम का पालन करना कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु दुर्बल परिस्थिति में उसकी रक्षा करना बड़ा कठिन कार्य है। जसमा के उज्जवल विचारों से राजा का हृदय साफ हो गया। उसने फौज को घर वापिस लौटाकर स्वयं ने वहीं जीवित समाधि ले ली। राजस्थान में मांगलिक अवसरों पर यह शिक्षाप्रद गीत गाया जाता है। ऐसा दूसरा गीत कलाळी का प्रस्तुत किया जा रहा है:

गीत कलाळी—

चांदड़लो भंवर जी चढ़चौ गिगनार, हां ओ भंवर जी
कोई किरत्यां ढळ आई, गढ़ रै कांगरै जी राज

सूत्या पन्ना मारू सुख भर नींद, हां ओ भंवर जी
कोई सुपनै में दीखी, नार कलाळ री जी राज
चढ़िया सेळा मारू, ढळती मांझल रात हां ओ मदछकिया जी
कोई दिन तौ उगायौ कलाळी रै देस में जी राज

बूझ्यौ पन्ना मारू गायां रा ओ गुवाळ, हां ओ भायेलां रे
म्हांनै देस बताओ असल कलाळ रौ जी राज
बावों कंवरसा जावै जैसलमेर हां ओ मदछकिया जी
थांरै जीवणौ तौ जासी देस-कलाळ रै जी राज

बूझ्यौ भंवर माळीड़ै री पूत हां ओ माळीका जी
म्हांनै बाग बतादयौ असल कलाळ री जी राज
यो ही छै भंवर जी कलाळी रौ बाग, हां ओ बादीला जी
कोई आंबा तौ पाक्या नींबू रस भरचा जी राज

बूझी पन्ना मारू पांणी री पणिहार, हां ओ सहेल्यां जी
म्हांनै पोळ बताओ असल कलाळ री जी राज
सूरज सांमी कलाळी री पोळ हां ओ मदछकिया जी
है केळ झबरखौ कलाळी रै बारणै जी राज

पोळीड़ा रे भाई पोल तौ उघाड़ हां ओ पोळीड़ा जी
कोई बारै तौ ऊभा सिगरथ पांवणा जी राज
पोळ खुलण रौ प्यारा ज़ी दीखै नाहीं जोग, हां ओ भंवर जी
खुद पोळघां में सूतौ पूत कलाळ रौ जी राज

मोनी ले कलाळी प्यारी सजड़ किवाड़ हां ओ कलाळी जी
थांरे बाहर तो ऊभो है बेटो राव रो जी राज
होळे भंवर जी धीमा मधरा बोल, हां ओ मदछकिया जी
कोई पोळ्यां में सुसरो जी सूत्या सांभळे जी राज
सुसरे जी नै बकसावां कलाळी गांवड़ला दो चार, हां ओ नखराळी जी
कोई अेक दिल्ली दूजो आगरो जी राज

घुड़ला भंवर जी पाछा थांरा फेर हां ओ बादीला जी
म्हारो आंगण तो फूटे है जड़ियो काच रो जी राज
आंगण ओ कलाळी देऊं रतन जड़ाय, हां ओ कलाळी जी
आगे बारणा ढुळादयूं जाभा हींगळू जी राज

होळा भंवर जी धीमा मधरा जी बोल, हां ओ मदछकिया जी
कोई सेज्यां में सूत्यो पूत कलाळ रो जी राज
थांरे अे भंवर नै देऊं दोय नारी परणाय, हां ओ कलाळी जी
कोई अेक गोरी दूजी सांवळी जी राज

थे छो कलाळी रांणी इधक सरूप, हां ओ मतवाळी जी
थांनै घाल तो पटां में प्यारी ले चढूं जी राज
पटां में पन्ना मारू तेल फुलेल हां ओ रंग रसिया जी
कोई नार पराई संग में ना चलै जी राज

थे छो कलाळी प्यारी इधक सरूप, हां ओ कलाळी जी
थांनै घाल नैणां में प्यारी ले चलूं जी राज
नैणां में बादीला सुरमैं री रेख, हां ओ बिलाला जी
कोई नार बिरांणी थांरो जीव क्यूं डुळै जी राज

दीसो कलाळी घण इधक सरूप, हां ओ मांनेतण जी
थांनै पहर गळै में प्यारी ले चढूं जी राज
गळै में छैला मारू कंठी डोरा पैर, हां ओ भंवर जी
कोई नार पराई थांरे संग ना चलै जी राज

थे छो कलाळी प्यारी घणी ओ सरूप, हां ओ कलाळी जी
कोई घाल डबी में थांनै ले चलूं जी राज
डबी में भंवर जी रुपिया मोहरां घाल, हां ओ परदेसी जी
कोई नार पराई थांरे साथै ना चलै जी राज

थे छो कलाळी प्यारी इधक सरूप, हां ओ मिजाजण जी
थांनै बांध कड़चां में साथै ले चलूं जी राज
कड़चां में कंवर जी राखो भंवर कटार, हां ओ बिलाला जी
कोई नार छैलां री थांरे संग ना बंधै जी राज
दीसो कलाळी म्हांनै घणी ओ सरूप, हां ओ मगेजण जी
कोई घाल पगां में थांनै ले चलूं जी राज

पगां में पातलिया ल्यौ मोचड़ल्यां पैरं, हां ओ नादीदा जी
थांनै नार पराई हरगज ना मिलै जी राज

कैसा उपयुक्त उत्तर है? राजकुमार का सारा नशा उतर जात है और वह सीधा अपने घर का रास्ता ले लेता है।

राजस्थानी स्त्रियों के गीत, लोक साहित्य की अमूल्य संपत्ति है। उनकी संपत्ति पुरुषों के गीतों की अपेक्षा काफी विशाल है। जन्म, विवाह, व्रत, त्यौहार और अनुष्ठानिक गीतों के अतिरिक्त जिन अनेक कथानकों के प्रवेश इन गीतों में पाये जाते हैं वे उन्हीं के [स्त्रियों के] जीवन से अवतरित हुए हैं। विशेष पात्रों के माध्यम से स्त्रियां अपने वर्ग की घटानएं गुंफित कर लेती हैं। अपने सजातीय हृदय की उथल-पुथल, सुख-दुख, संयोग-वियोग आदि भावनायें भिन्न भिन्न स्थानों पर गीतों के रूप में व्यक्त कर देती हैं। इन गीतों में भव्य भावों का अशेष भंडार भरा रहता है।

नारी जाति की विराट आत्मानुभूति गीतों की प्रत्येक कड़ी पर जड़ी हुई है। इनके पावन मन की महानता जीवन क्षेत्र के पग पग पर जागृत है। बालक के लिए मां की सुमधुर लोरियां, प्रियतम के लिए विरह में तड़पने वाली नववधू की तड़पन, विधवा की कसक, कन्या का हास्य, झूले की बहार, पति पत्नी के मिलन विरह की कथा, उलाहने, पहेलियां आदि मानव जीवन से एकात्म हैं। उनके हृदय से निकल कर बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल विवाह के सरलोद्-गार भी अपने विवेकपूर्ण परिणाम तक पहुंच गये हैं। इनकी रागात्मक व्यंजना सम्पूर्ण कलाओं में प्रकट होकर लोक प्रिय बन गयी है। अतः मैं दो छोटे कंत विषयक लोक गीत आपके सामने प्रस्तुत करता हूं। ये जन-जन में प्रचलित एवं अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना से ओत-प्रोत हैं और जगह जगह अलग अलग नामों से मुखरित होते हैं। पहिले एक दुलजी नाम का बाल-विवाह विषयक गीत लिख रहा हूं।

इस बाल-विवाह की कुरीति के कारण लोक गीतों में पति को पत्नी द्वारा शिशु की तरह हुलराया - दुलराया जाता है। दुलजी गीत में बाल-विवाह प्रथा की खिल्ली एवं उपहास दर्शनीय है, ऐसे गीत जंवाई के लाड़-प्यार के लिए गाये जाने वाले गीतों में शुमार किये जाते हैं। वाकी शील और साहस के गीतों में भी ये गीत गिने जा सकते हैं।

गीत दुलजी—

दुलजी छोटौ सौ, छोटौ म्हारा स्यांणा रे छोटौ सौ
वड़लै रा पांन वड़ावड़ बोल्या, दुलजी नै मंड्यौ हिंडोळी रे; दुलजी छोटौ सौ
बड़लै रै डाळै झोटा लेवै, रेसम री तणियां रौ हींडौ मांड्यौ रे

बाट बहंता राह बटाउड़ा, दुलजी नै झोटी देई रे
कांई लागै थांरै भाई भतीजो, कांई थारै छोटोड़ो देवर रे
ना म्हांरै लागै भाई भतीजो, ना म्हारै छोटोड़ो देवर रे
म्हारै बाबल ओ वर हेरयो, वेलण सूं वर छोटो रे
सासूजी रो जायो नणद बाई रो वीरो, म्हां सुगणी रो ढोलो रे

आधी आधी रात पहर रो तड़को, दुलजी मांगै दही रोटी रे
सासूजी सूता बाईसा सूता, कठै सूं लावूं दही रोटी रे
सासूजी म्हांरा सूता के जागो, बेटो थांरो मांगै दही रोटी रे
छींकै पड़ियो दही रो कुलड़ियो, चूलै पड़ची आधी रोटी रे

आधी आधी रात पहर रो तड़को, कन्दोई हाट्यां खोली रे
म्हांनै लाडू म्हांरी बाईसा नै जळेबी, [म्हांरै] दुलजी नै घेवर छंटाई रे
आधी-आधी रात पहर रो तड़को, सोनीड़ै हाट वखेरी रे
म्हांनै नाथ, बाईसा नै तिमणियो, [म्हांरै] दुलजी नै डोरो घड़लाई रे

आधी-आधी रात पहर रो तड़को, म्हारै दरजीड़ै हाट वखेरी रे
म्हांनै अंगियां बाईसा नै कांचळी, [म्हारै] दुलजी नै चोळो सींव लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो, छोटकियो गजब गुदारै रे
आधी आधी रात पहर रो तड़को, मोढ़ीड़ै हाट वखेरी रे
म्हांनै चूंदड़ी बाईसा नै घाघरो, दुलजी नै पेचो रंग लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो, छोटकियो लूंगां रो वोपारी रे

पति बच्चा है, दाम्पत्य जीवन की बातें वह क्या जाने? परन्तु उसकी युवा स्त्री बड़ी मतवाली है। वह अपनी खिन्नता-प्रसन्नता को रोकने में असमर्थ होकर अपार हृदय-वेदना को उल्लास मुस्कराहट में परिवर्तित कर देती है। वह अपने छोटे पति के लिए छोटी गुडिया जैसी वहू भी व्याह देने की किसी संबंधी से प्रार्थना करती है —

आधी आधी रात पहर रो तड़को, सगै व्याही हाट वखेरी रे
म्हांनै सोक म्हांरी बाईसा नै भाभी, दुलजी नै छोटी लाडी लाई रे
छोटो छोटो मत कोई कैज्यो, छोटकियो दो-दो नारयां राखै रे

[इस गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद 'दुलजी छोटो सो' का पुनरावर्तन होता है।]

इस गीत में नैराश्य विहीन हृदय को वेधकर विरह की मूक पुकार, अनोखी मखौलबाजी के साथ प्रतिध्वनित होती है। पति के छोटे होने से थोड़े दिनों के लिए अभाव होता है। वह अभाव मीठी आशा एवं अनुपम उम्मीद के सहारे पलता है। वह अल्प समयोपरांत नारी के मनोमालिन्य को अपने यौवन की प्रबल धारा में बहाकर प्रियतम में एकाकार कर देता है, अतः पति की लघु वय

का दारुण होते हुए भी मधुर है। क्योंकि उसमें प्रियतम के वयस्क होने का दीर्घ सुख अन्तर्हित है। अत: इन गीतों के मनोवैज्ञानिक तथ्य द्रष्टव्य है। जिस प्रकार प्रात: काल की पंखुड़ियां आल-बाल में बिखर जाती हैं, उसी प्रकार छोटे कंत की नारी हास्य-परिहास में विलम कर पति की लघु वय के दारुण समय को गीत गाकर व्यतीत कर देती है। उसके जीवन प्रसंग के प्रत्येक अंग पर गीत बन जाता है। आगे आप छोटे बालम का ऐसा ही एक और गीत देखिये —

बालम छोटौ सौ—

बारा वरस रौ बालमौ, पच्चीसां ढळ गई नार, बालम छोटौ सौ
अस्सी कळयां रौ घाघरौ, वौ लावण में लुक जाय

खातीड़ै रै जातां ढोलौ हठ पड़ियौ, म्हनै गाडुलौ घड़ादे नार
गाडुलौ घड़ावै थांरौ बापजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
छोटौ छोटौ तू मत करे, अब राख मरद री कांण मोटौ होय जासी

दरजीड़ै रै जातां ढोलो हठ पड़ियौ, म्हनै टोपली सींवादे नार
टोपली सींवावै थारी माऊजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
छोटौ छोटौ गोरी मत करे, तू राख मरद री कांण, आखर परण्योड़ौ

बजारां नै जातां ढोलौ हठ पड़ियौ, म्हनै लाडुड़ा तुलादे घरनार
लाडू तुलावै थारौ वीरोजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
पांणीड़ै नै जातां ढोलौ हठ पड़ियौ, म्हनै गोदी चढ़ाले घरनार
गोदी लेवै थारा बापजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार

नणदल बूझै भावज नै; तूं कठै भजायौ म्हारौ वीर
म्हारौ जोबन झिल रह्यौ, थांरौ वीरौ डर लुक जाय, भोळी नणदोली
अन-धन री घर कमी नहीं, म्हारै दूझै भूरी झोट, मोटौ हो जासी
नणदल घाटी म्हैं सैवूं, पण ओ दुख सह्यौ न जाय, बालम छोटौ सौ

यौवन का सुख बाह्य साधनों में नहीं मिलता। वह तो अन्त: करण के उपकरणों से ही प्राप्त होता है। पर छोटे कंथ की स्त्री ऐसे आशा जन्य समय को हास्य-परिहास तथा गीत-गान द्वारा बड़ी सरसता से बिता देती है। वह बड़े ही धीरज के साथ कहती हैं—

म्हारी जोड़ी बणती सी बणसी
चुण चुण कंकरी मैल बणायौ
वैठण री रुत आसी
चुग चुग कळियां सेज बिछाई
पौढ़ण री रुत आसी
म्हारी जोड़ी बणती सी बणसी

आखिर छोटे कंत की नारी जोड़ी बना ही लेती है मगर बूढ़े की स्त्री की

जोड़ी बननी नहीं ; दिनोदिन बिगड़ती जाती है।

इस तरह के गीतों में जुवार मल, काळवों, मेघूड़ी, ढोली, काळी, आंगणैं में गिडो खेलें, जोड़ो को नहीं स्यांम आदि गीत मिलते हैं। इन सब में अनमेळ विवाह की हंसी समाज की कुरूपता तथा रूढ़िवादिता की भयंकरता के दिग्दर्शन होते हैं। 'बडी बहू बडा भाग, छोटी बनड़ी बड़ी सुहाग' की कहावत पर कुठाराघात है। ऐसे गीतों में से जुवार मल के गीत का कुछ अंश भी पढ़िये —

मैं मेरी मां के लाडली, जुवार मल नै परणाई – जुवार मल डावड़ो
पीसत गोडै, पोवत गोडै, पांणीडै नै जातां जी जुवार मल आंगळी
हाथज कसियो, कांधे जेळी, सिर धर चाली जी जुवार मल को पालणूं
आडो सो गैलो हरियो सो पींपळ, जें चढ़ घाल्यो जी जुवार मल को पालणूं

लोक साहित्य का आदर्श और ज्ञान, मानव व्यवहार में छाया की भांति साथ साथ चलता है। वह रिकार्ड बजने, रेडियो सुनने और सिनेमा देखने की तरह हमारे दिल दिमाग का सौख्य मात्र साधन नहीं, वरन जन-जन की मनोरंजित एवं जागृत व्याख्या है। जीवन के हर एक पहलू का परम प्रतिष्ठित गौरव है। समाज की ऊंची से ऊंची चोटी से लेकर नीची से नीची श्रेणी तक में इसको शिक्षा का प्रसार है। वह केवल इने गिने प्रथायुक्त विषयों के पीछे ही नहीं रहता, वह तो लोक के शाश्वत, स्वस्थ एवं निश्छळ अभिव्यजंनास्वरूप मानवीय तत्वों का ही प्रदर्शन करता है। उसका वास्तविक लक्ष्य जीवन के जटिल मार्ग का रसमय निर्देशन करना एवं भव्य भावों को सरल भाषा में उतारकर अपने पवित्र सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करना है।

ये लोकगीत जन-जन के मुख से उद्भूत होकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी को सदुपदेश देते हैं। राजस्थान के जन जीवन की ये अभिव्यक्तियां उसकी सच्ची आत्मा है। राजस्थान और लोक वाङ्मय का संश्लिष्ट वर्णन इतिहास की अपूर्व शोभा है।



४

लोक कथा

लोक कथा का बीज — मनुष्य ने जिस समय से वाणी की सत्ता प्राप्त की, ठीक उसी समय से कथा कहने की आदि-वृत्ति ने जन्म लिया। इस तथ्य को स्वीकार करनें में संभवतया किसी भी सामाजिक व्यक्ति को दुविधा नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रक्रिया को अपने परिवार के बीच में एक स्वयं-सिद्ध सत्य के रूप में देख सकता है। हर घर में एक शिशु की कल्पना की जा सकती है और उसके विकास के विशेष आयामों को पहिचाना जा सकता है। सजीव, किन्तु भाषा विहीन बालक मुखाकृतियों एवं अंग संचालन के द्वारा अपने स्थूल सुख-दुःख की भावना को व्यक्त करते करते, भाषा में तुतलाना प्रारंभ कर देता है। सीखने के इसी क्रम में एक दिन वो बोल चाल के शब्द भंडार के प्रतीकों को समझने लगता है। इस छोटी सी शब्द शक्ति को प्राप्त करते ही शिशु का मन कथाओं को सुनने के लिए लालायित हो उठता है। बाल्य काल से लेकर प्रौढ़ावस्था तक पहुंचते हुए ज्ञान प्राप्त करने की जो सीढ़ियां हैं – उनके विकास क्रम के ठीक नीचे आदिम मनुष्य से लेकर आज के मनुष्य तक पहुंचा जा सकता है।

इसी तथ्य को यदि दूसरे रूप में प्रस्तुत करें तो कह सकते हैं कि शिशु जीवन को प्रशिक्षित करने के लिए 'कथा' का आज जो योगदान है – ठीक वैसा ही योगदान एक दिन आदिम समाज में कथाओं ने अदा किया था। शिशु की कल्पना, उसके अमूर्त प्रतीक, उसका सूक्ष्मदर्शी मानव और निश्छल रेखानुकृतियों में संपूर्णता को देखने का मनोविज्ञान आज जितना बड़ा सत्य मान लिया गया है – वे सभी तथ्यानुतथ्य आदिम कथाओं पर भी लागू होते हैं।

किन्तु अवस्था, अनुभव व ज्ञान की सीमा के बढ़ने से जिस प्रकार मनुष्य की वृत्तियां भिन्न भिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक, कलात्मक मनोवैज्ञानिक आदि आदि विषयों में तल्लीन हो जाती हैं – उसी प्रकार कथाओं का क्रम भी नानाविध विषयों के रूपों में बह निकलते हैं और फिर उनकी

विषय-गत गणना असंभव बन जाती है। मनुष्य की समस्यायें समुद्र की भांति विस्तृत हैं और उस समुद्र की उर्मियों को गिनना असंभव है, उसी प्रकार कथाओं रूपी कल्पनात्मक लहरों की गणना भी असंभव बन जाती है। फिर भी हम सोचने-समझने की सुविधा के लिए कुछ वर्गीकरण, कुछ सुविधाजनक विभाजन बनाते हैं। शायद इस 'संक्षेप' करने की वृत्ति से आज हम लोक कथा जैसे विराट विषय को समझने का आंशिक दावा भी कर सकेंगे।

मनुष्य के आदि जीवन में उसकी एकाग्रता प्रकाशित होती है। उसके क्रिया कलाप भय, विश्वास, धर्म, आस्था और आमोद-प्रमोद से ओत-प्रोत हैं। वह प्रकृति की प्रक्रियाओं को सदैव भावना प्रवण रूप से देखता आया है और वह उस पर अपने अनुभूत एवं कपोल-कल्पित विचार भी व्यक्त करता रहा है। यह उस समय की बात है, जबकि मनुष्य वनवासी था उसके घर नहीं थे। वह पशुओं के भय से तथा सर्दी की मार से बचने के लिए आग जला कर रात काटा करता था। बड़ी बड़ी रातों की इन खाली घड़ियों में ठंड से सिकुड़ा हुआ मानव आपस में कुछ अनुभव एवं सीख की बातें किया करता था। वह अपनी जबान को बोलने का जो प्रशिक्षण देता गया, वही प्रथम वाणी, कहानी का रूप धारण कर गया। यही कहानी समस्त साहित्य की जननी है। मौखिक एवं लिखित वाङ्मय का कोई भी अंग आज तक कथा से अछूता नहीं रहा है। उसकी जड़ में लघु या दीर्घ कहानी का अंश अवश्य मिलेगा।

भारतीय साहित्य दर्शन, ज्ञान विज्ञान का प्रारंभिक सूत्र हमें वेदों में मिलता है। अतः हमारे देश की लोक कथाओं के अध्ययन के लिए भी वेदों का ही सहारा लेना आवश्यक है। चारों वेदों में आख्यान, उपाख्यान, आख्यायिका और कथा नाम का कोई एक भी शब्द नहीं मिलता। वेद में कथं, शब्द ही कथा का पर्याय जान पड़ता है। अथर्व वेद में, इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी नाम के चार शब्द काम में लिए गये हैं। गाथा शब्द ऋग्वेद में आया है, जिसका अर्थ छन्द-बद्ध स्तुति अथवा गीत है। किसी राजा के छन्द-बद्ध यश गान को नाराशंसी कहा गया है। इतिहास और पुराण किसी प्रचीन काल के वृतान्त को माना गया है। महाभारत लोक कथाओं का वृहत् संग्रह है। आगे चलकर इन्हीं लोक कथाओं से कहानियां ले लेकर सारे कवियों ने साहित्य सृजन किया। [इदं सर्वे कविवरे राख्यान मुपजीव्यते २। २४१]

भारतीय लोक कथाओं की परंपरा—मनुष्य के मौखिक परंपरा साहित्य में लोक कथाओं का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। इनके अध्ययन की दृष्टि से भारत बहुत ही महत्वपूर्ण देश है। यहां बहुत पुराने जमाने का साहित्य भी प्राप्त है और संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश तथा मध्यकालीन भाषाओं की अनेक

लोक कथाएं मिलती हैं। वेद, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, बौद्ध, जैन, एवं अन्य दार्शनिक ग्रंथों में लोक कथाओं को ग्रहण किया गया है। लोक कथाएं विविध स्तरों में विद्यमान हैं। १९ वीं शताब्दी के सभी विचारशील विद्वानों ने बताया है कि लोक कथा का सबसे बड़ा उत्स भारत ही है। लोक कथाएं मनुष्य के केसों की तरह उसके साथ ही उत्पन्न हुई हैं। ये सारे संसार में वनस्पति की तरह व्याप्त हैं। वे वृद्ध नानियों दादियों के पोपले मुंह से सदैव कही जाती रही हैं। मगर साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं सुदूर अतीत की परंपरा से संश्लिष्ट हैं। सर्व प्रथम कहानी के मूल तत्व हमें ऋग्वेद की स्तुतियों के रूप में मिलते हैं। वेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। उनके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में शोभित हैं।

ब्राह्मण ग्रंथ भी वैदिक बीजों के कथा-वृक्ष हैं। शतपथ-ब्राह्मण की पुरूरवा और उर्वशी की कथा को सब जानते हैं।[1] कालीदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक का कथानक इसी कथा से लिया है। यम-यमी का आख्यान और अगस्त्य लोपामुद्रा की कहानी भी वैदिक साहित्य की ही देन है। इनकी जड़ें उपनिषद युग से पूर्व की जमी हुई हैं। च्यवन, भार्गव एवं सुकन्या मानवी की कहानियां भी तांडय ब्राह्मण (१४।६। ११) में विकसित हुई हैं। शुनःशेप की प्रार्थना का कथा वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण (७। ३) में मिलता है। उपनिषद काल में आकर इन कहानियों ने नया बाना धारण कर लिया। सत्यकाम - जाबाल, प्रवाहण तथा कैकय जनपद के अश्वमति पंचाल गार्गी और याज्ञवल्क्य के संवाद की कहानियां उपनिषद काल में मिलती हैं। कठोपनिषद् में एक नचिकेता की कथा है। जिसको पंडित सदलमिश्र ने नासिकेतोपाख्यान नाम से प्रारंभिक खड़ी बोली में लिखा है। उक्त युग में जनश्रुति के पुत्र राजा जानश्रुति की कहानी एवं अग्नि यक्ष की कथा के प्रसिद्ध वर्णन भी हैं। इन उपनिषदों में दृष्टान्त कथाओं का भी उपयोग हुआ है। वेद एवं ब्राह्मणों की कहानियों के यज्ञ, अनुष्ठान, स्तुतियों के बीज और बिन्दु उपनिषद् युग में अपनी दिव्य अनुष्ठानिकता समाप्त करके देवताओं की जगह ऋषि - मुनियों और राजाओं के वर्णनों में बदल जाती हैं। इनकी कहानी कला आगे चलकर पुराण, रामायण और महाभारत में समुचित विकास पाती हैं। पुराण तो परम कथागार ही हैं। वेदों की मूल कथाएं पुराणों में ही पुष्ट हुई हैं। पुराण वेदों के सार, व्याख्या और सरलार्थ हैं। वेदों की गूढ़ता पुराणों द्वारा सर्व साधारण के लिए सुलभ हुई है। यों तो रामायण में कई आख्यान आते हैं, परन्तु महाभारत में तो यह प्रवृति पर्याप्त विविधता के साथ पाई जाती है–' यन्न भारते तन्न भारते ' वाक्य के अनुसार महाभारत को भारतीय बृहत् कथा

१ शतपथ ब्राह्मण ११।५।१

भंडार कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनकी कहानियों में अनेकानेक उद्देश्य, अभिप्राय, सत्य तथ्य, इतिहास एवं लोक वार्ता के रोचक आख्यान - उपाख्यान बुने मिले हैं। यह हमारा [महाभारत] विश्वास - श्रोत है। इससे सभी महा कवियों ने प्रेरणा पाई है। वन पर्व में नल की कथा का उपयोग युधिष्ठिर को युद्ध के दुख में धैर्य और आशा जागृत करने के लिए किया गया है। महाभारत के लाख श्लोकों में से ७६००० तो उपाख्यान ही हैं। आदि पर्व १ । १०२ में लिखा है–

> चतुर्विंशति साहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
> उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुद्धैः ॥

कौरव पांडव, भीम, कर्ण, वासुकि, अंगूठी और अमृत आदि की अनेक लोक कथाओं के परिपक्व तंतु महाभारत में मिलते हैं। दुष्यन्त पुत्र भरत के संबंध में अनेक गाथाएं महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध होती हैं।

उपरोक्त विचार प्रवाह, वैदिक आधार एवं पुराणादि की उपलब्ध कहानी धारा का निर्मल पर्यवसान लोक सरोवर की ओर प्रवाहित है। अलावा इसके संस्कृत आख्यान साहित्य भी विश्व साहित्य में सर्व मान्य है। इनकी पृष्ठभूमि में स्वच्छ कल्पनाएं हैं। इन सब में हास्य विनोद, घटना वैचित्र्य, गंभीर विचार एवं सरस काव्य - कौतुहल है। विद्वानों ने आख्यान साहित्य को दो वर्गों में बांटा है – नीति कथा एवं लोक कथा।

१. नीति कथा — पंचतंत्र और हितोपदेश नीति कथा के दो रोचक ग्रंथ है। इनमें सदाचार राजनीति तथा व्यवहारिक ज्ञान के वर्णन हैं। इनकी कथाओं में पशु - पक्षी और जीवजंतु भी मनुष्य जैसे कार्य करते हैं। उनका संभाषण, रूप परिवर्तन, व्यवहार और विवाह मनुष्यों के साथ होते हैं। इनकी प्रमुख कथाओं के बीच कई गौण कथाएं भी चलती हैं। ऐसी नीति कथाओं की कई पुस्तकें और भी प्राप्य हैं। परन्तु पंचतंत्र और हितोपदेश तो भारतीय नीति कथा के दो सागर हैं। पंचतंत्र की रचना का उद्देश्य किन्हीं राजकुमारों को नीति शास्त्र की शिक्षा देना था। पंडित विष्णुदत शर्मा ने इस ग्रंथ की रचना करके उक्त कार्य को दीर्घ समय में पूर्ण किया। पंचतंत्र के कई भाषाओं में [८ वीं शताब्दी से २० वीं शताब्दी तक] अनुवाद भी हुए हैं। इसके पांच तंत्र याने पांच भाग ये हैं– मित्र भेद, मित्र लाभ, काकोलुकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारकं। कई विद्वान इसके बारह भाग बताते हैं। इसके बाद श्री नारायण पंडित द्वारा हितोपदेश की रचना हुई। उन्होंने स्वयं को पंचतंत्र से प्रभावित माना है। इसमें चार परिच्छेद है। मित्र लाभ, सहृद भेद, विग्रह और संधि। इसकी भाषा

वास्तव में सरल, सरस, एवं सहज हैं। इन नीति कथाओं की कई विशेषताएं लोक कथाओं में भी मिलती हैं।

२. **लोक कथा** — नीति कथाओं के बाद हम बृहत्कथा, वेताल पंचविंशतिका, शुकबहोत्तरी, जातक और जैन कहानियां आदि के साथ हिन्दी लोक कहानियों की तरफ आते हैं। नीति कथाएं उपदेशात्मक थीं और लोक कथाएं मनोरंजनात्मक होंगी। नीति कथाओं के पात्र जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आये हैं। पर लोक कथाओं के पात्र प्रायः मनुष्य ही होंगे। नीति या उपदेश प्रधान कथाओं का मुख्य ग्रंथ पंचतंत्र माना जाता है और मनोरंजन वाली कथाओं में प्रमुख ग्रंथ बृहत्-कथा [बडड्कहा] विख्यात है। मूल बृहत् कथा प्रथम पैशाची प्राकृत में लिखी गई थी। यह ईस्वी की प्रथम शती की कृति मानी जाती है। इसके मूल में एक लाख पद बताये जाते हैं। आन्ध्र में गुणाढ्य नाम के किसी पंडित ने यह ग्रंथ लिखा था। लेकिन वह पैशाची मूल कृति अभी उपलब्ध नहीं है। बाण के हर्ष-चरित में, दंडी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मंजरी में और सोमदेव के कथासरित्सागर में उसके प्रमाण प्राप्य हैं।

संस्कृत में बृहत्कथा के तीन रूपान्तर मिलते हैं। जिममें रहस्य, रोमांच और साहसिक कार्यों की प्रधानता है। तीनों में कथासरित्सागर अधिक लोक-प्रिय है। वैताल पंचविंशतिका की पच्चीसों कहानियां पहेलियों के रूप में हैं। ये सब मनोरंजक एवं कौतुहल वर्धक हैं, जिनको एक वैताल ने उज्जैन के राजा विक्रमादित्य को कही हैं। यह शिवदास द्वारा रची गई हैं। इसका हिन्दी रूपान्तर बैताल पच्चीसी के नाम से हुआ है। इसी तरह सिंहासन द्वात्रिंशिका [द्वात्रिंशत्पुत्तलिका] भी मनोरंजक कहानी संग्रह है। इसकी कथायें राजा भोज से संबधित हैं। राजा विक्रम के सिंहासन की बत्तीस पुतलियां राजा भोज को अपनी अपनी एक कहानी कह कर उड़ जाती हैं। इसका हिन्दी एवं राजस्थानी अनुवाद सिंहासन बत्तीसी नाम से हुआ है। शुक बहत्तरी भी एक रोचक कहानी संग्रह है। इसमें एक शुक द्वारा किसी परदेशी व्यक्ति की पत्नी को बहत्तर [७२] कहानियां सुनाई गई हैं। ऐसे और भी कई संग्रह मिलते हैं–जैसे पुरुष परीक्षा, नैतिक और राजनैनिक ४४ कहानियों का संग्रह है। कथार्णव में चोर और मूर्खों की पेंतीस ३५ कहानियां हैं। भोज प्रबंध और आख्यायिनी आदि कई कहानी संग्रह हैं। भगवान बुद्ध के समय शताब्दियों से जनता में प्रचलित आख्यान, परियों की कहानियां एवं रोचक चुटकले भी धार्मिक रूप में ढलकर अवदान में रूपान्त-रित हो गये हैं। वौद्ध साहित्य में कहानियां प्रचुर परिणाम में मिलती हैं। इनके संग्रह जातक नाम से प्रसिद्ध हैं। जातक कथाएं भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की पावन कथाएं हैं। प्रोफेसर एन. वी. तूंगर, जातक की परिभाषा, "जात नाम

बोद्धिसत्तक कथा" कहकर करते हैं । इन कहानियों में राजा सम्राटों से लेकर पशु पक्षियों तक पात्र मिलते हैं । इनमें बुद्ध भगवान के मुखारविंद से निकले उपदेश नीति वाक्य निहित हैं । ये सरल, स्वाभाविक और मानवीय स्थिति युक्त हैं । ये कोमल, सुबोध एवं प्रभावोत्पादक भी हैं । इनकी भाषा पाली है ।

कथा - साहित्य की दृष्टि से बौद्ध एवं जैनाचार्यों ने असंख्य ग्रंथ - गुटके और कथाओं के संग्रह-संपादन किये हैं । इन कथाओं से इन धर्मो को प्रचार और धार्मिक सिद्धान्तों को पर्याप्त योग मिला है । इन्होंने उपदेश - प्रधान कहानियों के समृद्ध सदावृत से खोल दिये हैं । इनकी कहानियों में तीर्थंकरों, श्रवणों एवं शलाका पुरुषों की जीवन कथाएं मिलती हैं । ऐसी कहानियों के मूल तत्व लेकर आगे के लेखकों ने भी संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक कहानियां लिख डालीं, जो अपभ्रंश में पउम चरिउ [पद्म चरित्र] तथा भविस्सत्यकहा [भविष्यत्कथा] नामक पुस्तकें कहानी साहित्य की अनुपम संपत्ति हैं ।

[आ] युगीय प्रचलित भाषाओं की लोक कहानियां — लोक कहानी की श्रेणी में आने वाली असंख्य कहानियां राष्ट्र भाषा हिन्दी में अत्यन्त आदेश रूप में दिखाई देती हैं । तोता मैना जैसे बहुत से जनप्रिय किस्सों को छोड़कर बैताल पच्चीसी, माधवानल कामकंदला, सिंहासन बत्तीसी, ढोलामारू और सूआ बहत्तरी जैसी लोक संस्कृति की प्रसिद्ध कथायें हिन्दी के माध्यम से प्राप्त हैं । इसी क्रम में पटेल और नाई की सह यात्रा आरंभ करते समय कई कथाओं का एक संग्रह भी है । पटेल और नाई यात्रा आरंभ करते समय वायदा करते हैं कि नाई कोई भी नई रहस्य पूर्ण घटना लायेगा तो पटेल को उसका पूरा समाधान करना होगा । आगे चलकर यही क्रम शुरू होता है । नाई की तमाम शंकाओं पर पटेल के प्रतिभापूर्ण उत्तर बड़े मौलिक एवं दिलचस्प ढंग से प्रस्तुत हुए हैं । इस कथा के एक अंश को राजस्थानी में श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने 'हराम खोर की मूंडकी' के नाम से प्रकाशित किया है ।

भारतीय लोक कथा साहित्य को गौर से देखें तो ज्ञात होगा कि कथाएं वेदों की हों, चाहे पुराणों - उपनिषदों की, चाहे जातक की आख्यायिकाएँ हों, या बृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, अथवा बैताल पचीसी सभी कथाओं की लिखित शैली में कहने के ढंग की प्रमुखता और सुनसे सुनाने के भाव गुंफित हैं । इन पर हमारे अतीत के अनुभवों एवं ऐतिहासिक घटनाओं की छाप है ।

भारत विभिन्न संस्कृतियों का महान देश है । उसके पश्चिमी किनारे पर राजस्थान नामक देश बसता है । इस प्रदेश की सांस्कृतिक सीमाएं पंजाब, सिंध, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं गुजरात की सीमाओं के साथ आबद्ध हैं । जिनका

लोक कथाओं पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता । मुगल काल तक राजस्थान, भारतीय राजनीति का लीला क्षेत्र बन गया था । जितनी भी विदेशी जातियां यहां आईं, राजस्थान से उनका गहरा परिचय हुआ । यह कभी तलवार के साथ रणस्थल में होता, और कभी अपनत्व के तरीके से पगड़ी राखी के रूप में घर पर ! कहीं दुश्मन और कहीं सज्जन ! मगर यहां की भाषा, संस्कृति और साहित्य पर उन आने वाले लोगों की भाषा एवं नामावाली (अरबी फारसी) का पूरा प्रभाव पड़ा । इसलिए हमारे ख्यात, इतिहास ग्रंथ, उन विदेशी पात्रों की कथाओं से पूर्ण हैं । उजबक, तातार, बलोच और अफगान आदि जातियों के लोग तो राजस्थानी योद्धाओं के साथ हमारी बात ख्यात में उलझे हुए नायक हैं । बलख, बुखारा, अरब, समरकन्द, गजनी, रूम सूम और काबुल जैसे देशों की चर्चा तो राजस्थानी कथाओं के साथ स्पष्ट संलग्न हैं । यहां के दुर्गम दुर्गों के साथ गजनी के गढ़ का भी वर्णन पाया जाता है । काबुल तो सिंध और गुजरात की तरह राजस्थान का एक अपना पड़ौसी रहा है । जैसे– 'कैकांणा काबुल भली, पौहर भली परभात । मरदां भली ज मुरधरा, गोरड़ियां गुजरात' । राजस्थान में घोड़ों की नस्ल सुधारने हेतु रेत तक यहां लाई गई थी । मारवाड़ के राड़धड़ा की धूल काबुल की कही जाती है । [१]

राजस्थान में एक-एक किला, एक-एक मंदिर, एक-एक पहाड़, एक-एक घाटी एक-एक गांव के ही नहीं एक-एक अस्त्र शस्त्र के पीछे भी इतिहास है । रेत का टीबा, टूटा हुआ भवन, उजाड़ जंगल में बनी हुई देवली या चबूतरा, पहाड़ की खोह, छोटी सी बावड़ी और खंडहर के बिखरे हुए पत्थर के पीछे अपनी जाज्वल्यमान कहानी है । राजस्थान ; इतिहास, लोक साहित्य, प्राचीन ग्रंथों, चित्रकला, हथियारों, लोक संगीत, परंपराओं और संस्कृति की दृष्टि से भारत का सबसे संपन्न राज्य है । यहां लोक कथा को बात अथवा वारता कहते हैं । यहां की बातें और ख्यातें बड़ी रसीली हैं । इनकी शैली माधुर्य पूर्ण एवं अपने ढंग की है । इनका एक एक अक्षर यहां की खबरें लिए हुए हैं । एक एक शब्द में रणक्षेत्र तथा पीढ़ियों का पराक्रम भरा है । राजस्थान में इनके कहने और लिखने की परंपरा काफी पुरानी है । इनके आरंभ करने का ढंग, समाप्त करने का नियम और वर्णन करने की प्रथा स्वयं की अपनी है । हिन्दी कहानी की शुरूआत अंग्रेजी और बंगला की गल्पों के अनुकरण पर हुई है । मगर राजस्थानी कहानी साहित्य उसकी निजी निधि है । उनमें कुछ बातें वर्णन प्रधान हैं और कई, घटनाओं को एक एक के बाद एक एक करके उपस्थित करती जाती है ।

राजस्थानी लोक कहानियां — डिंगल भाषा की समृद्धिहेतु यहां की बातों तथा

१ घर ढांगी आलम धणी, आगळ लूणी पास । लिखिया जांणै लाभसी, राड़धड़ै रै वास ।।

कथाओं का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। ये ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक [लोक कथाएं] बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। इनमें कथाएं पद्यवद्ध भी लिखी गई और गद्य में भी लिखी हुई हैं। साथ में इन कथाओं की दो दूसरी समानान्तर धाराएं भी प्रवाहित होती रही हैं। पहली धारा तो कथाओं की वह थी, जिनको कथाकार लोग सजावट के साथ लिपिवद्ध करने का परिश्रम करते और दूसरी धारा कथाओं की वह थी, जो राजस्थान निवासियों के कंठों में ही अविस्मृत ढंग से जीवित रहीं—अर्थात् ये कथाएं केवल कही सुनी जाती रहीं, लिखी नहीं गई। लिखित रूप में भी वातों की छटा देखने योग्य है, और मौखिक वातों की तो गिनती भी नहीं होती। साथ ही एक वात अनेक रूपान्तरों में सुनी जाती है। लोक प्रचलित चीज के लिए ऐसा होना स्वाभाविक है।

१. कथा की प्राचीन प्रथम धारा [लिखित लोक कहानियां] — १५ वीं शताब्दी से राजस्थानी साहित्य-सागर की कथा सरिता-नव्यपथ गामिनी बनी। तव उसके भापा, विपय और शैली तीनों में परिवर्तन आया। भापा अपभ्रंश से अलग हुई। विपय में धार्मिकता के अतिरिक्त भी लोक कथाएं लिखी जाने लगीं, शैली का रूप अधिक खिला। वालाववोध, वाग्विलास और वचनिका आदि शैलियों में छोटी छोटी कथाएं लिखी जाने लगीं। सवसे प्रथम तरुण प्रभसूरि का षडावश्यक वालाववोध– (भापा टीका) में लिखा गया था। १६ वीं शताब्दी में मेरुसुन्दर ने भी वालाववोध भापा टीकाओं में सैकड़ों कथाएं दी हैं। हंसाउली, सदयवत्स प्रवन्ध, विद्याविलास चौपाई आदि अनेक लोक कथाएं उक्त शताब्दी में ही लिखी गई हैं। वाग्विलास शैली में पृथ्वीचन्द चरित्र इस समय का ही ग्रंथ है। अचलदास खींचो री वचनिका, खींची नींवा गंगावत री दुपहरी, वात-वणाव, सभाशृंगार और मुहणोत नेणसी री ख्यात आदि गद्य ग्रंथों का कथा-तत्व १७ वीं शती का है। पद्य कथाओं में कवियों द्वारा लोक कथाओं को लेकर रचे गये रास, चौपाई, गीत कथाएं और अन्य लोक काव्य उल्लेखनीय हैं। गोगाजी रामदेवजी जैसे लोक देव, रूपांदे, तोळांदे जैसी भक्त सती स्त्रियां, भर्तृहरि, गोपीचंद, निहालदे, वगड़ावत, पावूजी आदि लोक काव्य मिलते हैं। व्रत कथाएं और कहावतों की कहानियां भी यहां अत्यधिक हैं। उपाख्यान और प्रवाद भी लिखे गये हैं। इस तरह से राजस्थान के प्राचीन कथाकार सैकड़ों कथा संग्रह कर गये हैं। अत: १७ वीं १८ वीं शताब्दी में वातों की वड़ी उन्नति हुई है। आगे चलकर इन लोक कथाओं के आधार पर सैकड़ों ख्याल [लोकनाट्य] रच लिये गये। रतना हमीर री वात और पन्ना वीरमदे री वात राजस्थानी कथा साहित्य की प्रथम प्रकाशित कथाएं हैं। संवत् १९५६ में पलक दरियाव री वात प्रकाशित हुई है। इन प्रकाशित पोथियों की अन्य हस्तलिखित प्रतियां यहां के संग्रहालयों में भी मिलती

हैं। कई पुस्तकालयों में तो कथाओं के सैकड़ों सचित्र गुटके मिलते हैं और एक एक गुटके में सैंकड़ों कहानियां लिखी हुई हैं। श्री सूर्य करण पारीक ने राजस्थानी बातां और श्री कन्हैयालाल सहल द्वारा लिखित लोक कथाएं, वीर गाथाएं, उपाख्यान, चौबोली नामक कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं। श्री नरोत्तमदासजी-स्वामी ने भी बातों के दो संग्रह प्रकाशित करवाये हैं। श्री विजयदान देथा, श्री अगरचंद नाहटा, भंवरलाल नाहटा, मुरलीधर व्यास, पुरुषोत्तम मेनारिया, लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, बद्रीप्रसाद साकरिया, मनोहर शर्मा, मनोहर प्रभाकर श्रीलाल मिश्र, मोहनलाल प्रोहित, नानूराम संस्कर्ता, गोविन्द अग्रवाल आदि लोक कथाओं के आधुनिक संग्रह कर्ता हैं। इन्होंने अपने बात निबंधों, बात संग्रहों के सिवाय, राजस्थानी, राजस्थान भारती, मरुभारती, वरदा, वांणी, अजन्ता, शोध पत्रिका, संयुक्त राजस्थान, परंपरा, मरुत्राणी आदि शोध पत्र-पत्रिकाओं में संपादित कर असंख्य बातें प्रकाशित करवाई हैं। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य पुस्तक में १३२ और ८०, २१२ बातों की सूची, रानी चूंडावत ने अपनी मांझल रात में ३७० बातों की सूची और परंपरा बात अंक में ३५० बातों की सूची प्रकाशित हुई है। श्री गोविन्द अग्रवाल ने मरुभारती में राजस्थानी लोक कथा-कोश नामक शीर्षक से करीब एक हजार लोक कथाएं प्रकाशित करवाने का कार्य संपूर्ण कर दिया है। श्री कन्हैयालाल सहल की राजस्थानी लोक कथाओं के अभिप्रायों पर 'नटो तो कहो मत' नाम की पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। सन् ६१ से जोधपुर के निकट बोरुन्दा गांव से लोक साहित्य के शोध एवं प्रकाशन के लिए रूपायन संस्थान का गठन किया गया है। यहां से श्री विजयदान द्वारा लिखी गई लोक कथाओं के ९ बृहत् भाग प्रकाशित हो चुके हैं। ये भाग बातां री फुलवाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। बीकानेर के राजकीय अनूप संस्कृत पुस्तकालय में बैताल पच्चीसी, सिंहासन बतीसी, दम्पति विनोद आदि पुस्तकों के राजस्थानी अनुवाद भी मिलते हैं।

[२] **द्वितीय धारा [मौखिक बात]**—यों तो बात कहने वालों की कोई जाति नहीं कहना जाने वही कहे। परन्तु रावल, मोतीसर, भाट, बड़वा, राणीमंगा, ढाढ़ी, नगारची, सरगरा, जांगड़ आदि कौमें पुराने समय से बात कहने का पेशा अपनाये हुए हैं। अपने यजमानों के यहां, ये कथायें सुनाया करते हैं। एक नहीं अनेक, छोटी नहीं बड़ी बड़ी बातें, सैंकड़ों दोहों समेत इनको जबानी याद हैं। इनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होगा, मगर बातों का वर्णन इनका इतना जबरदस्त है कि क्या कहें ? बात कहें और साथ में सामयिक दोहे भी बोलते जायं। इन दोहों के बोलने से बात का आनंद चौगुना बढ़ जाता है। प्रसंगवश गाने भी लग जाते हैं। इनके कहने में मनोरंजन, चित्ताकर्षण, चमत्कार, प्रसादगुण, अलंकृत भाषा और

नाटकीय अभिव्यक्ति आदि का बाहुल्य रहता है। छोटे छोटे वाक्य, व्यर्थ का अक्षर नहीं, चुने हुए शब्द, श्रोताओं के कलेजे में सीधे लगते हैं। इस तरह के वात कहने वाले लोगों को पहले सामाजिक रूप से अच्छा सम्मान प्रदान किया जाता था।

कुछ लोग, इन लोक कथा वार्ताओं को बुढ़िया पुराण की संज्ञा देकर उपेक्षा की नजर से देखते हैं। किन्तु यह अहंकार और अज्ञान ही है। पढ़ने की अपेक्षा बोलकर कहना ही आनन्द का मुख्य कारण होता है। लिखी तो ये विस्मरण के भय से जाती थीं। अमीर राजा-महाराजा भी इन्हें लिखवा लेते थे। मगर इन कहानियों में रस परिपाक सुनने पर ही होता है। लिखित कहानियों को सुनाने वाला अपनी अनूठी भाषण शक्ति से उसे अत्यधिक मनोरंजक बना देता है। वह कहानी कहता हुआ सर्व पात्रों का मनोहर अभिनय सा दिखाता जाता है। एक ही व्यक्ति पशु-पक्षी, देव-राक्षस, बहादुर-कायर और प्रेमी-प्रेमिका का प्रभावोत्पादक भाग अदा कर देता है। घटना का चित्र आंखों के सामने वास्तविक बन जाता है। इन लोक कहानियों को कथा व नाटक की मिश्रित अभिव्यक्ति कहना गलत नहीं होगा।

कहानी में दो ही पात्र कार्य करते हैं। एक सुनाने या कहने वाला तथा दूसरा सामने हुंकारा देने वाला। हुंकारा देने में 'हूं' ध्वनि का उपयोग किया जाता है। कहने वाला जैसे सब पात्रों का सफल नाटक करता है वैसे ही हुंकारची भी सामयिक हुंकारों से कहानी की रफ्तार को प्रोत्साहन प्रदान करता है। जैसे 'वात में हुंकारो फौज में नगारो' फौज की शोभा नगारे से होती है और वात को हुंकारा देकर सजीवता प्रदान की जाती है। कहने वाला अपने व्यक्तित्व, अनुभव और शैली के बल से वात को शर्करा के घोल से श्रोताओं के गले उतार देता है। वह कभी कभी सुनने वालों के नाम ले लेकर उनके जीवन संबंधी किसी विशेष घटना का स्मरण दिलाता जाता है। इस पर वे याद करके गद्‌गद् हो जाते हैं। बीच बीच में मधुरोक्तियों की चुटकियां कहानी को अधिक रोचक एवं रसीली बना देती हैं। इस तरह से वात के व्यक्ति 'जंग में रंग' लगाते हैं। तभी तो इस वात कला को वात सार कहा गया है।

कथक [वात कहने वाले] को वात प्रारंभ करने से पूर्व कुछ कौतुहल व आकर्षक भूमिका निभानी पड़ती है। वह अपनी वात को सीधे ढंग से शुरू न करके कुछ वर्णन चातुर्य के रास्ते से चलता है। यह भूमिका पद्यों में होती है। ये पद्य प्रायः राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषताओं के बारे में होते हैं। इनको वड़दाव भी कहते हैं। कई वात की व्याख्या के वड़दाव भी होते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है:

बात भली दिन पाधरा, पैंडै पाकी बोर।
घर भींडळ घोड़ा जणै, लाडू मारैं चोर ॥
बातां हंदा मांमला, नदियां हंदा फेर।
बहता ज वहै उतावळा, घरमर घालै घेर ॥
बात बात सब अेक है, बात बात में फेर।
वैं ही लोह की कुस घड़ी, वैंकी ही समसेर ॥
ज्यूं केले के पात में, पात पात में पात।
ज्यूं चातर री बात में बात बात में बात ॥
बात बात सब अेक है, बात बात में वैण।
वौ ही काजळ ठीकरी, वौ ही काजळ नैण ॥
बातड़ल्यां घर ऊजड़ै, चूल्हे दाळद होय।
जे कोई जांणै बातड़ी, बातड़ल्यां घर होय ॥
बात रवै दिन बीतज्या, समय पलटज्या काळ।
साजन सिळौ न खाइये, जो सोनैं री वाळ ॥
सोरठियौ दूहौ भलौ, भल मरवण री बात।
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात ॥
गाहा गूढ़ा गीत गुण, उक्ति कथा उलोल।
चतुर तणां चित रंजवण, कहिये कवि कलोल ॥

कतिपय बातों के छोगे—

१. किसी हुंकारा बिन बात, किसौ मित विहूणौ साथ
किसी चांद विहूणी रात, किसौ कड़ूंवा बिन भात
किसौ प्रेम विहूणौ मांन; किसी गायक विहूणी जांन
किसी बादळ बिन बीज, किसी पौंच बिन खीभ
किसौ बळ विहूणौ बांण, किसौ तरवर बिन पांन
किसी त्रिया बिन प्रीत, किसौ कंठ विहूणौ गीत
किसौ पांख विहूणौ पंछी, किसी जळ विहूणी मंछी
किसी कपट विहूणी दासी, किसी सगा विहूणी हांसी
किसौ मित विहूणौ साथ, किसी हुंकारा बिन बात[१]

२. बात सांची भली, पोथी बांची भली
देह साजी भली, बहू लाजी भली
लूवां बाजी भली, नौबत गाजी भली
गाय दूजी भली; गवर पूजी भली
जोबन जोड़ी भली, कच्छी घोड़ी भली
मौत मौड़ी भली, मंसा थोड़ी भली
अंब केरी भली, माळा फेरी भली

१ बातां री फुलवाड़ी भाग ९, विजयदान देथा

कांठ्ळ काळी भली, खेत पाळी भली
चोक नाठो भली, धीणे छाळी भली
घाव पाटी भली, भाख फाटी भली
विरखा वूठी भली, नांगे मूठी भली
भाई तूठी भली, विपता खूटी भली
मेथी फाकी भली, साख पाकी भली
पंथ गाडी भली, भेंस पाडी भली
प्रीत गाढ़ी भली, भींत जाडी भली
बात सांची भली, पोथी वांची भली [1]

केई नर सोवें ; केई नर जागें
जागतड़ां री पागड़ी ढोल्यां रे पागें
सूतां री पागड़ी चोर ले भागें
बात कहतां वार लागें, हुंकारे बात मीठी लागें
बात में हुंकारो, फौज में नगारो
सार बाबा सार, पालमा लगार
दूबला सा घोड़ा, माता असवार
जीयो बात रा कहणिया, जीयो हुंकारा देवणिया
बात रा चालणा, संजोग रा पीवणा

फिर कहते हैं — रामजी भला दिन दे तो धारा नगरी में एक कोड़ी धज सेठ वसै ......। इस आकर्षक नाटकीय कथा आरंभ से सभी सुनने वाले उसकी तरफ बड़े आकर्षित हो जाते हैं और आगे की कहानी सुनने के लिए उत्साहित होकर इन्तजार करने लगते हैं। उच्च कलाकार [कथक] प्राचीन कहानियों को सुनाते समय कथा के साथ कुछ गप्पें भी जोड़ देता है। जिनसे हास्य का रंग चढ़ जाता है और श्रोताओं के पेट में हंसते हंसते वल पड़ जाते हैं। इन गप्पों से पहले भी गप्पपूर्ण विज्ञापन [कथारंभ] होता है —

सार रा चना मसरके फूटे
भेंस्या री कमर मुक्की सूं टूटे
कीड़ी री धक्को नें माछर री लात
भांखड़ी रो कांटो साढ़ी सोळे हाथ
फब जावें तो दच्चें, नीं तो बच्चें परभात

इस तरह से राजस्थानी लोक कथाओं के कुछ कहावती - विशिष्ट शब्द हैं, जिनके अर्थ प्रसंग और गर्भत्व बड़े गहरे होते हैं। किन्तु वे शब्द लोक प्रचलित हैं। इस कारण कहानी कहने वाला उन्हें मौके-मौके काम में लेकर सदैव कहानी की सुन्दरता को बढ़ाता रहता है। ये शब्द कहानियों के विशेषण एवं उपमान

---

१ बातां री फुलवाड़ी भाग ६ विजयदान देथा

हैं। जो कहानी रूपी हार के नगीने स्वरूप शोभित होते हैं। उन कहावती बोल चाल की विशेष व्यंजनाओं के कुछ नमूने में नीचे देता हूं :

अचार री घड़ौ। (रोचक बातें) काठ री हांडी (धोखे बाजी) खांडे री धार (मुश्किल बात) कांन रौ कच्चौ (शीघ्र बात मानने वाला) कैर रौ खूंटौ (मजबूत मनुष्य) काचर रौ बीज (झगड़ालू मनुष्य) गादड़ बभकी (झूठी डरावनी) ठग लकड़ी (झूठ कपट) भेडा चाल (देखा देखी) तिरिया चिलत (स्त्री चरित्र) केदार कांकण (ढोंग) बूरोड़ौ मतीरौ (गुणवान व्यक्ति) जागती जोत (चेतना) बांचोड़ौ कागज (व्यर्थ वस्तु) फूटी ढोल (डफोल संख) उटाऊ चूल्हौ (बेघर बार) काचा चावळ (कच्ची बात) पाकौ पांन (वृद्ध मनुष्य) हवा को फेर (समय की बात) छातीपरली बोर (आलसी) गाजर वाळी पूंगी (दोनों ओर का फायदा) अखत रौ बीज (कुछ नहीं) बीज को बाजरौ (शेष में सन्तोष) घेण रौ दांणौ (कृपण धन) मेवै रौ रूंख (सेठ) वन बन रौ काठ (जगह जगह के व्यक्ति) ठाडे रौ डोकौ (बड़े का भय) फिरांस री बाड़ (हल्की वस्तु) नाज को कीड़ौ (ज्यादा खाने वाला) बूर रा लाडू (निस्सार चीज) द्रोपदी वाळौ चीर (अन्तहीन वस्तु) रळै जी हाळौ टोळौ (भोला परिवार) पोपां बाई री राज (अनियमित कार्य) हमीर हठ (पक्का प्रण) बूड़े जी हाळी चाकरी (बिना लेन-देन का कार्य) लाखांळी कामां (स्वर्ण अवसर) कुंभकर्ण वाळी नींद (अधिक आलस्य) बांणियाळी बुहारी (संगठन) ढेढ़णी हाळौ जोबन (अल्हड़ता) बळ्यैघर रौ चूड़ौ (मुख्य धन की हानि) गऊ रा दांत (सरल व्यक्ति) पुटियाळा पग (अनीति करना) थोरी आळौ थूक (जबरन् लड़ाई लेना) बाणियाळी मूंछ (इज्जत) मूंछ वाळौ चावळ (झूठा अभिमान) थूक उछाळना (थोथी बातें) कुत्तै हाळौ नारेळ (बेकार वस्तु) बीरबल बनना (चतुर होना) वर्ष गमांना (उम्र के अनुसार अनुभव प्राप्त न करना) मिनियां री छी (चिड़ चिड़ा मनुष्य) जाट वाळी गिलगिली (मूर्खता पूर्ण प्यार) काजी वाळी कुत्ती या बिना मोरी री ऊंट (खूब फिरने वाला व्यक्ति) कुंजड़ी रौ गल्लौ (बिना हिसाब किताब का व्यापार) पीसै रौ पूत (कंजूस) सात मांमा को भांणजौ (बिना पूछ) कांणती रौ काजळ (छोटा काम) पगां नीचली लाव (बीती बात) धावळिया री कारी (अयोग्य बात का भुलावा) हाथी रा दांत (कहना कुछ, करना कुछ) बानरां रौ न्याव (तीसरे का फायदा) छावड़ होजाना (फूला हुआ मनुष्य) कुते हाळी हांडी (नमक हराम) सुसियै रौ चोथौ पग (नामोनिशान न होना) मोरड़ी हाळौ हार (वस्तु का अदृश्य होना) सेह री सूळो (सदैव का झगड़ा) आंधाळी बटवड़ (माल हाथ लगना) घर जाणी रा खेल (वैर विरोध) जीभ रौ न्याव (अपनी बात सही मानना) काळजै री कोर (प्रिय) बेइमान रौ हाड (बदमाश व्यक्ति) चांदी री जूत (राजकीय जुर्माना) रोळै रौ रूप (प्रत्येक काम में आगे रहने वाला) शीतला माई रौ सेर (मूर्ख, गधा) हाथ रौ उत्तर (कुछ देना) ढोल में पोल (बड़ों में कमी) अल्ला री मां रौ चाळीसौ (अस्त व्यस्त काम) बीस नूंवा री कमाई (मेहनत का धन) अकूरड़ी रौ धन (लड़की) बाळू री भीत (कमजोर कार्य) रावळे रौ तेल (प्रथा रक्षा)

लोक कथा-भूषण के ऐसे असंख्य शब्द-नग राजस्थानी के कथा साहित्य में मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा और दीनदयाल ओझा ने ऐसे अनेक शब्द लिखे हैं। कभी कभी इन कहावती शब्दों के पीछे कहानियां भी होती हैं, जो बातों के बीच में उदाहरण स्वरूप सुनाई जाती हैं। नारी के रूप वर्णन में भी ऐसे

अनेक विशिष्ट शब्द मिलते हैं। जो नायिका की कोमलता, मंजुलता, की प्रशंसा पूर्ण परिस्थितियों द्वारा श्रोताओं को मुग्ध कर देते हैं। इनमें विशेषणों की विशद छटा देखने योग्य होती है।

जैसे – पहरी ओढ़ी नार, रूप री रूंख, प्रेम री प्यालो, आभै री बीज, सांवण री तीज, गंगा सूं विमळ, फूला सूं फोरी, पाव तीन अेक री, केळे री सी कांमड़ी, नारंगी री सी फांक, पूंगळ री पदमणी, अमर फळ री गाछ, हांम-कांम लोचनी, विलायत री भाली, सती री नारेळ, कुळ गांव री होळी, जयपुर री दीवाळी, बूवना री बहिन, जल्लै री झाळी, पटवयोड़ी नागण, बावनो चंनण, रेसम री गची, राजहंस री बची, हीरां री लच्छो, मुगल री मींमची, मोत्यां री गजरो, थाकी विलखी हंस, गड़ां री कुटेड़ो काग, ठरड़े री मोडियांण, आकास रो परेवो, भाटियां रो जाखेड़ो, गुजराती आंमे री लूंम, कूंज रो बचियो, मोती रो सो दांणो, हंस री जोड़ी, गूंगे री घोड़ी, चांद रो सो टुकड़ो, कीड़ी री सी टांग, नाग री मणी, उत्तर री वायरो बाजे तो दिखण नै लुळ जावै, दिखण रो वायरो बाजे तो उत्तर नै लुळ जावै, चोवैया चालै तो टूक टूक होय जावै। चावळ रो चोथो हिस्सो खावतां पेट दुखनै मर जावै। पाळा रा परतला में कोस पचास जावै। अमलदार रै धक्कै चढ़ जावै तो मावै में गिट जावै।

हल्केपन की हद हो गई। पति परदेश जा रहा है। पत्नी वियोग सहन नहीं कर सकती। इस बात को राजस्थानी बात कहने वाले लोग बड़े विनोद-पूर्ण ढंग से पेश करते हैं। देखें तो सही–

थां विना घड़ी अेक नहीं आवड़ै। थांनै घड़ी अेक नीं देखूं तो दूध में डूब मरजाऊं। सीरो साबू खाय मरजाऊं। के जाजम में गिड़क नै मरजाऊं। पूणी री फांसी खा परीर मरजाऊं। थां विना घड़ी अेक नीं आवड़ै।

साजन चलतां हे सखी, लोयण जळ भरियांह।
जाणक टूट्यै हार सूं, मुकता बिखरियांह॥

यहां की बातों में इस तरह के वर्णनों की भारी खूबियां पाई जाती हैं। बात के आरंभ की तरह उसके बीच में भी अलंकृत शैली में सुन्दर वर्णन होता है। नगर-संपन्नता, दुर्गम-दुर्गमता, युद्ध-भयंकरता, हाथी घोड़ों के लक्षण, सूर रणकौशल, नारी सौन्दर्य, नायिका की शृंगारिक सामग्री, विरह भावनाएं और मिलन घड़ियों का इतना सरस एवं कारुणिक वर्णन होता है कि सुनने वालों की आंखों के सामने एक सजीव चित्र सा छा जाता है। इससे अपेक्षित वातावरण की सृष्टि होती है। जिससे हमारी भावनाओं का तादात्म्य सहज ही उस समय के साथ हो जाता है। इस तरह के वर्णन बाहुल्य से कहानी की प्रगति शिथिल हो सकती है। मगर उसकी सजीवता श्रोताओं के लिये आनन्द का कारण बनी रहती है। इन वर्णनों में उपमाओं, दृष्टान्तों, उत्प्रेक्षाओं और अतिशयोक्तियों का प्रयोग होता है। उपमानों में रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त मौलिक उपमान

भी प्रयुक्त होते हैं। जिनमें स्थानीय विशिष्टताओं की खूबी (Localcolour) अनुपम एवं अभिनव प्रकृति के साथ प्रस्तुत होती है। वार्तालापों में गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग होता है। कई कथाएं केवल पद्य में होती हैं। यह वर्णन प्रधान और भावना प्रधान दोनों प्रकार की मिलती है। इनमें दोहे, सोरठे, गाथा, सवैये, चंद्रायण, गीतादि छन्द होते हैं। और काव्य सौष्ठव, वयण सगाई, भाषा की प्रौढ़ता तथा सरलोक्तियां देश कालीन सुन्दर वर्णन के साथ आती हैं। किसी बात के कुछ पद खंड, गद्य कथाओं में भी दिखाई देते हैं। गद्य-पद्य की यह मिलावट एक दूसरे की पूरक है।

मध्यकालीन राजस्थान का सामाजिक चित्रण लोक कथाओं में अत्यन्त समृद्धि के साथ अंकित है। यहां की जातीय व्यवस्था, शासन प्रणाली, जागीर प्रथा, नैतिक विचार, भाग्य वादिता, कला सृजन, साहित्यिक वातावरण, सामयिक राग रंग, रूढ़ि निर्वाह और मानव सिद्धान्तों के विविध चित्र इन लोक कथाओं के जरिये हमें बहुत हर्ष के साथ मिलते हैं।

पुराने जमाने में सभी जातियों के लोग अफीम खाया करते थे। उसको, नशा या रंग लाने लिए तथा थकान मिटाने के लिए अमीर से लेकर गरीब तक काम में लाते थे। कहीं कहीं अभी भी ब्राह्मण, बनिये, राजपूत, जाट, चमार और गूजरों में वार त्यौहार, मेहमान आगमन, पर्व पूजन, जन्म विवाह के और शोक विसर्जन मौके पर अमल की मनुहार या अमल गालने की रीति का सफल प्रयत्न होता है। ग्रामीण लोग इस प्रथा को मांगलिक मानते हैं। मेवाड़ और हाड़ौती प्रदेशों में तो अमल उत्पादन के केन्द्र भी हैं। यहां शुभ अवसरों और लड़ाई झगड़ों में जाते समय भी लोग कसूमा गाल (अमल बांटना) करके विदा होते हैं। "आफू बांटण जोग पंथ सूरां हंदा कांम" किसी भी लोक कथा के बीच अफीम खाने की घटना आने पर अफीम का रंग दिया जाता है। अफीम खाने वालों की कहानी आरंभ करने से प्रथम ऐसे रंग या बड़दाव दिये जाते हैं। इसके अमल, आफू, कसूंमा, अफीम, तिजारौ, गाळवौ आदि कई नाम हैं। इसके रंग देने की रीति बड़ी अनूठी है। उदाहरण स्वरूप थोड़े रंग के दोहे देता हूं, जो यहां डोढ़ी मनुहारों में चलते हैं —

रंग रांमा, रंग लिछमणा, रंग दसरथ कवरांह।
लंका लूंटी सोवणी, आलीजां भंवरांह॥
कीध खयंकर लंकरौ, जीत भयंकर जंग।
अमल लयंकर आपनैं, रघुवर कंकर रंग।
वजर कछोटौ हद बण्यौ, वजरगोर वजरंग।
भुज रावण रा भांजिया, रंग हड़मंता रंग॥

साज व्यान संकर जवर, पारबती रा पीव ।
प्रमलां में देवां इधक, थांनै रंग सदीव ।।
रंग काळू री काळका, रंग सेड़ै री माय ।
भगत कटोरै ले खड़ा, अमल करावो दाय ।
चौमासो सखरो लगै, हरिया रूंख हमेस ।
मधुर मतीरा मन बसै रंग मुरधरा देस ।।
मरक खरां, भेजड़ धरां काचर फळियां देस ।
धूम धुमेलां बाळकां, रंग भंडाण विसेस ।।
मूखा आगर जळ विखां, लूखा लूण बीनां ।
लूणकरणसर लाडलां, रंग थांनै दीनां ।।
कांमां कंवर सुलच्छणा, गिरधारी गोपाळ ।
दुरगादतसा वेदिया, रंग काळू चोपाळ ।।
अमल है उणमादियो, सैणां हुंदो सैण ।
जा विन घड़ी न आळगै वींकर लागै नैण ।।
गढ़ ढाहण गोळा गळण, हाथां देण हमल्ल ।
मतवाळी घण माणतां, आज्यो सैण अमल्ल ।।
परभातै पोता फिरै, भूरां डळां अमल्ल ।
भड़ दोनूं भेळा हुया, आसो नै रिड़मल्ल ।

रंग की विशिष्ट रंगिनियां —

रंग बीकांण गंग महाराजा नै, रंग सहर जांरै कोट दरवाजा नै
रंग मंडोवर री बाड़ी नै, रंग पंचाळी री साड़ी नै
रंग जमीं रा जुझारां नै, रंग पदमणियां रै प्यारां नै
रंग कोटड़ां रा घोड़ां नै, रंग निमाज रा किवाड़ां नै
रंग मेड़ता रा उमरावां नै, रंग जसवंत री रांणी नै
रंग लिछमण जती नै, रंग ध्रू री भगती नै
घणा रंग वसपत नै, रंग सीता रै सत्त नै
रंग सोनगरां री आंन नै, रंग सायजादी री जवांन नै
रंग कुसळ सिंग रा दुपटा नै, रंग सेर सिंग रा लपेटा नै
रंग हमीर रा हठ नै, रंग महाराजा रा इष्ट नै ; घणा घणां रंग है ।

वीर बहादुरों और प्रेमियों के लिए बने हुए कुछ रंग —

रंगमधुमालति नेह जिके मन जांण निभाया
रंग वीरमदे रजपूत जिके विणियासी (मन) माया
रंग खिवाला राव, आभळ घर बैठां आई
रंग ढोला रजपूत पदमणी सारू पाई
पदमपुत्री रंग छै पन्ना, लोचन वीरम मो भाविया
लाखां फौजां मोड़ नै आप घरां ले आविया

विशेष स्त्री पुरुषों के लिए शिक्षा संस्मरणात्मक रंग —

जे कोई दातारी करौ तौ जगदेव कीधी जूं करीज्यौ
कोई घोड़ा दौड़ाग्रौ तौ वगड़ावतां दौड़ाया जूं दौड़ावज्यौ
जे कोई दारू पीग्रौ तौ बाघै कोटड़ियै पीयौ जूं पीवज्यौ
जे कोई लुगाई ग्रापरै घर धणी सूं रूसणौ करै तौ–
उमादे भटियांणी कियौ जूं करज्यौ
जे कोई लुगाई ग्राप परख वींद परणै तौ–
पातसा री साहजादी परणी जूं परणीजज्यौ
जे कोई लुगाई परणिया सूं मन फाड़ौ करै तौ पन्ना बिरमदे कहियौ जूं कैदिज्यौ

कोई अमलदार यात्रा-मुसाफिरी के समय अमल के बिना शक्ति हीन होकर जंगल में गिर पड़ता है। रास्ते चलता चारण या कोई अन्य कवि उसकी मूक दीनावस्था देखकर कई वस्तुओं के द्वारा उसकी इच्छा बीमारी को जानना चाहता है, कि वह किस चीज का ग्राहक है।

मसळ मसालै माळवी, खेमां खेता जट्ट
चमड़ा पीवै चौधरी, सुवासां गहगट्ट

अमल दार सिर हिला देता है — 'नहीं राज' नहीं राज !

हाल पुरांणी हळ नवा, वैलज माता मट्ट
छाकां आवै चूरमौ, जद माचै गहगट्ट

अफीमची मरी हुई आवाज में सिर हिलाता हुआ उत्तर देता है— 'नहीं राज ! नहीं राज' !

फिर पूछता है —

भैंसड़ियां भंवराळियां, सींगांज ग्रवळां वट्ट
सांवण ग्रावै रिड़कती, जद माचै गहगट्ट

अमली अमल की भेर [नींद] में कहता है — 'नहीं राज ! नहीं राज'

कवि फिर पूछता है —

घी गावौ गुळ माळवी, गेहूं ज राता चट्ट
दळ मसळ मेदौ करां, जद माचै गहगट्ट

फिर भी — 'नहीं राज ! नहीं राज' !

कवि पूछता है —

ऊंची मेड़ी सज रही, दिवलौ जळै सुघट्ट
ढोलौ मरवण पोढ़िया, भल माचै गहगट्ट

तो भी 'नहीं राज ! नहीं राज' !

फिर पूछता है —

बिंदी लाल सुहाग री, टीकै गुण घूंघट्ट
साजन रांचै सेज में, अमल आंग गहगट्ट

अमलदार तुरत आंखें खोल लेता है;
इतने में तो कवि फिर कह देता है —

तीखा पांन तिजारियौ, डोडी घणी सुघट्ट
घाल कटोरै घोळियां, भल माचै गहगट्ट

तिजारे का नाम सुनते ही तो अमलदार के कान खड़े हो जाते हैं। वह आंख और नाक से पानी टपकाता हुआ कह उठता है – 'वही राज ! वही राज' कवि अमल देकर उसे चलता करता है।

अमल का नशा बहादुरी की शान है। प्राचीन योद्धा इसी के बल पर जूझते थे। लड़ाई में जाते समय अमल गाला करते थे। इस में एक और गुण बताते हैं कि यह मनुहार के बिना उगता ही नहीं। अकेला आदमी कहीं अमल लेता है, तब पेड़ों आदि के सामने 'लोसा लोसा' आदि कहता हुआ अमल पान करता है। इसके प्रतिदिन खाने की मात्रा को मावा करना कहते हैं। लोक कहानियों में प्रायः अमल का प्रसंग आ ही जाता है। जहां मस्त सरदारों को रंग दिये जाते हैं, वहां ऊंघने वाले गरीब नशेबाज व्यक्तियों की दुर्गुणीय अवस्था का भी जिक्र आता है।

ले ले करतां लागियौ, पहलै भौ री पाप,
गेलै बगता गुड़ पड़या; अेळा अमली आप।
तीस बरस कुस्ती करी, पड़ गुड़ उथल पुथल्ल,
थें लीन्यौ गोडा तळै, अहियौ मींत अमल्ल।
दारू पर दावौ पड़ौ, है तन धन री हांण,
परतख नर देखौ नजर, नफौ नहीं नुकसांण।
भांग मांगसी भूंगड़ा, गांजौ सुलफौ घी,
दारू मांगै खूंसड़ा, खुसी आवै तौ पी।

राजस्थान में सर्दी की रातों में गांव की धूणियों पर गांव के बड़े - बूढ़े नौजवान युवक और बाल बच्चे आग तापने हेतु इकट्ठे हो जाते हैं। वहां गांव के सम्माननीय वृद्ध - पुरुष खाट पर बैठ जाते हैं और बात कहने वाला भी पीढ़े या पाटे पर बैठ कर बात कहना आरंभ करता है। बात क्या चलती है, सारी रात ही समाप्त हो जाती है। सुनने वाले सुनते ही रहते हैं। सोने के लिए जी ही नहीं करता। बात कोई अकेला व्यक्ति कहता है, मगर लगता ऐसा है मानो सिनेमा देख रहे हैं। बड़ी लुभावनी और मन भावनी। वही (कत्थक) बूढ़ा, वही जवान और वही एक सैनिक की तरह तन कर विषयानुसार तलवार खींचने लगता है। वह एक बात को अनेक तस्वीरों से सजाता हुआ, कहीं घोड़ों की

हिनहिनाहट , कहीं हाथियों की भगदड़ , कहीं रुंड-मुंड और कहीं अंतड़ियों का दृश्य उपस्थित कर देता है । ऐसे समय में श्रोतागण भी अपना अपना कर्तव्य सोचने लग जाते हैं । लेकिन वह तो कलाकार ही ठहरा । क्षण भर रुलाकर पुनः हंसा देता है । इसके बाद भरपूर क्रोध से दांत कटकटाकर वीरता का रंग जमा देता है । एक बार तो कायर मनुष्य का हाथ भी तलवार मूठ की तरफ मुड़ जाता है । ऐसी प्रभावोत्पादक, मौखिक एवं लिखित लोक कथाएं राजस्थानी भाषा में असंख्य अवसरों पर कहने सुनने के काम में आती रहती हैं । बच्चों को , किसानों को और व्रत उपवास करने वाली औरतों को भी कहानियां सुन - वाई जाती हैं । इनमें व्रत - उपवास , देवी - देवता , भूत - प्रेत , वार - त्यौहार, सूअर - नाहरों के झगड़ों तथा शिकारों का फल रहता है । यहां केवल शूरवीर एवं सतियों के पौरुष पराक्रम की कहानियां ही नहीं कही जातीं , बल्कि चोरों, डाकुओं और ठगों की चतुराई आदि की लोक कहानियां भी बड़ी रोचकता के साथ कही जाती हैं । खापरिया चोर की कहानी तो सुनते ही बनती है । इनके अतिरिक्त सेठ - साहूकारों की , डाकण - योगणियों की , कतारियों - बनजारों की, पशु परेवा और इन्द्र की परियों की भी कई बातें चलती हैं । धर्म नीति और सद्गुण सदाचारों की बातें तो बड़ी मनोरंजकता के साथ सुनाई जाती हैं । यह प्रदेश वीरों का रणक्षेत्र होने के कारण यहां वीर और शृंगार रस प्रधान की भारी लोक कथाएं मिलती हैं । राजस्थान में शृंगार और प्रेम की वातों में ढोला - मरवण , जलाल बूबना , मूमल महेन्द्रा , ऊजली जेठवा , सेंणी - वीजानंद और आभल-खींवरा आदि की अनेक बातें प्रसिद्ध हैं । मैं अन्तिम बात के नायक-नायिका (आभल खींवरा) मिलन का थोड़ा लच्छेदार वर्णन नीचे लिख रहा हूं , सो देखिये—

आभू रै भड़ै व्हेतौ तोई खींवजी काठिया रा गांवां में जाय निकळियौ । आभल काठयांणी रा गांव में जाय पूगियौ । गांव रै बारै बाग में जाय आंबा री डाळ रै घोड़ौ बांधियौ । थकेलौ उतारबा आप लागियौ । घोड़ी रौ घासियौ बिछाय नै आडौ हुय गयौ । पलक झपगी । आभल आपरी सात बीसी साथणियां लारै हिंडवा नै बाग आई थकी । पनड़ी री खसबोई सूं पवन भररियौ । छणमण - छणमण घूघरां सूं बाग गूंजरियौ । गीत गाती । आपसरी में हंसती खेलती साथ-णियां फूलड़ा तोड़ती आय री.......... । हंसतां फूल झड़ै , चलतां रिमझोलां री झमक भळै । खींवजी तौ तड़ाछ खायनै अस्यौ पड़ियौ जांणै सींतग रौ झोलौ आयौ । आभल री नजर खींवजी पै पड़ी । चौ नजर व्हिया । जोत सूं जोत मिळी । खींवजी री निजर कांई मिळी आभल रै आर पार निकळी । जांणै अमरसिंघ री कटारी वैयगी , पदमा री तरवार चलगी , के रामसिंघ रौ सैलड़ौ

चुभगियो। काळजो टूक टूक हुय गियो। दोई घायल ज्यूं घूमवा लाग गिया। मार तो नैणां री जिरो पाटी न पीड़।

> तलवारां अंग तरसिया भालो अंग भिड़ियोह,
> चाळागारो खींवजी खाजा ज्यूं खिरियोह।
> मनड़े री मन मांय, ख्यांत करै मिळिया नहीं,
> मिल्या मसाणां मांय, खीरां मायै खींवजी।

किसी प्रेमी-प्रेमिका की मिलन रात्रि का सम्वादात्मक वर्णन भी देखिये। रात्रि का चतुर्थ प्रहर व्यतीत हुआ जा रहा है, मगर प्रेमिका प्रेमी को छोड़ना नहीं चाहती है।

प्रेमी कहता है – परभात हुवौ, मंदर झालर घंटा बाजै।

प्रेमिका उत्तर देती है – वालम, परभात नहीं, वधाई बाजै छै। अऊत घर पुत्र जायो।

प्रेमी–प्यारी परभात हुवौ, मुरगी बोल रही छै।

प्रेमिका–कुकड़ा मिलण नहीं छै।

प्रेमी–प्यारी परभात हुवौ, चिड़ियां बोलै छै।

प्रेमिका–प्रियतम, परभात नहीं, आळा में सरप डोलै छै।

प्रेमी–परभात हुवौ, चकई चुपकी रही छै।

प्रेमिका–वालम, बोल-बोल थाकी भई छै।

प्रेमी–दीपक की ज्योति मंदी भई छै।

प्रेमिका–तेल को पूर नहीं छै।

प्रेमी–सहर को लोक जाग्यो छै।

प्रेमिका–कोइयक चोर सहर में लाग्यो छै।

राजस्थान में इन शृंगारिक लोक कहानियों के वाहनों [सवारियों] ने भी बड़े चमत्कार दिखलाये हैं। इनमें ऊंट और घोड़ों की वर्णन विशिष्टता, देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर है। चेतक, चीता, बाज-बहादुर जैसे घोड़ों और कालवी, पीळी जैसी घोड़ियों के मरसिये और मूर्तियां बनी हुई हैं।[1] मूमल महेन्द्रा की कहानी में, महेन्द्रा मूमल से मिलने लुद्रवा जाना चाहता है। वह अपने राईके [ऊंटों के ग्वाले] से बढ़िया ऊंट मांगता है। राईका अपने चीखल नाम के ऊंट की विशेपता बताता है– किरमरिया कांनां री, झावरी पूंछ री, आरसी ईंड री, घोटवीं नळी री। नाना करतो नागौर जावै, जय जय करतो जयपुर पुगावै, घड़ी अेक मोरी ढीली छोड़ी जावै तो दिल्ली री खबर पलक में लेतो आवै। **घोड़ों का गुण वर्णन—** पवन का परवांह, गुलाब की मूठ, सबराज को गोटको

---

१ जे जोरो चढ़ जावतो, पीळी हंदी पीठ, वैरियां हाथ बतावतो, नगर बसातो नीठ।

तारै की टूट, आतस कौ भभकौ, चक्री की चाल, चपला को चमकौ, सींचांणै की झड़प, हींडै की लूंब, खगराज को वच।

मूंघै मोल मंगाविया, घोड़ा इसड़ै घाट।
पांखी गिगनां भूंवता, जै पल कोसां वाट।

राजस्थानी बातों के कई रूप — प्राचीन साहित्यकारों में भामह और दंडी ने भी कथा और आख्यायिका का उल्लेख किया है। आनंद वर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेद बताये हैं। अभिनव गुप्त नें परी कथा में वर्णन वैचित्र्य युक्त अनेक वृतान्तों का समावेश आवश्यक माना है। हेमचंद्र ने सकल कथा को चरित का नाम दिया है। हरिभद्राचार्य ने कथाओं को अर्थ कथा, काम कथा, धर्म कथा और संकीर्ण कथा नाम के चार वर्गों में बांटा है। मगर ये वर्ग सिर्फ साहित्य कहानियों के हैं। लोक कहानियों के नहीं। लोक कहानियों का वर्गीकरण तो उपयोग, अवसर और अभिप्राय की दृष्टि से किया जा सकता है। धार्मिक अभिप्राय से जो कथा कही सुनी जाती है, वह धार्मिक कथा कही जाती है। जैसे-सतनारायण की पौराणिक व्रत के साथ पौरोहित द्वारा कही जाने वाली कथा को धार्मिक कथा कहा जाता है। जैसे गणेश कथा—इसमें शिव पार्वती को कथा, पार्वती का एकान्त सेवन, गणेश जन्म, मेल के पुतले में प्राण संचार, द्वारपाल बनना, शिव से युद्ध करना, सिर कटवाना, पार्वती का विलाप, हाथी का सिर चढ़ा कर जिलाना आदि बातें धार्मिक गाथा के लक्षणों से युक्त है और लोक वार्ता के तत्व भी मौजूद हैं।

राजस्थान में इसके दूसरे ऐतिहासिक रूप को वीर गाथा कहा जाता है। इसमें चारण भाटों द्वारा बने काव्य पाठ भी होते हैं। डाक्टर कन्हैयालाल सहल ने बहुत सी वीर गाथाएं लिखी हैं। जैसे—वीर अणंत राय, राव लूनकरण, महाराणी हाडी और वीरवर जयमल आदि की। व्रत कथाएं धार्मिक कथाओं के साथ गिनी जायेंगी। बीकानेर के श्री मोहनलाल पुरोहित ने राजस्थानी व्रत कथाएं नामक पुस्तक, संग्रह की है। इसमें एकादशी, चोथमाता, रोहणी, होली की कथाएं, पुरानी हस्तलिखित प्रतियों से लिखी हैं और सट बिनायक, तुलसी व्रत कथा और सातों वारों की राजस्थानी कथाएं हिन्दी में लिखी हैं। श्री चंपादेवी राजगढ़िया [कलकत्ता] की पुस्तक बारह महीनों का त्यौहार और उदयवीर शर्मा की राजस्थानी व्रत कथाएं वरदा में प्रकाशित लेखमाला दृष्टव्य हैं। श्री शर्मा ने चानाछठ [चन्द्र षष्ठी] बच्छ बारस [वत्स द्वादशी] दूबड़ी सात्यूं [दूरबा सप्तमी] बावन द्वादसी, गाज का व्रत आदि अनेक कथाएं लिखी हैं। इन्होंने पंचभीखे [भीष्म पंचक] की कहानी भी लिखी है।

जैसा कि हमने पहले अध्याय में लिखा है – प्रचार के ढंग से इन लोक

कथाओं के दो भेद किये जा सकते हैं। महिला समाज में प्रचलित और पुरुष समाज में चलने वाली। महिला समाज में प्रचलित कहानियों के भी दो भेद किये जा सकते हैं – सुनने वाली लोक कथाएं और सुनाने वाली लोक कथाएं! इनमें प्रथम व्रत कथाएं आती हैं और दूसरे में बच्चों की कहानियां होती हैं। पुरुष समाज की कहानियों में मनोरंजन, उपदेश, घटना वर्णन और वाक-चातुर्य आदि कई अभिप्रायों को लेकर लोक-कहानियां चलती हैं। अत: राजस्थानी लोक कथाओं का निम्न ढंग से विश्लेषण कर सकते हैं। यहां मनोरंजन, उपदेश, व्रत वर्णन महात्म्य और कहावतों आदि प्रधानताओं वाली कथाएं चलती हैं। उपदेश की दृष्टि से भी मनोरंजन, उपदेश, धार्मिक तत्वों की व्याख्या और व्रत महात्म्य की कहानियां मुख्य हैं। श्री अगरचंद नाहटा कथाओं के प्रचार और तत्संबंधी साहित्य निर्माण के तीन प्रयोजन बताते है – १. मनोरंजन २. बुद्धि वृद्धि और शिक्षा तथा ३. धार्मिक प्रेरणा। पंडित कृष्णानंद गुप्त ने आदिम मानव की धार्मिक और भीति भावना में विश्वास, आस्था, प्रकृति की बहुलता देखकर लोक कहानी के धार्मिक और मनोरंजन दो रूप और निम्नलिखित तीन भेद किये है।

क. धार्मिक तत्वों से युक्त कहानियां — जिनमें व्रत या महात्म्य कथा आयेगी। ख. मनोरंजनात्मक तत्वों से युक्त और ग. उपदेशात्मक तत्व मूलक। डा० शंकरलाल यादव ने अपने शोध ग्रंथ (हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य) में लोक कहानियों को बारह वर्गों में बांटा है। राजस्थानी शोध संस्थान (जोधपुर) वालों ने परंपरा के बातों संबंधी विशेषांक के लिए अपने ढंग से उनका वर्गीकरण करके श्री अगरचंद नाहटा के पास भेजा था। ऐतिहासिक, परंपराबद्ध, सामाजिक, आलौकिक, परियों और देवी देवताओं संबंधी, पौराणिक, प्रकृति संबंधी, पशु पक्षी और वनस्पति, प्रेम कथाएं, उपदेशात्मक, कहावती कथाएं, पारिवारिक कथाएं, घटना प्रधान तिलस्मी जासूसी, बच्चों की कथाएं, उत्सव और त्योहार, व्रत कथाएं, पशु चारण कथाएं, रोग निवारण के लिए बात, संस्कार कथाएं, हास्यात्मक, खेल संबंधी, नीति विषयक, जातियों पर आधारित–नाई, जाट, चमार की कथाएं, हाजिर जबाबी, मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक, कुरीति निवारण, भूत प्रेत की कहानियां, कलाकारों की कहानियां, साम्राज्यवाद विरोधी कथाएं, बनजारों की कथाएं और भौगोलिक। मरुवाणी के बात अंक में संपादक ने राजस्थानी परंपरित कहानियों में आने वाले कई वर्णन लिखे हैं। ऋतु वर्णन, नायिका वर्णन, भोज वर्णन, शिकार वर्णन आदि कई वर्णनों की परंपरा बतलाई है। संयुक्त राजस्थान में श्री रावत सारस्वत ने अपना राजस्थानी का बात साहित्य नामक लेख छपवाया था, उसमें कई प्रकार से वर्गीकरण किया है और प्रत्येक

वर्ग के आगे उसकी कथाओं की नामावलि भी दी है । हम अपनी राजस्थानी लोक कथा - वार्ताओं का विषय गत वर्गीकरण मोटे तौर पर कर सकते है - १. वीर भावात्मक बातें २. नीति संबंधी बातें ३. धर्म, व्रत तथा त्यौहार विषयक बातें ४. देव विषयक बातें ५. पौराणिक बातें ६. ऐतिहासिक बातें ७. प्रेम संबंधी बातें ८. स्त्री चातुर्य की बातें ९. कहावतों की कहानियां १० अ - पद्य बद्ध या लघुछन्द बातें [आ] हास्य संबंधी बातें ११. चोर-धाड़ेतियों की बातें १२. प्रश्नोत्तर [बुझौवल बातें] बातें

राजस्थानी का बात साहित्य बड़ा भरा पूरा है । उसके वैज्ञानिक वर्गीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है । समस्त राजस्थानी लोक साहित्य के मेरे इस अध्ययन में बात वैविध्य साहित्य का त्रुटि रहित वर्गीकरण कर देना संभव नहीं होगा । फिर भी प्रत्येक राजस्थानी बात को प्रमुखता देकर विभाजन किया गया है । इस विषय के सुविज्ञजन सन्तोष करेंगे ।

१. वीर भावात्मक बातें — पहले हम वीर भावात्मक लोक कहानियों के लक्षण लिखते हैं । ये कहानियां इस प्रदेश की प्राण हैं । इन के कारण ही तो राजस्थान को वीर - समंद कहा जाता है । अंग्रेजी में वीरभावात्मक बातों को एडवेन्चर टेल्स कहा जाता है । ऐसी बातों में जान जोखिम के साथ बुद्धि चातुर्य का प्रदर्शन होता हैं । इन में सिंह-बघेरे, डाढ़ाळा सूर, शत्रु-दाने, राक्षस और डायन-योगनियों जैसे भयंकर पात्र होते हैं । इन कहानियों का उद्देश्य श्रोताओं के साहस - शौर्य का संचार करके उन्हें कर्तव्य-पथ की ओर ले जाने का होता है। ऐसी पौरुषेय कहानियां यहां अधिक मात्रा में पाई जाती हैं । यहां हल्के दर्जे की छिछली कहानियां बहुत कम हैं। इन में तो जीवट युवकों के ओजस्वी वर्णन ही मिलते हैं । जखड़ा - मुखड़ा, आसो डामी जैसे वीर वैतालों की बातें [प्रकाशमान लोक कथाएं] राजस्थानी लोक साहित्य की मणियां हैं । खिवें-बिजै , राजा भोज , खापरो चोर , दीपालदे, कूंगरा बलोच , सोनगरा मालदे, गोरा बादल, अमरसिंह राठौड़, पाबू राठौड़, जगदेव पुंवार, वीरमदे सुलतान, ऊकौ, गूगौ , गरड़पख , उडणौ पिरथी राज, बिणजारौ भोम सिंघ, चूंडौ, सादूळौ, वलूजी चंपावत, अनाड़सिंघ, ल्हालर, सजना, ऊमा भटियांणी, सांथल सोम, दूदौ जोधावत, जगमाल मालावत आदि की बातें वीर भावात्मक हैं । ऐसी कहानियों के दोहे —

मीरां रा माथा उडै, मुख बक मारौ मार ।
मालावत जगमाल री, वहण लगी तलवार ।।
पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल ।
बीबी बूझै खान नैं, जोध किता जगमाल ।।

गडाळै री म्हाट नै, सारा रहीया जोय।
धेगो धेरी सै कहे, मूड़ै चढ़ै न कोय।।
पहुंचै छापर डूंनपुर, वीदे गये पगाय।
लरन सके दीवान सूं, छूटे सबके पाय।

भूत-प्रेत, डाकण स्यारी की कहानियों में उनके कारनामे होते हैं। मगर मनुष्य के आगे वे चलते नहीं। ऐसी कहानियों में – जिन्द की वस्ती, भूत अर डूकड़ी, भूत की बेटी सूं ब्याह, भूत अर सेरणी, बांडियो भूत, केलणियो भूत, राजा अर डाकण, जुरा राकसणी, पंच पीर आदि वातें आती हैं।

२. नीति संबंधी वातें—दूसरे प्रकार की कहानियों में नीति प्रधान कहानियां हैं। ये उपदेश एवं ज्ञानागार हैं। इन में नीति और मनोरंजन साथ साथ चलते हैं। पशु पक्षी एवं जीव जन्तुओं की कहानियां मनोरंजक तथा नीतिपरक होती हैं। इन में ईमानदारी, सचाई, न्याय प्रियता, समानता, सहानुभूति एवं नीति संबंधी वातें होती हैं। अंग्रेजी में इन्हें फेबल [नीति कथा] कहते हैं। योरोप में ईसप की फेबल या कथाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। भारत में इन्हें पंचतंत्रीय कहानी कहते हैं। दुष्टों के चंगुल से वचना वचाना, विपत्ति में धैर्य धारण करवाना आदि उद्देश्य इस प्रकार में पाये जाते हैं। सांई री पलक में खलक; जसमल ओडणी जैसी अनेक प्रकार की नीति कथाएं यहां मिलती हैं। जंवर के जाट की कथाएं भी बड़ी न्याय-नीति पूर्ण हैं।

सांई केरी पलक में, वसता खलक जहांन,
फिकर करै जो कालका, वो है मूरख अजांन।

३. धर्म, व्रत तथा त्यौहार विषयक वातें—तीसरे ढंग की वे कहानियां हैं, जिन्हें धार्मिक, व्रत संबंधी या परम महात्म्य की कहानियां कहेंगे। इनमें फल प्राप्ति का विधान रहता है। स्त्रियां इन्हें व्रत करके सुनती सुनाती हैं। ये पुण्यमयी लोक कथाएं बड़ी महत्व पूर्ण हैं। धार्मिक कथाओं में शिव पार्वती के विवाह की कथा, सत्य नारायण की कथा, सुहागी मावस, पाखती पुन्यू आदि लोक कथाएं हैं। व्रत-कथाओं में सूरज रोटे री कथा, आस री कथा, करवा चौथ, ऊभछठ, तीज, गोगा पांच्यूं, नाग पांच्यूं, वछ वारस, दूवड़ी सात्यूं, गाज माता, आसा भागोती, पंच भीखा, मंगला गौरी, तिलकुट्टे री चौथ, आंवळा नवमी, सनिस्चर भगवान आदि की लोक कथाएं अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी शिक्षा उपयोगिता का प्रचलन स्त्री समाज में अधिक है। ऐसी कहानियों में कार्तिक स्नान एवं व्रतों की कहानियां भी भहुत हैं। कार्तिक स्नान करने वाली महिलाएं प्रातः स्नान करके भगवान के मंदिर में जाती हैं, भजन गाती हैं और आपस में निम्नलिखित कहानियां कहती हैं – जो लिछमी री वात, हाकली-ताकली री वात,

नामदे-स्यामदे री बात एवं कठिहारे, विनायक, सुसरौ-भू, गंगा जमना, कीड़ी नै कण हाथी नै मण इत्यादि की बातें हैं। यहां मैं एक घुणिये घुणती की प्रमुख कार्तिक कथा दे रहा हूं, सो द्रष्टव्य है।

अेक घुणियौ अर घुणती हा। जका दोनूं अेक भागी रै घरां, घणा दिनां सूं मोंठां रै वो'ळ में बैठा चरचा करता हा। मीणा वीतग्या, अैयां करतां करतां स काती नैड़ी आई। जद घुणती काती न्हावण री बात पळाई। बोली – घुणिया मांटी आपां ही काती न्हावां।

घुणियौ बोल्यौ – "तूं ही न्हाया, मनै को सुरग जाणौ नीं। रांम नीकळचौ है, इयै टंटार में नींद निवारां। म्हारा तौ पोता ही न्हार पाछा नीं आवैला। मरणौ थोड़ी ही हैं।" घुणियौ सफा नटग्यौ; पण घुणती रोजीनै री कोड सूं न्हावै। भखावटै उठै अर घर री लुगायां भूलै जठै, दटै दिल सूं न्हाय कर घुणियै कनै पाछी श्राय जावै। पण घुणियौ तौ न्यायौ न्यायौ वैठचौ माछ-मसरकां मोठ ठोकै अर गुवार गिटै।

घुणती पूरी काती न्हायी, तिरायत करी। आखा वरत वड़ौलिया राख्या अर पुण्य रा फळ चाख्या। पुण्य वध्या पण पाप घणा घट्या। काती री पुन्यूं रै दिन घुणियौ घुणती दोनूं मर वैठचा। तकदीर तांण मारचौ, नूंवौ जमारौ धारचौ। घुणती राजा रै बाई होकर जलमी अर घुणियौ राजाजी रौ मींढ़ौ बण्यौ। बाई रात वधतां दिन वधी अर मोटी होई। परणाई जद रांणी वणी अर मींढ़ै री खुदही रही धणी! आपरै पीर सूं सासरै लेती आई। पगां में नेवर अर गळै में रेसमी रस्सी, रणवास में ऊभौ पटोळिया पालौ तथा लूंग चरै। प्यासौ हुवै पांणी मांगै जद रांणी कवै – 'रे घुणिया।' 'क्यूं घुणती?' "नेवर बाजै तोरै पाय, म्हैं कैती नीं रे गोडा कातकड़ौ न्हाय।" अेक दिन या रांणी मींढ़ै री बात राजा सुणी अर अचूंभौ करचौ। रांणी नै वूझ्यौ – "या कांईं बात छै?" रांणी सारी बात री सांची म्यांनौ दियौ। राजा अणूंतौ राजी हुयौ अर काती न्हाण करणौ पळायौ।

कार्तिक स्नान करने वाली महिलाएं यह बात अभी भी कह कर व्रत का पारणा खोलती हैं। वे बात सम्पूर्ण करते समय अपना अंतिम ओठा [उदाहरण] भी देती हैं– "हे काती राजा, राई दामोदर! घुणती नै तूटचौ जिसौ सैं नै तूठजै! घुणियै नै तूठचौ जिसौ किणी नै मत तूठजै! कैवणियां-सुणणियां अर सैंग हुंकारा भरणियां नें।"

इन में होली दीपावली और गणगौर आदि पर्व व्रत कथाएं भी खूब मिलती हैं।

४. **देव विषयक बातें** — चौथे प्रकार में देव विषयक कहानियां रखी हैं। इन के पात्र देवता होते हैं, जो मानवी रूप धारण करके वैसे ही कार्य करते हैं। बेमाता [भाग्य अधिष्ठात्री देवी] की, हनुमान जन्म की, अहिल्या श्राप की और भांग चंदरिये आदि की कहानियां इसी वर्ग की हैं। भाग चंदरियै की कहानी [निजी संग्रह] में भाग्य देव की सार्वभौम सत्ता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इनमें भाग्य देव के आगे रावण जैसे सर्व शक्ति सम्पन्न सम्राटों की भी एक नहीं चलती है।

सुन कुम्भा रावण कहै, आय भगांणा लंक,
लाखां वातां ना रहै, पावां पड़ियां लंक ।

इस विषय में — रामदे तुंवर री वात, राजा नक्षत्र जातीक अर विक्रमादीत री वात, ससि पुन्यू री वात, सूरजनारायण री वात, पारवती-महादेव री वात, लिछमी री वात, गणेस भगवांन री वात, गंगा जमना इत्यादि इत्यादि वातें हैं।

५. प्राचीन एवं पौराणिक वातें—पांचवी श्रेणी की कहानियों के चरित्रों में कुछ अलौकिकता तथा अतिरंजन के अंश मिलते हैं। राजा महाराजाओं के पौराणिक चरित्रों को लेकर ये कहानियां कही जाती हैं। जो पौराणिक कथा कहलाती हैं। इन कहानियों का उद्देश्य लोक में आदर्श गुणों का प्रचार करना होता है। इनमें राजा नल री वात, जन्माष्टमी री वात, रामनवमी कथा, दुवारका महातम री वात, गोविन्दमाधौ जी री कथा, रिसी पांच्यूं री कथा आदि प्रसिद्ध हैं। लोक साहित्य में 'पलक दरियाव री वात' पौराणिक कथाओं का एक विशेष नमूना है। राजा भोज, वीर विक्रमाजीत, गन्धर्व सेन, सालीवाहन, भर्तृहरी आदि पात्रों की कीर्ति का पूरा वर्णन पौराणिक कथाओं में मिलता है। इनमें जादू टोनों आदि के चमत्कारी वर्णन भी होते हैं। जादू की कहानियों में रोचकता अधिक होती है। इनको सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते हैं। ऐसी कहानियों के नाम डम डम जादूगर, सोनी मींढ़ी, चिपम-चिपा, लगलग घोटियौ, सोनै रौ महल, ईंट सूं सोनौ, कामरू देस, मरद रौ मरद, ऊंट सूं बकरियौ आदि हैं। यों तो मनोरंजन के तत्व समस्त लोक कहानियों में होते हैं, लेकिन कुछ कहानियां ऐसी हैं, जिनमें अलौकिक तत्व बड़ी चतुराई से जोड़े गये हैं। कहानी का मतलब ही मन बहलाव होता है। उसमें दिलचस्प एवं रोचक तत्व होने जरूरी हैं। पाठक या श्रोता को इनमें अद्भुत आनंद प्राप्त होता है। ये खाली समय में पढ़ी या सुनी जाती हैं। लेकिन इनके रंजन में सार्थकता रहती है, जिससे ये लोक के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। परियों की कहानियों में, पैप रा फूल, रात री रांणी, सोनै रा फूल, सात परी, सोनल परी, परियां रौ देस आदि कहानियां हैं। इस तरह की कहानियों में राजा मानधाता की कहानी में अप्सरालय लोक का चित्रण हुआ है। इसमें वैतालिक तत्व हैं। वीरमदेव सोनगरा, पाबूजी राठौड़, जगदेव पंवार आदि की वातें उत्सुक वृति का ही पोषण करती हैं। जगदेव पंवार की वात से थोड़ा अंश लिख रहा हूं – "तिका काळी डीगीर, मोटा दांत घणी डरावणी, माथा रा लटिया विखरिया, घणा तेल माथै चवता, धवळा केस माथौ, लीलाड़ सिन्दूर थेथड़ियौ थकौ, लोवड़ी काळी, काळी धावळी, कांचळी तेल माहे गरकाव थकी, उघाड़ौ माथौ कीधां, हाथां माहे त्रिसूळ झालियां, दरवार

आई " ······! कई बातों में राक्षसी स्वरूप भी मिलता है।

६. **ऐतिहासिक बातें**—आठवीं कोटि की वे कहानियां हैं, जो ऐतिहासिक पुरुषों के वर्णनों से बनी हुई हैं। ये ऐतिहासिक पात्रों के आधार पर हैं। अतः ऐतिहासिक कहलाती हैं। इनमें सूरै खींवै कांधळौत, जगदेव पंवार, जगमाल मालावत, वीरमदेव सोनगरा, जैतसी उदावत, महाराजा मानसिंह, पदमसिंह, अमरसिंह, गजसिंहोत आदि की बातें गिनी जा सकती हैं। सूरै खींवै कांधलौत की बात का थोड़ा नमूना पेश कर रहा हूं – 'राठौड़ सूरौ खींवौ, कांधलजी रा बेटा, मोहिला रा दोहिता। सौ बडा सूर वीर धीर राजपूत, चौसठ आखड़ी निभावण हार। खाग त्याग पूरा, काछ बाच निस्कळंक, सरणाई साधार, पर भोम पंचाण, पारकी छटी जागै। इण भांत रा दातार जूंझार।'

सूरौ खींवौ वीर अति, सौभाळौ दातार।
हिम्मत धारी मनगरा, हुया न होणै हार॥

दो और बात के ऐतिहासिक दोहे देखिये –

केहरिया कर नै सका, सूजौ भागौ सार।
देहलो सपने देखसी, गयौ समंदरां पार॥
अमरसिंह गजसिंह रै, करी अंचल राठौड़।
कांन बाढ बूचौ कियौ, गुनहगार छै घोड़॥

७. **प्रेम संबंधी बातें**—इनमें प्रेमी प्रेमिकाओं के संयोग वियोग के चित्र होते हैं। राजस्थानी लोक कथाओं में ऐसे यौवन प्रणय के असंख्य चित्र मिलते हैं। शिशु सनेह तथा वृद्धा अवस्था की कथाएं भी हमारे साहित्य में हैं। लेकिन प्रेम बचपन का प्राण, यौवन का सहचर और वृद्धा अवस्था का सहारा होता है। इस लिए प्रेम मनुष्य के लिए बहुत जरूरी है। इसकी जड़ें परलोक तक पहुंचती हैं। इसको जन्म-जन्मान्तरों का बंधन माना है। रतना हमीर की बात में संयोग श्रृंगार का स्पष्टी करण है–लेखक कहता है—

कुसुम तणा सर पांच कर, जग जिण लीनै जीत।
तिण री सुमरण करतवां, रस ग्रंथां री जीत॥

यह कथा चंपू शैली में है। थोड़ा नमूना देखें–'नैण जिकै इमरत रा हीज नैण, बैण जिको कोयल रा ही बैण। धनुस ज्यूं ही मुंहां री खंच। नासिका जिका सूआ री चंच। अधर परवाळी जिस्या बणियां। दांत जांणै हीरा री कणियां' यहां वियोग श्रृंगार की भी कई कथाएं मिलती हैं। सैंणी वीजानंद री, बींजै सोरठ री, दिनमांन रै फळ री, बगसीरांम प्रोहित हीरां री, रावळ लख सेन री, देवेर नानकदे री, जोगराज चारण री, सोहणी री, बिजड़-बिजोगण री, रांणै खेतै री, रिसाळू नोपदै री, लाछां काछबै री, नाग-

नागवंती री मयाराम दरजी री और ढोला मारू आदि की वातें, प्रेम वार्ताएं हैं। ऐसी वातों के कतिपय दोहे देखिये —

ढोला मारू एकठा, करै कुतुहळ केळ,
जांणै चंदण रूंखड़ै, दिलमी नागर वेल।
मारू थारा गुण घणा, किण हूं कहूंज सार,
आखर तौ बावन रया, तुझ गुण अंत न पार।

नागड़ा नवळौ नेह, जिण तिण सूं कीजै नहीं,
लीजै परावौ छेह, अपणे पण दीजै नहीं।
नागजी नगर गयांह, मन मेळू मिळिया नहीं,
मिळिया अवर घणाह, जासूं मन मिळिया नहीं।

प्रेम की वातें तो अगणित हैं, मगर यहां मात्र मयाराम दरजी की वात के जसा [नायिका] वायक में मिलन सुख के सोलह वैरी वताये गये हैं, वे लिखे जा रहे हैं। जो वियोग शृंगार के उच्चत्तम नमूने हैं। तत्पश्चात इस भेद का विसर्जन किया जायेगा।

वरसाळौ वैरी हुयौ, वैरण दूजी बीज,
मायै आई म्यारजी, तीजी वैरण तीज।
वैरी चौथा वादळा, घण पांचमी घुरांत,
थटी अंधारी थाग विन, छठी वैरण रात।
सारंग वैरी सातमौ, मीठा गावै मोर,
ऊवां वरसै वादळी, लूंवां झूंवा लोर।
नवमी आ वैरण नदी, जदी जलां ऊभेल,
दसमौ वैरी दीवलो, तन सींचीजै तेल।
मद वैरी अगीयारमौ, जण वण केम जीऊं,
बोलै वैरी वारमौ, पपीया पीऊ पीऊ।
तेहड़ौ वैरी तेरमौ, जोवन चढ़ियौ जोर,
चंदौ वैरी चवदमौ, कांमणियां चहुं कोर।
पाका वैरी पनरमा, वळिया फूलां वाग,
सांचौ वैरी सोळमौ, रस वरसावै राग।
वरसाळे में मत वूओ, वादळ वादळ वीज,
म्हांनै थां विन म्यारजी, कुण खेलासी वीज।

८. स्त्री चातुर्य की वातें — लोक कथाओं में कुछ कहानियां ऐसी प्रचलित हैं, जिनमें स्त्री चातुर्य प्रकट करके चरित्र को ऊंचा उठाया गया है। वनजारा वनजारिन की वात में पति के कहने पर वनजारिन अपनी चतुराई का परिचय देती है। वह एक जंगली लड़के को सभा सुशील व्यक्ति वना कर पति के सामने विजय पाती है। साहूकार की वात में भी पति व्यापार करने वाहर जाता हुआ अपनी

स्त्री से तीन बातें पूरी करने का वायदा चाहता है। पत्नी तीनों बातों को स्वीकार करती है। इनमें पतिव्रत धर्म की रक्षा करते हुए पुत्र जन्मना, दूसरी—सुन्दर भवन बनाना और तीसरे अश्व खरीदकर अश्व शाला निर्माण करना। इस पर पत्नी अपनी चतुराई से ग्वालिन का वेश बनाकर विदेश में उसी साहूकार के पास जाती है। वह उसे पहचान नहीं पाता और चरित्र से गिर जाता है। अतः साहूकार की स्त्री अपने इस कठिन कार्य में सफल हो जाती है। इस तरह की कहानी से अलंकृत श्री विजयदान जी देथा ने एक 'मां री बदळी' नाम से दो भागों में एक उपन्यास लिखा है। इसमें राणी भटियाणी ने महाराजा के अवगुणों पर नारी चारित्र्य द्वारा विजय पाई है। इस तरह की एक सेठ के बेटे की बहू की बात भी है।

कोक पढ़ंती कांमणी, कौवा सुगन विचार।
नदी में मुरदौ बवै, लाल जांघ में चार॥

फोफानंद री बात, तथा राजा भोज, माघ पंडित और डोकरी री बात इसी प्रकार के चातुर्य की बातें हैं। राजस्थानी में लालजी पेमजी आदि अनेक कहानियां पुरुष चातुर्य की भी मिलती हैं।

९. कहावतों की बातें — नवम् प्रकरण में हम कहावतों की बातें लेते हैं। इनमें कहावत, प्रवाद, पहेली और चुटकले आदि कई रूप हैं। इन सबको हमने अगले अध्यायों [५-६] में भी लिये हैं, वहीं विस्तृत विवेचन करेंगे। यहां तो केवल कहावती कहानियों के सूक्ष्म नमूने प्रस्तुत किये गये हैं। कहावतों की व्युत्पत्ति किसी न किसी घटना से होती है, उस घटना की बात सुने बिना अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

१ 'वंश विना वंश नहीं कटै'। जंगल काटने की बातें चलीं। बांस के वृक्ष आपस में भयभीत हुए। बोले कटेंगे। बन नायकों ने कहा 'नहीं कटेंगे'। काटने वाले मजदूर आये। डेरे डाले। बांस फिर घबराये। सोचा कटेंगे। वन-नायक वृक्षों ने कहा 'नहीं कटेंगे'। लुहार आये। दाव और कुल्हाड़े बनाने लगे। बांस फिर घबराये कि अब कटेंगे। मगर बन नायकों ने कहा-अभी नहीं कटेंगे। बढ़ई आये और दाव कुल्हाड़ों में बांस के डंडे ठोकने लगे। बांस बोले कटेंगे। बन नायक वृक्षों ने कहा—'हां अब कटेंगे'। अब इनमें अपना वंश मिल चुका है। "वंश विना वंश नहीं कटै"

२. थोरी हाळा तिल –

जेठ का महीना था। गर्म लुएं चल रही थीं। गांव के एक किनारे घर में एक पुरुष और एक स्त्री आपस में बातें कर रहे थे। ये जाति के थोरी (नायक) थे और अपने खेत संबंधी सफल योजना बना रहे थे।

पुरुष कहने लगा— अबकी बार खेत में खाद देकर अच्छी तरह बीजेंगे और निरायेंगे उस खेत में खूब तिल लगेंगे और खेत भर जाएगा। तिल बढ़ेंगे और उनमें खूब फूलियां लगेंगी। खेत में बड़ी बहार होगी, उस समय हम फूले नहीं समायेंगे

इस पर स्त्री कहती है – मैं एक बड़ा घाघरा बनवाऊंगी और उसको पहिनकर रैत में चक्कर लगाऊंगी।

पुरुष – "हट रांड। घाघरे से तिलों की फूलियां झाड़ दी।" उसी दिन से थोरी वाली कहावत चल पड़ी। कोई मन के लड्डू खाता है और ऐसा करेंगे वैसा करेंगे का भाव बांधता है, तब लोग कहते है— पहले ही क्यों थोरी वाले तिल करते हो ?

३. मियां है वठै फजीती घणी हुसी–

एक मुसलमान बहुत धनवान था। उसके घर एक औरत थी। उसके कई दिनों तक कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। बहुत-बहुत धोक - पूजा के बाद उसके एक लड़की पैदा हुई। लड़की का नाम फजीती रखा गया। फजीती का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से होने लगा।

एक समय गांव में चेचक का प्रवेश हुआ। मियां के मोहल्ले में कई बच्चे शिकार बने। फजीती को भी चेचक निकली। वह भी इसके प्रकोप से न बची। उसकी मृत्यु हो गई। मियां की औरत अपनी बेटी (फजीती) के लिए फूट-फूट कर रोने लगी। पास पड़ौस की औरतें उसको चुप करने के लिए आईं। लेकिन मियां की औरत हाय ! फजीती ! हाय ! फजीती ! करती ही गई ! तब एक बूढ़ी पड़ोसिन ने धैर्य बंधाते हुए कहा कि– बीबी चुप हो, खुदा तेरे मियां को सलामत रखें। मियां है तो फजीती और होगी।

प्रवाद की बात—प्रवाद जनता के व्यवहारिक आचरण हैं। लोक साहित्य में हजारों की संख्या में ये चलते हैं।

१. एक शराबी ने अपना सारा धन प्याले में पी डाला। आखिर अनाज के भी टोटे पड़ गये। एक दिन उस नशेबाज का साला अपनी बहिन से मिलने आया। बहिन अपने भाई को भोजन करवाने के लिए घर की थाली गिरवी रखकर बदले में अनाज लाई और उसको चक्की पर पीसने लगी। उतने में वह शराबी बाहर से घर आया और घर की सारी लीला समझकर बोला—

पावणो आयो सिरै मोड़, रांड लाई थाली पर दौड़,
घमड़-घमड़ चाकी पीसै, काख उठायां कालजो दीसै।

२. खाया सोई खरचिया, दीन्या सोई सत्थ,
जसवंत भुंई पोढ़ावियां, माल परायै हत्थ।

जोधपुर महाराजा श्री जसवंतसिंह जी बड़े भक्त एवं उदारमना कवि थे। उनको अन्य विद्याओं के साथ श्वास प्रकिया का भी ज्ञान था। वे संसार को असार समझते थे और मृत्यु के साथ होकर जाने के लिए हर घड़ी तैयार रहते थे। उन्होंने मनुष्य की काया के विषय में कहा है—

जसवंत सीसी काच की, तैसी नर की देह।
जतन करंता जावसी, हर भज ल्हावा लेह॥

दस दवार रो पींजरी, तामें पंछी पौन।
रहण अचंभो है जसा, जांण अचंभो कौन॥

उन्होंने राजदरबार और अपने अंतःपुर में आज्ञा करवादी थी कि — मेरी मृत्यु के समय शरीर पर गहने कपड़े जो भी हों साथ जला दिये जायं।

उक्त आज्ञा के पालनार्थ राजकीय वजीर, कर्मचारी तथा सारे कुटुम्बीजनों एवं अंग-रक्षकों ने हां भर ली थी।

एक बार महाराजा ने प्रहर का प्राणायाम शुरू कर दिया। श्वास चढ़ा लिया और समाधिस्थ हो गये। तव लोगों ने समझ लिया कि इन्होंने शरीर छोड़ दिया है। बस तुरन्त महाराजा के शरीर से मूल्यवान वस्त्राभूषण उतार कर कफन ओढ़ा दिया और शव को भूमि पर सुला दिया गया। महाराजा समाधि से हटे और शरीर का दुर्व्यवहार देखा। सारा वृत्तान्त ज्ञात करके वे बोले—

खाया सोई खरचिया, दीन्या सोई सत्थ।
जसवंत भुंई पोढ़ावियां, माल पराये हत्थ॥

३. लालां करचा बिछावणा, हीरां बांधी पाज
कांटै मोती पो दिया, हेम गरीब निवाज।

'रूठ्योड़ा भूपाळक तूठ्या बांणिया'—भोपाल रूठे हुए भी अपनी दातारी को नहीं छोड़ते। अभाव के समय तो क्षत्रिय स्वभाव और भी उदार हो जाता है। एक बार घाटेती सरदार श्री हेमसिंह जी की कोटड़ी पर एक बारहठजी याचना हेतु पहुंचे। उस समय उनकी कोटड़ी में सिवाय थोड़ी सी जुवार के और कुछ भी देने की वस्तु नहीं थी। याचक बारहठ ने लेने के लिए अपना एक मोटा कपड़ा उनके आगे बिछाया। तब हेमसिंह जी की बड़ी बेटी लालकुंवर ने बारहठजी के बिछाये हुए उस कपड़े पर अपने घर की सारी जुवार (अन्न) लाकर उड़ेल दी। जुवार अधिक होने के कारण कपड़े से नीचे गिरने लगी। तब उनकी छोटी बेटी हीरां कुंवरी ने जुवार की कपड़े पर पाळ सी बनादी। बारहठजी के साथ उनका बेटा भी था। उसके कानों के छिद्रों में बबूल की शूलें डाली हुई थीं। उन दोनों ने मिलकर जुवार की गाठ बांधी और चलने को तैयार हुए। तब ठाकुर हेमसिंह ने अपने कुंवर के कानों में से लोंग निकाल कर बारहठ के बेटे के कानों में कांटों के बदले में पहना दिए। बारहठ ठाकुर की दातारी पर बड़ा खुश हुआ और उसने हेमजी की प्रशंसा में दोहा बनाकर कहा—

लालां करचा बिछावणा, हीरां बांधी पाज।
कांटै मोती पो दिया, हेम गरीब निवाज॥

बात पहेली—ये बुद्धि परीक्षार्थ पूछी जाती हैं। लोक साहित्य में इनकी बड़ी भरमार है। बात—

एक जंवाई मुकलावा लेने के लिए अपने ससुराल गया। वहां उसके पास सालियां एकत्रित होकर आईं और अपने बहनोई की होशियारी देखने के लिए बोलीं—

मोती वरणा ऊजळा, हाथ लग्यां कुमळाय,
ना माळी रै नीपजै, ना राजा रै जाय।

जंवाई इस पहेली का अर्थ (ओळौ) समझ गया; किन्तु चतुराई से उत्तर दिया—

हाट ना, बाजार ना, बाणियै री दुकांन ना,
आवादो चेत अर जावादो होळी,
थे मांगो दो चार, म्हे भर देस्यां झोळी।

चुटकले—चुटकले जनता में बहुत प्रचलित हैं। इनमें हास्य की विशेषता

होती है। लोग समय समय के वार्तालाप में चुटकले बोलकर स्थिति को सरस बनाते हैं।

१. एक वृद्ध सैनिक ने शीतला माता की पूजा आरंभ की। इस पर माता प्रसन्न होकर बोली "मांग" सिपाई ने कहा–'हे माता मुझे घोड़ा दो।' माता ने कहा–'अरे बेटा! मेरे पास यदि घोड़ा होता, तो मैं गधे पर क्यों चढ़ती।

२. बादशाह ने अपने फौज के एक सिपाही को बुलाकर पूछा–"सिपाही थारो नांम कांई?" सिपाही कियो–"हुजूर नाहरखां।" बादशाह कियो तौ सिंघ सूं कुस्ती लड़णी पड़सी। "हुजूर! नाम तो दुरवळियो हो; पण भूवा रांड जुलम किया। लाड रो नांम नाहरखां राख दियो।"

३. एक कंजूस वाणियें रै घरां बटाऊ आयो, जद वाणियें आपरै घर में हेलो मारतां थकां कियो–"अरै सिरदारां खातर सीरो करियो। थोड़ी देर बाद पछै भळै हेलो मारियो–अरे सीरै में ताळ लागै तो रोटी ही करलो। थोड़ी देर बाद ओजूं हेलो मारियो–अरे रोटी करतां बार लागै तो राबड़ी ही लादो।" छेहली भुळावण सुणनै बटाऊ कह्यो–"राबड़ी सूं नीचे उतरैगो बीनें लागै जेको सौगंध है।"

इनमें लोक जीवन के यथार्थ चित्र होते हैं। पूरा विवरण आगे पढ़ें।

१०. पद्य–बद्ध लघु हास्य वातें–दसवीं श्रेणी में हम पद्य-बद्ध कहानियां लेते हैं। जिनमें बालकों की कहानियां अधिक मिलती हैं। इन कहानियों के विषय सरल एवं सीधे होते हैं। बाल कथाओं के पात्र भी दूर के नहीं, घर के परिचित पशु पक्षी आदि होते हैं। इनमें चिड़ी-चिड़कली, चिड़िया-चुस्सी, चुस्सी-मुस्सी, चिड़ी-कागली, टीटण-मटकाचर, कीड़ो-कमेड़ी, कीड़ी रो जुंवाई, जूं री व्याह, कमेड़ी री व्याह, भींटियो, गादड़ो-लूंकड़ी जैसी असंख्य वातें होती हैं। बाल लोक कथाएं ही साहित्य लोक कथाओं की धात्री हैं। छोटे छोटे बच्चे घर पर कहानी सुनते हैं। कलम पकड़ते हैं और फिर कहानीकार बनते हैं। राजस्थान में ऐसी लघु बाल लोक कथाएं कई हैं। जो छोटे बच्चों को सुनाई जाती हैं। इन कथाओं की शब्द योजना एवं वातावरण इस प्रकार के होते हैं जैसे कि अत्यन्त विचार-पूर्ण शिशु लोकोपयोगी कहानी के होने चाहिये। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषताएं हैं। दो पद्य-बद्ध बाल लोक कथाओं के उदाहरण देखिये—

क–एक बनिये का गृहस्थ–एक बनिये ने जूं [कृमि] से विवाह किया। जूं पानी का लोटा गर्म करने गई और लोटे में डूब कर मर गई। बनिया लोटे का पानी नदी में गिरा आया। पानी लाल हो गया। तब एक बैल ने आकर नदी से प्रश्न किया–"पानी लाल क्यों?" तब नदी ने कहा–

वाणिया रो घर डूबो घरवास डूबो, नदी रो पांणी रातो
बळद रा सींग झड़्या, पीपळ रा पांन झड़्या
कागलो कांणो, तेली खोड़ो

पांगळी पणिहार, बांडा स्याळ
बोळा गुवाळ, घर रा आंधा
दांतली राजा, चांचली रांणी

रानी तक सब काने खोड़े लूले लंगड़े हो गये। इस कहानी में लक्ष्य प्राप्ति नहीं। केवल हंसाने खिझाने का उद्देश्य तथा मनबहलाव है। बाल मनोवृत्ति की पुष्टि-तुष्टि के उपकरण अवस्थित होने के कारण यह सन्तोषप्रद कथानक है।

ख—एक कमेड़ी [1] किसी खलिहान पर दाना चुगने आई। खलिहान के मालिक भूरिया जाट ने रस्सी का फंदा डालकर इस सरल परिन्दे को पकड़ लिया। उस समय खलिहान के पास से गायों का ग्वाला निकला। कमेड़ी ने रोते हुए उससे कहना शुरू किया —

गायां रा गवाळिया रे वीर टमरक टूं
बंदी कमेड़ी छुड़ाई रे वीर टमरक टू
डूंगर लारै बचिया रे वीर टमरक टूं
नाना-नाना बचिया रे वीर टमरक टूं
आंधी सूं उड़ जासी रे वीर टमरक टूं
मेहां सूं गळ जासी रे वीर टमरक टूं

"हे गायों के ग्वाले, हे मेरे भाई! बंदी कमेड़ी को छुड़ाना भाई! मेरे बच्चे पहाड़ी के पीछे हैं। ये छोटे छोटे हैं। आंधी से उड़ जायेंगे और मेह से गल जायेंगे।" कमेड़ी के दुख पर ग्वाले की आंखों में आंसू आ गये। उसने कमेड़ी छुड़वाने के बदले भूरिये को अपनी एक गाय देनी स्वीकार की। लेकिन भूरिया नहीं माना। उसके बाद राईका [ऊंटों का ग्वाला] आया और कमेड़ी ने वही गीत गाकर सुनाया। उसने भी कमेड़ी को बंधनमुक्त करवाने के लिए भूरिये को एक अच्छा ऊंट देना चाहा। पर भूरिया नहीं माना। फिर भेड़ बकरियों के ग्वाले भी कमेड़ी को छुड़ाने के लिए अपने अपने पशु धन को लेकर उपस्थित हुए। मगर भूरिया टस से मस नहीं हुआ। आखिर एक चूहा जमीन से निकला और वह भी कमेड़ी को देखकर द्रवित हुआ। उसने भूरिये से पाताल का सोना लाकर देने का वादा किया और कमेड़ी को छुड़ाया। कमेड़ी फंदे से निकलकर उड़ गई। चूहा जमीन में घुस गया। भूरिया हाथ मलकर रह गया। अत्यन्त लोभ करने वालों की यही गति होती है।

राजस्थानी के विस्तृत प्रांगण में हास्य व्यंग की छोटी छोटी लोक कथाएं जन-जन की जिह्वा पर अबाध गति से नृत्य करती रहती हैं। इनमें ढाढ़ी, चमार, नायक, नाई, घणखाऊ बामण, मक्खीचूस महाजन, कायर राजपूत आदि

१ कबूतर की जाति का एक कथई रंग का पक्षी, जिसको पिंडूकी भी कहते हैं।

की विविध कथाएं मिलती हैं। बोळै री भाण, फदड़ पंच [निजी], सिवदी कुत्ती, मांनियो - मांनियो, लालो खाती, चार चोर अर डूम, राजा रै च्यार कांन, जाट अर काजी, गुड़ मिठड़ो, बटाउड़ो, रोही रो रींछ [निजी], लाफसड़ो खाऊं, पंच मारवां, लड़ाक पिंडत, पीरदानियै [निजी], जैसे अनेक कथानकों की हास्य रसात्मक बातें राजस्थान में विचित्र ढंग से प्रचलित हैं। इनमें से कई बातें तो मानव के कलेजे में सीधो उतर जाती हैं और कई दिल दिमाग में भरी हुई चिन्ता को बड़ी तेजी से बाहर फेंक देती हैं। यह लोगों के हृदय को हिलाती हैं, उदासी मिटाती हैं और चित्त प्रसन्न कर देती हैं। इनके भी दो लघु नमूने लिख रहा हूं:

अ – एक ढाढ़ी जजमानां रै चाल्यो। मारग मांय एक गांव आयो। सियाळै रा दिन, अेक कूवै कनै रात बितावण बैठग्यो। ठंड हुई, ढाढ़ी कुवै री खेळ कनै गांठड़ी बणग्यो। थोड़ी देर पछै सीळी बाळ चाली। ढाढ़ी कई करै। आपरी सारंगी खेळ कनै छोड़ नै खेळ रै मांय बड़ग्यो। अेक चोर आयो। सारंगी उठाय लीनी अर सोड़ उतार नै भाजग्यो। रात बीती। दिन री उगाळी होई। ढाढ़ी खेळ मांय सूं निकळनै सूरजनारायण नै बोल्यो—

ऊग रे म्हांरा सूरज भांण, थां ऊग्यां उबरसी प्रांण
रात उग्यो हो अेक लपोड़ (चांद), दिवा दी म्हारी सारंगी अर सोड़

आ – एक चमार आपरी लुगाई ल्यावण नै सासरै चाल्यो। गरमी रो जोर। लू चालै धरती तवै सी तपै। पण सासरो प्यारो घणो। चालतां चालतां सासरै रो गांव नेड़ो आयो। चमार कनै अेक तरवार ही। उवै मन मांय विचार करयो—'तरवार रो के करस्यां? पूठा आवता लेय चालस्यां। अठै ही ल्हको देवां।' आ वात विचार करकै अेक बूजै मांय तरवार दाब दीनी। अर सासरै आय पूग्यो। तीन दिन मौज स्यूं रैयो। पछै लुगाई नै सागै लेयनै पूठो बावड़्यो। गांव सूं निकळ नै बूजै कनै पूग्यो। तरवार री जगां अेक दरांती पड़ी। तरवार कोई उठायनै लेग्यो। अर दरांती मेल दीनी। चमार दरांती उठाय नै बोल्यो।

मेली ही म्हैं सीध सटाकळ, बांकळ चोकळ कुण करग्यो?

धणी री वात सुणनै चमारी उथलो दीन्यो —

जेठ साढ़ री पड़्यो तावड़ो-काचो लोहो पीघळग्यो।'

लुगाई री बात सुणनै चमार पडूतर दीन्यो –

पीघळग्यो सो पीघळग्यो, पण पेट में लकड़ी कुण करग्यो।
छेकड़ चमार तरवार री जगां दरांती लेने घरां आयो।

यहां लोक कथाओं का हास्य मूल अभिप्राय अध्ययन एवं मनोरंजन की महत्वपूर्ण सामग्री है। इस तरह की बूझ-बुझाकड़ की कथाएं भी हास्य से ओत-प्रोत हैं।

११. चोर धाड़ेतियों की वातें— राजस्थान में सूर-वीरों के चरित्रों की विशेषता के साथ चोर-धाड़ेतियों की पटुता शक्ति की कहानियां भी अपनी कोटि की हैं। यहां खापरिये चोर जैसे लोगों की प्रत्युत्पन्नमति, मनुष्य क्या देवताओं को भी

चक्कर में डाल देती हैं। खापरे चोर की बातों में राजा और देवी-देवता, दोनों उसके आगे हार मान लेते हैं। बातांशः– खापरा अेक रात को चोरी पर जाता है। राजा वेश बदल कर साथ हो लेता है। एक बनजारे का माल बड़ी चतुराई के साथ निकालकर साथ ही दोनों गाड़ते हैं। मगर वह धन दूसरे दिन खापरा अकेला ही निकाल लाता है। इस पर राजा उसको देवी के मंदिर में बंद करवा देता है। चोर वहां से भी निकल आता है। देवी और राजा दोनों उसकी चतुराई की प्रशंसा करते हैं। इसी तरह लालजी-पेमजी की चतुराई की बातें भी चलती हैं। ऐसी बातों की भी यहां बहुतायत है। चोर कथाओं में चार चोर, खींवौ-बीजौ, ग्यांनी-चोर, डम-डमी चोर, भारमल चोर, बुढ़िया और चोर, समझी और चोर, चमार के घर चोर, बनिये के घर चोर, लाल गुरू के घर चोर आदि प्रसिद्ध कथानक हैं। इन बातों से ठगों की बातें बिल्कुल अलग हैं। उनके नाम निम्न प्रकार के हैं: एक लुगाई अर चार ठग, ब्राह्मण और ठग, डेढ़ छैल की नगरी में ढाई छैल ठग, मांमा भांणजा, गफूरियौ ठग, ठग और राजा, मूंछ मूंडी रांडड़ी इत्यादि। उक्त चोर और ठगों की बातों की भांति यहां धाड़ेतियों की बातें भी सुनने-पढ़ने लायक हैं। इनमें दूला धाड़ी, दयाराम धाड़ी, बांमण और धाड़ी, धनपाल सिंघ, मियां और मीणो, बनेसिंघ, डूंगजी-जवारजी, उदौ पोकरणौ, वजीर मल धाड़वी, चिमनजी धाड़वी, खादर बख्श धाड़ी, धाड़वी और सेठ, मेघजी चारण धाड़वी [निजी संग्रह] प्रभृति बातें बड़ी प्रचलित हैं। नीचे एक धाड़वी लोक गीत दे रहा हूं –

धाड़ो दौड़्यौ रे चिमजी लाडांणै
अन्न रोही में तम्बू तणाया, धोरां जाजम बिछाई
पीपां में दाखां रौ दारू, खोड़ां मैफल मंडाई
लाडूवां जलेब्यां री झावां आई, गोठा भीड़ लगाई
साथीड़ां नै हुकम करायौ, धाड़ा करौ सुवाई
गाय गरीवां धाव न घालौ, लूंठां करौ लुंटाई
गउवां गोधां गुड़ खळ राळौ, ऊंटां देज चढ़ाई

प्राचीन साहित्य में तो ऐसी अनेक गीत कथाएं भी उपलब्ध होती हैं, जिनमें चोरी की चतुराई और वीरता की घटनाओं का प्रचुर उल्लेख है।

१२. प्रश्नोत्तर [बुझाकड़] बातें— अब हम प्रश्नोत्तर कहानियां लिख रहे हैं। ये कहानियां काफी हैं। मगर अपने पास स्थानाभाव है, अतः इन्हें उदाहरण स्वरूप ही समझिये। इनमें शंका समाधान के विषय रहते हैं।

अ– अयोध्या में वीर केतु राजा था। उसके राज्य में एक रत्नदत्त सौदागर रहता था। राजा ने अपने राज्य में एक चोर को पकड़ा और उसे मृत्यु दंड का हुक्म सुना दिया। चोर को

जब फांसी के स्थान पर लाया गया तो सौदागर की लड़की रत्नवती ने अपने मन में उस चोर को पति के रूप में वरण कर लिया। उसने अपने पिता से कहा— मेरा यदि इसके साथ विवाह नहीं हुआ तो मैं परलोक में इसीका अनुगमन करूंगी। लेकिन फांसी से न बचा सकने पर अपने माता-पिता के साथ उसे फांसी चढ़ने के समय देखने गई। जब उस चोर ने यह बात सुनी तो वह एक बार तो रोने लगा और दूसरे ही क्षण हंसता हुआ सूली पर चढ़ गया। राजा से वैताल ने प्रश्न किया — यदि आप न्यायकारी हैं तो चोर के पहले रोने और बाद में हंसने का कारण बताओ ? राजा ने उत्तर दिया—कुपात्रों को सुपात्र मिलते हैं और सुपात्रों को कुपात्र मिलते हैं। भगवान के इसी मेल पर वह प्रथम हंसा और फिर रोया। हंसा इसलिए कि अन्तिम समय किसी ने उससे प्यार किया और वह उसके बदले में कुछ नहीं कर सका अतः रोया।

दूसरे प्रकार की प्रश्नोत्तर कथायें वे हैं, जिनमें किसी वैवाहिक संबंध की बात पूछी जाती है। जैसे —

उज्जैन नगरी में राजा विक्रमादित्य ने खापरिये चोर से कोई प्रत्यक्ष बड़ी चोरी साबित करनी चाही। राजा ने देवी के मंदिर में उसको बंद करवा दिया। आधी रात को हाथ में त्रिशूल लेकर देवी आई और खापरिये से कहने लगी — तू झूठा है मैं तेरा भख (भक्ष) लूंगी। तब खापरिये ने हाथ जोड़कर कहा — देवी इससे तो मेरा मोक्ष हो जायेगा। मगर मेरी एक समस्या है, उसे तो आप सुलझा दीजिये। देवी बोली — बता। खापरिये ने कहा — एक बार अकाल के समय किसी नगर में एक सेठ के यहां दो बाप बेटे आकर नौकर रहे। दूसरे सेठ के यहां भी दो मां बेटी आकर नौकरानी हुई। एक दिन सेठ ने दूसरे सेठ से कहा कि हमारे यहां दो आदमी आकर रहे हैं। मुझे उनका विवाह करना है। तब दूसरे सेठ ने बताया कि हमारे यहां दो औरतें आई हुई हैं, उनका भी मुझे विवाह करना है। फिर दोनों ने सलाह करके बाप-बेटों को मां-बेटी वाले सेठ के घर ले आये और दोनों को उन औरतों के मंडे हुए पैर दिखला दिये। पैर देखकर बाप बेटों ने कहा कि अपनी अपनी स्त्री हमने चुबली है। पहले बाप ने कहा— इस मोटे पैर वाली स्त्री के साथ मैं विवाह करूंगा। बेटे ने कहा— इस छोटे पैर वाली स्त्री के साथ मैं विवाह करूंगा। उनके विवाह हो गये। मोटे पैर वाली बेटी थी उसके साथ पिता का विवाह हुआ और छोटे पैर वाली मां थी, उसके साथ बेटे का विवाह हुआ। देवीजी! अब प्रश्न यह है कि वे दोनों आपस में एक दूसरे के क्या लगी सो बतलाइये।"

इस प्रकार की एक और कहानी हमें यहां प्राप्त है। उसका नाम है 'कौन व्याहे ?'

कहते हैं किसी समय एक राजकुमार को देश निकला दिया गया। वह अपने मित्र खाती, दर्जी, और सुनार को साथ लेकर चल निकला। चलते चलते रात हो गई, तब एक जंगल में विश्रामार्थ ठहरे। वहां उन चारों में पहरा देकर सोने की बात तय हुई। पहरे पर सर्वप्रथम खाती के लड़के की बारी लगी। उसने अपने पहरे के सूने समय में लकड़ी काटकर एक औरत बनाई। इसके बाद दर्जी का पहरा लगा। उसने उसे कपड़े पहना दिये। फिर सुनार के लड़के ने अपनी बारी में उसे चूड़ियां आदि गहने पहना दिये। इसके बाद राजा के लड़के की बारी आई। वह अपने मित्रों के हाथ की कला, उस औरत, को देखकर ईश्वर से स्तुति करने लगा। भगवान ने प्रकट होकर उस लकड़ी की मूर्ति को सजीव बना दिया। सुबह आपस में

औरत से विवाह का प्रश्न चला। आखिर उत्तर इन्साफ यह रहा कि जीवन दान के कारण खाती और राजकुमार तो उस औरत के पिता तुल्य हैं और वस्त्र भरण के कारण दर्जी भाई ! सुनार ही पति हो सकता है, जिसने चूड़ियां आदि आभूषण पहनाये हैं।

तीसरे प्रकार की प्रश्नोत्तर कहानियों में एक व्यक्ति चार सोने की मोहरों में ऐसी चार बातें खरीद लेता है, जिनसे उसका जीवन सुधर जाता है। बातें सुन्दर हैं —

१. सूर्यास्त के बाद किसी शहर में नहीं जाना चाहिये २. पांच आदमियों का कहना मानना चाहिये ३. स्त्री को कभी भेद नहीं देना चाहिये ४. राज्य दरबार में सदैव सत्य बोलना चाहिये।

ऐसी कई प्रकार की बातें चलती हैं। इस तरह की एक और कहानी मिलती है। उसकी बातों की परीक्षा कोई बनिक पुत्र करता है।

१. धन का पिता २. प्यार की माता ३. होत की बहिन ४. अणहूंत का भाई ५. बिगड़ी का यार ६. चंचल नगरी सोवै सौ खोवै, जागै सौ पावै।

इन ६ बातों को साहूकार पुत्र पांच सौ रुपयों में खरीद कर लौकिक सफलता प्राप्त करता है। प्रथम बात की परीक्षा तो उसे पिता से हो जाती है। पिता बेकार देखकर घर से निकाल देता है। माता लडुओं में चार लाल बांध कर देती है। गरीबी में आश्रय के लिए बहिन के पास पहुंचता है तो वह उसको पहचान नहीं पाती। मगर भाई कुशल समाचार पूछता है। बिगड़ी में मित्र भी सहारा देता है। चंचल नगरी में धनिक पुत्री को सांप काटता है, उस सांप को वह जागृत होने के कारण मार डालता है। फिर उस लड़की के साथ विवाह होता है, तब उक्त बातों का नुस्खा अचूक माना जाता है।

प्रश्नोत्तर कहानियों में शर्त की कहानियां भी होती हैं। जैसे—

एक समय रूमसूम के बादशाह ने अकबर के पास शर्त रूप में 'जब, अब और अब न जब' के प्रश्न भेजकर जवाब मांगे तो अकबर की सभा में सन्नाटा छा गया। बीरबल ने अगले दिन उनको उत्तर देने का बीड़ा उठाया। दूसरे दिन बीरबल अपने साथ दरबार में एक वेश्या, उसकी युवती पुत्री और एक हींजड़े (नपुंसक) को लेकर उपस्थित हुआ। बीरबल ने बताया – वेश्या का रूप-सौन्दर्य जब था, वेश्या पुत्री की ओर इशारा करके कहा—इसका रूप-सौन्दर्य अब है। फिर नपुंसक को दिखाकर कहा—इसके अब न जब ! इस प्रकार बादशाह को सही उत्तर मिले।

एक प्रकार की शारीरिक संकेत की कहानियां भी होती हैं।

राजकुमार किसी युवती का संकेत देखता है—उसने मेंहदी का पत्ता तोड़ा, पैर से लगाया फिर चूड़े से छुवाया, छाती के लगाया फिर कान से लगाकर डाल दिया।

राजकुमार को किसी ने उक्त घटना का यह समाधान बताया कि पद्मावती युवती का नाम है, चूड़ामल की पुत्री है, तुमसे प्यार करती है और कर्णनाटक विवाह हुआ है।

प्रश्नात्मक कहानी का यह भेद बड़ा रंगीला है। इसमें एक निरीक्षण का तत्व महत्वपूर्ण होता है । इसका उदाहरण देखिये —

— गुरुजी ने दो लड़कों को पानी लेने भेजा और कहा — न ताल का लाना, न पाल का लाना, कोई तीसरा ही जल लाना ।

इस पर एक लड़का तो भौंचक्का-सा खड़ा रहा । मगर दूसरे ने अपने ज्ञान और प्रकृति निरीक्षण के सहारे ओस का जल लाकर प्रस्तुत कर दिया जो ताल का था न पाल का ।

राजस्थानी लोक कथा कहानियों में संतों - महंतों की करामाती तथा चमत्कारिक कथाएं भी चलती हैं । ये धार्मिक एवं दैविक कहानियों में समाहित हैं । जैसे—नरसी भक्त , पूरणमल भक्त , मीरां बाई , जामौजी , जसनाथजी , तपसी जाट , मूरख सूं महातमा , चोर सूं साधू नाम की संत वातें हैं । इनके अतिरिक्त - गुवाळियो राजा , राजा भोज की पन्दरहवीं विद्या, वाणिकी विद्या, फूलां माळण, लखटकियो , डफोळ संख [निजी संग्रह में], जीवतो भूत , भड़-भूंजी राजा , आंधियो पांगळियो [निजी संग्रह] , वातां रा टका लागै जेसी नाना प्रकार की वातें भी बहुत हैं । जो उक्त प्रकारों में सम्मिलित की जा सकती हैं ।

राजस्थानी लोक कथाओं के शीर्षक — संभवत: यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि लोक कथाओं का नामकरण किस रूप में होता है । वस्तुत: प्रत्येक कथा को संकेत या शीर्षक रूप से पहिचानना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता भी है । प्रत्येक कथा अपने प्रचलित रूप में अनजाने ही किसी न किसी शीर्षक को प्राप्त कर लेती है । राजस्थान को कथाओं के नामकरण में निम्नलिखित मुख्य प्रवृत्तियां काम करती हैं :

१. नायक के नाम पर आधारित शीर्षक यथा अमरसिंह , पावूजी , तीडो, जगदेव पंवार आदि ।

२. कथा के प्रमुख पात्र की जाति पर नामकरण यथा सुनार का पुत्र , वनिये का पुत्र , बांभी की वात , थोरी की वात आदि ।

३. कुछ कथाओं के शीर्षक कहावती रूप लिये होते हैं । ऐसी कथायें कहावतों पर आधारित हैं यथा यह धन गया लाली के लेखे , भलाई व्यर्थ नहीं जाती आदि ।

४. व्रत कथाओं के शीर्षक मुख्यतया व्रत के नाम पर निर्मित होते हैं यथा आसा माता की वात ।

५. जिन कथाओं में राजा या राजकुमार का नायक रूप में वर्णन होता है उन्हें राजा की वात या राजकुमार या राजकुमारी की वात कह दिया जाता

है। अधिक कथायें इसी सामान्य नामकरण के साथ प्रचलित रहती हैं।

६. कुछ कथाओं का गठन के आधार पर नामकरण होता है यथा चौबोली नामकरण के पीछे चार बार बोलने की बात प्रमुख है।

७. प्रेम कथाओं के नामकरण में नायक-नायिका के नाम साथ रहते हैं। यहां एक विशेष तथ्य की ओर भी ध्यान अवश्य जाता है। राजस्थानी प्रेम गाथाओं में पहिले नायक फिर नायिका का नाम आता है। यथा नागजी-नागवन्ती, रिसाळू-नौपदे, रतनपाळ-जस्मादे, बींझा-सोरठ, जलाल-बूबना। इसके विपरीत यदि हम मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित कथाओं को देखें तो उनमें नायिका का नाम पहिले आता है यथा लैला-मजनूं, हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल आदि।

८. उद्धरणात्मक, उपदेशात्मक एवं नीति कथाओं के कहने में संपूर्ण तथ्य के उल्लेख के बाद ही कथा कही जाती है। यहां नामकरण में सांकेतिकता या शीर्षकत्व का आभास नहीं मिलता।

९. पशु-पक्षियों की कथाओं के शीर्षक मुख्यतया पशु-पक्षी के नाम अथवा कहानी में आये हुए दो पात्रों (पशु-पक्षी) के संबंधों को लेकर रखे जाते है। यथा खरगोश की बात, हिरण की बात, चिड़ा-चिड़ी की बात, सियार और लोमड़ी की बात आदि।

इन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों पर सामान्य-समाज कथाओं को विशिष्ट संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। आजकल लोक कथाओं के प्रकाशित रूपों में जो शीर्षक हमें देखने को मिलते हैं, उनका निर्माण वस्तुत: लेखक अपनी विवेकसम्मत बुद्धि से करता है। जन-समाज में मौखिक रूप से प्रचलित शीर्षकों में इतना वैभिन्य नहीं हुआ करता।

राजस्थानी कथाओं का रचना तत्व :

शास्त्रीय विवेचन के रूप में किसी भी कथा की रचना में हम इन सात तत्वों की खोज करते हैं — कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, चरित्रचित्रण, वातावरण, शैली एवं उद्देश्य। राजस्थान की लोक कथाओं को इन शास्त्रीय कथा-तत्वों की दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं तो उनके कथात्मक गठन, पात्र चयन, चरित्रचित्रण और वातावरण के रूप में विशिष्टता दृष्टिगत होती है तथा कथोपकथन व शैली का लिखित रूप नहीं होने के कारण, उन्हें भिन्न रूप से समझना आवश्यक बन जाता है। कथा के उद्देश्य रूप में शास्त्रीय एवं लोक कथा के बीच विशेष अन्तर नहीं रहता।

सामान्यतया शास्त्रीय कथा साहित्य में कथावस्तु का विभाजन कहानी एवं उपन्यास के रूप में होता है। कहानी का आकार छोटा और उपन्यास का

आकार बड़ा होता है। आकार के कारण ही कहानी को क्षिप्र, संक्षिप्त एवं अपने लक्ष्य की ओर एकाग्रता से बढ़ना पड़ता है और चूंकि उपन्यास को अपने आकार की विशेष चिन्ता नहीं होती इसलिए वह मन्थर गति से कथा की अनेक गहराइयों में पहुंचता हुआ एक पूर्ण समस्या के निदान के रूप में बढ़ता है। ठीक इसी दृष्टि से लोक कथाओं को देखें तो ज्ञात होता है कि आकार के साथ दोनों प्रकार की कथायें प्राप्त होती हैं। कुछ कथायें बिल्कुल संक्षिप्त, क्षिप्र और एकाग्रता लिये हुए हैं और कुछ कथायें निश्चय ही काफी कलेवर लिये हुये रहती हैं। कथावस्तु के रूप में एक अन्य विभेद भी प्राप्त होता है जिसे हम प्रमुख कथा एवं गौण कथा या प्रासंगिक कथा के रूप में जानते हैं। प्रमुख कथा उसे कहते हैं जो प्रारंभ से अंत तक अपने विवेकपूर्ण विकास की गति से बढ़ती है और प्रासंगिक कथा वो कथात्मक अंश कहलाता है जो प्रमुख कथा के विकास हेतु कथा में कहीं भी प्रारंभ होकर बीच में ही विलीन हो जाता है। यह प्रासंगिक कथा प्रमुख कथानक के लिए सहयोगी का कार्य तो अवश्य करती है लेकिन प्रमुख कथा का आन्तरिक भाग नहीं होती। लोक कथाओं के कथानकों को भली प्रकार देखने पर ये दोनों विभेद भी प्राप्त हो जाते हैं। कथानक के इस सत्य को सामने रखने पर हम सहज ही एक बात को समझ सकते हैं कि जो बड़ी आकार की कथायें हैं, उनका कलेवर मुख्यरूप से अनेक छोटी छोटी कथाओं से [अभिप्राय रूप में] गुंथा हुआ है। वस्तुतः छोटी छोटी कथाओं के सुन्दर पुष्पों को एक माला में पिरोने का प्रयत्न मिलता है। हमें अनेक ऐसी लोक कथायें भी मिलती हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार के अभिप्रायों को एक तर्कबद्ध कथा में जोड़ दिया गया है। राजस्थान की प्रसिद्ध लोक कथा चौबोली इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस कथा में चार कथाओं का संकलन प्राप्त होता है और उसे एक प्रमुख कथा-सूत्र में पिरोया गया है। इस कथा के विभिन्न कथानक भी मिलते हैं। कहीं राजा भोज का नाम आता है तो कहीं एक सामान्य ठाकुर का नाम भी है। इसी प्रकार चार भिन्न कथाओं में भी समान प्रकृति की विभिन्न कथाओं के रूप भी आ जाते हैं।

लोक कथा के पात्रों की दुनिया में विश्व के सभी सजीव प्राणी व निर्जीव तथ्य समाहित हो जाते हैं। मनुष्य के पात्रत्व के अलावा पशु-पक्षी एवं सरीसृप वर्ग के सभी प्राणी, वनस्पति से पेड़ पौधे व बेल तथा कीट वर्ग से कीड़े, मकोड़े, पतंगे आदि सभी जीवधारी प्राणी इनमें आ जाते हैं। इतना ही नहीं प्रकृति के सभी वृहत्तर तथ्य यथा चंद्र, सूर्य तारे, समुद्र, जल, अग्नि, वायु भी पात्र के रूप में लोक कथा के निर्माण में सहायता देते हुये मिलते हैं। पहाड़, नदी, नाले, तालाब, पत्थर, सूने मकान, कुए, बावड़ी आदि निर्जीव पदार्थ भी कथा की

आत्मा में बोलते हुए पात्र के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त मनुष्य के विश्वासों एवं धारणाओं के कारण जो अलौकिक व्यक्तित्व से अलंकृत देवी-देवता या दैत्य, डाकिन, स्यारी बनकर समाज के सामने आ गये हैं—वे भी पात्र-रूप में अपना योगदान प्रदान किया करते हैं। अतः लोक कथा के पात्रों की इस दुनियां में कोई भी तथ्य नहीं बचता जो विश्व की निर्मिति में किसी न किसी रूप में सहायक सिद्ध हुआ हो।

लोक कथा के पात्रत्व में दो विशिष्टताओं की और ध्यान अवश्य आकर्षित होता है। प्रथम: पात्र चाहे किसी सामाजिक वर्ग एवं प्राकृतिक सत्व से आया हुआ हो, वह हर रूप में मानवीय गुणों या अवगुणों से अलंकृत रहता है और द्वितीय: हर पात्र सामान्य जन की मनःस्थिति और व्यावहारिकता से परे नहीं होता। इन दोनों ही विशिष्टताओं की स्थापना के लिए लोक कथाओं के पात्रों ने अनेक बार प्रतीक शैली का सहारा भी लिया है।

लोक कथाओं के पात्रों के चरित्रचित्रण की दृष्टि से सीधे दो रूप हैं। एक चरित्र यदि अच्छा है, सद् है, कुशल है तो वह संपूर्ण कथा में अपने चरित्र की श्रेष्ठता को कायम रखता है। उसका कोई कार्य, कोई व्यवहार, कोई चारित्रिक अंश ऐसा नहीं होता जो सद् की सापेक्ष-मान्यता का खंडन करता हो। इसी प्रकार दूसरा चरित्र जो बुरा होगा, असद् होगा तो वह पूर्ण कथा में कुटिलता, प्रपंच और बुराई का ही कार्य करता रहेगा। लोक कथा के चरित्र-चित्रण में अच्छाई और बुराई की यह स्पष्ट रेखा अवश्य अंकित रहा करती है। इन दोनों चारित्रिक विशेषताओं में विजय हमेशा सद् की बताई जाती है। लोक कथाओं के चरित्रचित्रण में हमें पात्र के अंतर्द्वंद्व के दर्शन नहीं होते। साहसी और वीर नायक निर्द्वंद्व रूप से पहाड़ों को पार कर लेता है, समुद्र में मार्ग बना लेता है और अलौकिक पात्रों को जीत लेता है। वह एकाकी ही जिस रूप में अपनी सत्ता को स्थापित करने में समर्थ बन जाता है, उसी सत्ता के प्रति श्रोता की ललक, जिज्ञासा और सहानुभूति बनी रहती है।

लोक कथाओं में वातावरण का मूल आधार स्थानीय विशेषताओं में निहित रहता है। वस्तुतः लोक कथाओं की विश्वजनीनता में यदि उसे राष्ट्रीयता की सीमा में कोई तथ्य ला सकता है तो वह कथा का वातावरण ही है। राष्ट्र या प्रदेश की भौगोलिक व प्राकृतिक स्थिति, ऐतिहासिक मान्यतायें, सांस्कृतिक उपलब्धियां एवं सामाजिक मानस के गठन के जो तत्व होते हैं, वही तत्व लोक कथा को अपने विशिष्ट वातावरण में घुलामिला कर प्रस्तुत किया करते हैं। पात्रों के नाम, जाति, उनके रहने के स्थान, उनके व्यवहार, उनके पेशे और उनकी प्राकृतिक परिस्थितियां कथा के परिवेश को अपने ही वातावरण में प्रस्तुत किया

करनी है। इसीलिए लोक कथाओं के अध्ययन में एक राष्ट्र या प्रदेश से अन्य राष्ट्र या प्रदेश की यात्रा पर विचार करना पड़ता है तो उसके वातारण संबंधी तथ्यों के आवरण को हटाना आवश्यक बन जाता है।

शास्त्रीय कथा साहित्य में कथोपकथन एवं शैली की समस्या को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि कथा के लेखन में लेखक इन दो रूपों को अपनी वैयक्तिक विशिष्टता के रूप में अभिव्यक्त किया करता है। लोक कथा का मूल-रूप लिखित नहीं होता। वह मुख्यतया मौखिक होता है, अत: उसमें कथोपकथन का सौन्दर्य और शैली का गुण सुनाने वाले की योग्यता पर निर्भर करता है। जहां तक कथा के कथन का प्रश्न है, लोक कथाकार निश्चय ही संपूर्ण कथा को कथोपकथन की प्रणाली द्वारा ही व्यक्त किया करता है। इन कथोपकथनों के सौन्दर्य से कहानी का कहा जाना सुन्दर व सुष्ठ बना करता है। लिखित कथाओं में जो निश्चितता होती है, उसका मौखिक कथा में अभाव रहता है। मौखिक कथाकार का सबसे बड़ा संबल ही कथोपकथन रहा करता है। कथोपकथन के माध्यम से वह चरित्र की विशिष्टताओं को दर्शाया करता है। ठीक यही तथ्य शैली को समझने के लिए काम का समझना चाहिये।

यहां शैली संबंधी एक विशिष्ट समस्या के प्रति भी कुछ सतर्क होकर सोचने की बात है। मौखिक रूप से कथा कहने वाला, किसी भी रूप में अपने व्यक्तित्व की छाप, कथा से नहीं हटा सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे लेखक अपनी सृजित कथा में अपने व्यक्तित्व से नहीं बच पाता। एक ही कथा को मौखिक रूप से दो कथाकारों से सुनने पर यह तथ्य एकदम स्पष्ट हो सकेगा। शैली को जानने के लिए यदि कोई भी महत्वपूर्ण बात है तो वह वस्तुत: रचित-वस्तु में व्यक्तित्व की विशिष्टता ही है। लोक कथा में व्यक्तित्व की विशिष्टता का अंश उसी व्यक्ति में निहित होता है जो कथा कहता है। कथा के कहने वाले की शैली में ही कथा का सौन्दर्य सन्निहित रहता है। इस दृष्टि से प्रत्येक लोक कथा, वह चाहे कितनी ही छोटी या बड़ी क्यों न हो, उसमें पीढ़ियों से कहने वाले कथा-कारों का व्यक्तित्व भी मिला हुआ प्राप्त होता है। किन्तु यहीं, यह प्रश्न भी उठ सकता है कि शैलीगत वैयक्तिकता के बावजूद भी लोक कथा का स्वरूप ज्यों का त्यों किस प्रकार रह जाता है? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर मिल सकता है कि लोक कथा के घटनात्मक गठन में इतनी शक्ति होती है कि वह 'व्यक्तित्व' के तत्व को अपने पर हावी नहीं होने देती और अपने स्वरूप को सुरक्षित रख लेती है। किन्तु इस बात की स्वीकृति के बाद भी लोक कथा के कहने की शैली के महत्व को कम नहीं माना जा सकता।

कथा के तत्वों में अन्तिम प्रश्न है—उद्देश्य का। लोक कथा का प्रारंभ,

मध्य और अंत मनुष्य की सद्वृत्तियों की खोज और स्थापना के लिए होता है और उसी उद्देश्य की परिपूर्ति उसका एक मात्र लक्ष्य रहा करता है।

लोक कथाओं में अभिप्राय — लोक कथाओं का कथात्मक कलेवर मुख्यतया विभिन्न अभिप्रायों से गठित रहता है। इसलिये अभिप्राय का अर्थ समझ लेना अनिवार्य होगा। अभिप्राय वस्तुतः उस घटना एवं कथात्मक तत्व का नाम है जो विभिन्न लोक कथाओं में, अपने ही रूप में, निरंतर अथवा बारंबार आते हैं। लोक कथाओं की मौखिक परंपरा के साथ यह बात जुड़ी हुई है कि एक ही प्रकार की घटना अपने ठीक उसी रूप में बराबर पुनरावृत्त होती रहती है। इस पुनरावृत्ति का अर्थ यह नहीं होता कि समान-अभिप्राय की पूर्ण कथायें एक ही प्रकार की हों। वस्तुतः एक ही प्रकार की घटना को विभिन्न कथाओं में विभिन्न प्रकार से जोड़ दिया जाता है। एक ही कथा में अनेक अभिप्रायों का प्रयोग होता है और कुछ ऐसी छोटी कथायें भी हो सकती हैं जिनमें एक ही अभिप्राय का उपयोग मिलता हो। अभिप्राय से केवल इतना ही अर्थ संकेतित है कि विशिष्ट घटना का एक से अधिक कथा में घटित होना।

यदि हम अभिप्राय को इस मान्यता की दृष्टि से संपूर्ण भारतीय एवं विश्व की लोक कथाओं में देखने का उपक्रम करें तो सहज ही ज्ञात हो जाता है कि 'अभिप्रायों' की रचना और उपयोग में लोक वाङ्गमय विश्वजनीनता का पुष्ट प्रमाण है। अभिप्रायों के अध्ययन के साथ ही ज्ञात हो जाता है कि संपूर्ण विश्व के लोक कथा साहित्य में समान अभिप्रायों का निर्द्वंद्व प्रयोग किया जा रहा है।

अभिप्रायों को समझने के साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मानक कथा [टेल टाईप] और अभिप्राय के अर्थ में भिन्नता है। टेल टाइप्स को समझने के लिए कथा को टुकड़े-टुकड़े में नहीं देखा जाता। वहां कथा के घटनात्मक गठन की एकता के आधार पर ही उनका वर्गीकरण किया जाता है। एक कथा का मानक रूप एक ही होगा किन्तु बहुत संभावना है कि उसी कथा में अनेकानेक अभिप्राय समाहित हों।

विश्व विख्यात लोक साहित्य के विद्वान स्टिथ थोमसन ने अभिप्रायों पर वृहद ग्रंथ की रचना की है और उन्होंने अभिप्रायों को विशिष्ट विषयों के अनुरूप संख्या एवं क्रम के अनुसार प्रकाशित किया है। लोक कथाओं के अध्येता अब मुख्यतया उन्हीं के वर्गीकरण के आधार पर अभिप्रायों की चर्चा किया करते हैं। टेल टाइप्स के सिलसिले में अेंटी आर्ने का विशिष्ट योगदान है।

भारतीय साहित्य लोक कहानियों से भरपूर है। इस विषय में पुराण, उपनिषद्, जातक, कथासरित्सागर एवं कथा कोष आदि मुख्य ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों की लोक-कथाओं में मूल अभिप्राय बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

इनकी कई श्रेणियां हो सकती हैं। अभिप्राय कथा का एक सजीव एवं मुख्य अंग है। इसे कथा की परिणति या गति भी कह डालें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हिन्दी में इन तत्वों को अभिप्राय, मूल अभिप्राय, प्रेरक अभिप्राय आदि नामों से भी पुकारा जाता है। डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम हमारा ध्यान इनकी ओर आकर्षित किया था। यह कहानी की परमोदात्त भावनायें हैं।

पिछले कई वर्षों से पाश्चात्य विद्वान ब्लूम फील्ड, बेनिफी, टॉनी, पेंजर, आर्ने एवं थोमसन आदि लोक साहित्य विद्वानों ने विश्व की लोक कथाओं का अध्ययन करके कुछ अभिप्राय [Motif] निश्चित किये हैं। अभिप्राय सब देशों की लोक-कथाओं में प्रायः समान रूप से पाये जाते हैं। मोटेतौर पर ये दो प्रकार के होते हैं। एक लोक-विश्वास पर आधारित और दूसरे कल्पित। राजस्थानी लोक-कथा महाभारतीय लोक-कथा का परिवर्तित रूप है। इन लोक कहानियों में ऐसे असंख्य अलौकिक अभिप्राय प्रचलित हैं, जो प्राचीन कहानियों से आये हैं। ये मूल कथानक भी कहलाते हैं। इनमें अपना सर्व-संपन्न सामाजिक जीवन चित्रित है। मानव और समाज का अध्ययन कहानी की आत्मा से संलग्न है। अतः भाषा-शास्त्र एवं समाज-शास्त्र के अध्ययनार्थ राजस्थानी लोक कहानियों का बड़ा महत्व है। कथा अध्ययन के साथ मूल-अभिप्रायों का अध्ययन भी आवश्यक है। इनमें आया हुआ एक अभिप्राय, अनेक लोक कथाओं से स्पष्ट होता है। कहानियों के एक जैसे तन्तुओं से उनके नाना भांति के स्वरूप सामने आते हैं। इसलिए मानव का स्वाभावगत अध्ययन लोक कहानियों के मूल-अभिप्रायों के द्वारा संपन्न होता है। मानव जीवन के ये तत्व [मूल-अभिप्राय] हमारे प्राचीन साहित्य से श्रृंखलित तथा संबंधित हैं। कई जगह इनको रूढ़ि या कथानक-रूढ़ि भी कहा गया है। राजस्थानी लोक गीतों में अनेक वर्णनात्मक रूढ़ियां भी पाई जाती हैं। अंग्रेजी के मोटिफ शब्द के लिए कथानक रूढ़ि, मूल-अभिप्राय आदि शब्दों का प्रयोग होने लगा है। किन्तु मोटिफ के लिए 'प्ररूढ़ि' शब्द अधिक उपयुक्त है और यही शब्द प्रकृष्ट रूढ़ि तथा कथांकुर दोनों के अर्थ में व्यवहृत होना चाहिये। रूढ़ि और अभिप्राय का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। इनका कार्य लोक कथाओं के मर्म का उद्‌घाटन करना है। लोक कहानी की ही भांति मूल अभिप्राय भी सार्वभौमिकता के पक्ष में होते हैं। किसी एक अभिप्राय को लेकर हम उसकी चर्चा करते हैं तो पचासों कहानियों में वे हमें प्राप्त हो जाते हैं। अतः यहां लोक-कहानियों के कुछ मूल-अभिप्रायों को प्रस्तुत किया जा रहा है :

१. हाथी द्वारा राजा का निर्वाचन— राजस्थान की अनेक कथाओं में अभिशप्त राजकुमार या राजा को किसी अन्य राज्य में अपना आश्रय लेना पड़ता है। उन

राज्यों के नगर में राजा का चयन किया जाना होता है और हाथी के सूंड में माला डालकर घुमाया जाता है। यह घटना ही अभिप्राय कहलाती है।

२. लाखीणो दूहो— अनेक कथाओं में एक दोहे को बेचने व खरीदने का उल्लेख आता है। इस दोहे में कुछ सीख दी हुई होती है जो कथा का पात्र अपने जीवन में उतारता है और उससे लाभान्वित होता है। इस दोहे को 'लाखीणा दोहा' कहा जाता है। एक ऐसा ही दोहा है—

> बैठक बैठज्यौ, पाव ठांमज्यौ, त्रिया मारग टाळ
> पहरौ देतां सांचौ दीजौ, आई रीस निवार

इसमें बैठते हुए सतर्कता बरतनी, पांव से चोट करके स्थान को देखना, मार्ग में मिली अनजान स्त्री से बचकर निकलना, सच्चा पहरा देना और क्रोध को रोक कर काम करने के निर्देश दिये गये हैं। घटनाओं के क्रम में इन्हीं निर्देशों से पात्र सफलता को प्राप्त करता है।

३. विवाहर्थियों के नाग-पाश — इस अभिप्राय के अन्तर्गत लोककथाओं की वे घटनायें आती हैं जहां नायिका किन्हीं शर्तों की परिपूर्ति के बाद विवाह को स्वीकार करती हैं। यदि शर्तों अथवा प्रश्नों का उत्तर सही नहीं बनता है तो विवाहर्थियों को कैद होना पड़ता है या मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है। ऐसी घटनाओं से अनुरंजित अनेक कथायें राजस्थान में प्रचलित हैं।

४. जादू की डोरी — इस अभिप्राय की घटना में किसी नायक के गले में डोरी को बांधकर पक्षी बना लिया जाता है। डोरी के खुलते ही वह पुन: पुरुष बन जाया करता है।

५. हंसना और रोना—मृत्यु दंड या अन्य किसी कारण से पात्र अपनी मृत्यु की संभावना पर रोता और हंसता है। इस रोने और हंसने का कारण पूछने पर विभिन्न प्रकार के उत्तर मिलते हैं। एक कथा में ठग के घर में एक व्यक्ति को ठग की पुत्री मारने के लिए पहुंचती है। वह व्यक्ति पहिले तो रोता है फिर हंसता है। उसे हंसते देखकर ठग की पुत्री पूछती है कि तुम मृत्यु को देखकर भी हंस क्यों रहे हो ? वह उत्तर देता है कि पहिले तो मैं मृत्यु के भय से रोया था लेकिन फिर यह समझकर हंसने लगा कि तुम मुझे जिन लोगों के कहने से मार रही हो , क्या वे तुम्हारे पाप के भागीदार बनेंगे ? इस उत्तर को सुनकर वह ठग की पुत्री उसे जीवित छोड़ देती है। ठीक यही घटना विभिन्न रूपों में अन्य कथाओं में भी मिलती हैं।

६. अपने प्राणों को दूसरे स्थान या प्राणियों [पशु पक्षियों] में रखना—दैत्यों की कथाओं में हम देखते हैं कि उनके प्राण अवश्य ही किसी सुरक्षित स्थान अथवा

किसी पक्षी में सुरक्षित रहते हैं। नायक इन्हें मारने के लिए ऐसे छद्म स्थान व प्राणी को प्राप्त करने या मारने का उपक्रम करता है और सफल होता है। अपने अनिष्ट की आशंका से प्राणों को अन्यत्र रखा जाना एक अभिप्राय माना गया है।

७. **प्रेत रक्षार्थ लगाये गये पेड़ से जीवन एवं मृत्यु का संकेत** – प्रेत की अनिष्टकारी क्रिया को व्यर्थ करने के लिये जादू-टोनों वाले संरक्षक पेड़ मनुष्य को सावधान करते हैं।

८. **लौटने की प्रतिज्ञा** – इसे हम सत्य प्रतिज्ञा भी कह सकते हैं। पुराण (स्कंध) और बौद्ध कथाओं में पशु-पक्षी भी मानव वाणी में बात करते हैं। वे शुद्ध भाव से अपने वायदे के अनुसार शिकारी या व्याध के पास वापिस पहुंच जाते हैं।

९. **रूप परिवर्तन** – इसको लिंग परिवर्तन या योनि परिवर्तन भी कह सकते हैं। इनमें मनुष्य से पशु-पक्षी और पशु-पक्षियों से मनुष्य बन जाने संबंधी परिवर्तन ही सम्मिलित नहीं है अपितु स्त्री से पुरुष या पुरुष से स्त्री बन जाना भी सम्मिलित है। ऐसे अनेक अभिप्राय पुराण और लोक-कथाओं में मिलते हैं। दुर्गा सप्तशती में महिषासुरवध और जैन-ग्रंथ कथा-कोष की वीरांगद और सुमित्र की कहानी में रूप परिवर्तन के उदाहरण प्राप्य हैं। रूप परिवर्तन यदि अल्पकालीन न रह कर स्थायीत्व ग्रहण करले तो उसे योनि परिवर्तन कहा जायेगा।

१०. **लिंग परिवर्तन**–राजस्थानी लोक-कथाओं में लिंग परिवर्तन संबंधी अभिप्राय बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अनेक रूप मिलते हैं। वैताल पच्चीसी, कथा-कोष, महाभारत (शिखंडी कथा और नारद कथा) आदि में भी इसके बहुत से उदाहरण प्राप्त हैं। राजस्थान के इस मूल-अभिप्राय के कुछ निष्कर्ष देखिये–[क] तीर्थ या किसी सरोवर में नहाने से लिंग परिवर्तन होता है और कहीं नहीं भी होता है। जैसे–वन्दर वन्दरी की कथा। [ख] कहीं कहीं लिंग परिवर्तन वास्तविक न होकर बहाना मात्र होता है। जैसे – लड़की वीर वेष धारण करके वीरोचित कार्य करने में सफल होती है। [ग] कहीं शिखंडी की कथा की तरह लिंग परिवर्तन या विनिमय का स्वरूप धारण कर लेता है। [घ] धार्मिक कथाओं में किसी देवता के श्राप से लिंग परिवर्तन होता है या किसी के शिक्षार्थ। यह मूल-अभिप्राय विश्व भर के देशों में पाया जाता है।

११. **होड़ अथवा स्पर्द्धा** – दो व्यक्तियों में होड़ लग जाती है और आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश की जाती है। यह पारस्परिक स्पर्द्धा ही कथा को गति देती है। इस अभिप्राय को डांडा-मेड़ी कहा जाता है। श्री कन्हैयालाल

सहल ने संयोग और वियोग की करामात वाले डांडा मेड़ी की कथा का वर्णन किया है। मेरे पास ऐसी अक्ल और भाग्य की होड़ (स्पर्द्धा) की कई कहानियां हैं। ये आपस में एक दूसरे से बढ़कर सिद्ध होना चाहते हैं। इनमें न्याय-निर्वाह और सुख-सन्तोष की समाप्ति है। इनमें विशेष बात यह है कि अक्ल और भाग्य तथा संयोग-वियोग जैसे अमूर्त भावों को मूर्त (मानवीकरण) रूप दिया जाता है। अमूर्त को मूर्त द्वारा ग्रहण करना कठिन से सरल की ओर जाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति है। कथा का स्तर सामान्य से ऊपर उठकर विशिष्टता के कारण पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है।

१३. असंभव द्वारा असंभव का निराकरण — कई लोक कथाएं ऐसी हैं जिसमें एक व्यक्ति किसी असंभव क्रिया द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को ठगना चाहता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति अन्य असंभव क्रिया के सहारे पहले को परास्त करने में सफल हो जाता है। कहीं कहीं इस कार्य में उसे तीसरे व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। इनमें चूहों द्वारा लोहा, चील द्वारा कुँवर और बिल्ली द्वारा ऊंट को उड़ा ले जाने की आश्चर्यजनक बातें होती है!

> जाट कहै हे जाटणी, ई गांव में रहणो।
> ऊंट बिलाई ले गई, हांजी हांजी कहणो॥

कूट बणिज जातक, पंचतंत्र, कथासरित्सागर, जैन साहित्य एवं लोक-कथाओं में ऐसी अनेक घटनायें हैं। ठग और बुढ़िया, सुनार व गुरूजी, ब्राह्मण एवं जजमान की भी ऐसी ही कथाएं हैं।

> करता रै संग कीजियै, सुण रै राजा भील।
> सोनै नै घुण लागगियौ, तौ छोरौ लेगी चील॥

आवश्यक चूर्णि में चतुर रोहक की कथा चतुराई भरी है। एक सेठ की लड़की की सगाई, गांव के पानी का प्रभाव, देवर-भौजाई, सूतां री पाडा जणै, बंदरिया रानी, दुहागण रै बिल्ली रो जन्म, ठाकुर एवं जाट, राजपूत और तेली, जाट और मियां आदि अनेक कथाओं में असंभव द्वारा असंभव का निराकरण मिलता है। इनमें नीति के मूल-अभिप्राय बुद्धि व्यवहार सहित चित्रित रहते हैं।

१४. हंस कुमारी — हंस कुमारी नामक मूल अभिप्राय से संबंधित अनेक लोक-कथाएं हैं। उनमें हंसगामिनी कुमारी का लावण्य, सुन्दर वेश, हाव-भाव, अदा, पकड़े जाने का ढंग, स्थान की महत्ता आदि सब बातें आकर्षण में वृद्धि करती हैं। कथा का नायक सरोवर में स्नान करती हुई अप्सराओं को देखता है और किसी एक के वस्त्र चुराकर उसे पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहता है। वह किसी शर्त पर तैयार होती है। शर्त तोड़ देने पर वह सुन्दरी अदृश्य हो जाती है। भारत

के प्राचीनतम वैदिक और पौराणिक साहित्य में इस प्ररूढि के अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं । राजस्थानी लोक-कथाओं के प्रसंग में हम धांधल और अप्सरा को निष्कर्ष रूप से हंस कुमारी नामक अभिप्राय में लेते हैं । हम उस लोक वात का थोड़ा अंश उद्धृत करते हैं – " धांधलजी महेवै रहै । सुए उठै सूं अठै पाटण रै तळाव आय उतरिया । अठै तळाव ऊपर अपछरा ऊतरै । ताहरां धांधलजी री डेरां थका अपछरावां ऊतरी । ताहरां धांधलजी अपछरावां देखनै एकै अपछरा नूं आपड़ राखी । ताहरा अपछरा बोली—कहि बड़ा राजपूत थैं बुरी कीनी । मनै [अपछरा नै] अपड़ी न हूंती । तठै धांधलजी कही जु तू म्हारै घरवास रेवैं । तद अपछरा वोली—कहीं जै थां म्हारौ पीछौ संभाळियो तो हूं थासूं परीजाईस ।

१५. सत्य क्रिया—यह एक महत्वपूर्ण अभिप्राय है । राजस्थानी लोक साहित्य में इसे किरिया वीज, दिव्य और दिव्य परीक्षा आदि नामों से जानते हैं । कथा को गति देने में यह प्ररूढ़ि अत्यन्त उपयोगी है । वेद-पुराणों की कथाओं के आधार पर राजस्थानी लोक-कथाओं में सेठ पुत्र बंशी और नवल सुनार की कथा सत्य-क्रिया का उदाहरण है । इस कथा में सत्य क्रिया के द्वारा मारा हुआ सेठ पुत्र वंशी जीवित हो गया और उसने अपने लोभी मित्र को भी जीवित करवा लिया । यहां सत्य क्रिया नामक मूल-अभिप्राय सत्य की अप्रतिहत शक्ति का ज्वलन्त उद्-घोष है ।

१६. भाग्य लेख — राजस्थानी लोक में विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य का भाग्य वेहमाता [विधाता] स्वयं अपने हाथ से जन्म के पश्चात छठी रात को उसके घर आकर लिखती है :

> विधना रै हाथां लिख्या , छठी रात रा अंक
> राई घटै नै तिल बधै , रह रै जीव निसंक

हमारे यहां इस विषय को स्पष्ट करने वाली अनेक बातें प्रचलित हैं । श्री मनोहर शर्मा ने एक साधू और उसके जाट सेवक की लोक कथा बड़े सुन्दर ढंग से लिखी है । राजपूत सरदार और ब्राह्मण पुत्र की चंवरी में मृत्यु नाम की कहानी भी भाग्य लेखों में सम्मिलित है ।

वेमाता के लेख को होणी, भावी, भाग्य , लक्ष्मी आदि कई नामों से सिद्ध किया गया है । इन सबकी अलग अलग कहानियां हैं । यहां वेमाता को लोक-देवी के रूप में मान्यता प्राप्त है । अत: भाग्य लेख अमिट माना जाता है । चतुराई , चरित्र वल एवं उद्योग से भाग्य को वदल भी सकते हैं ।

१७ भौजाई का ताना —- राजस्थानी वातों में ऐसी अनगिनत कथाएं मिलती

हैं, जिसमें भौजाई के ताने को सुनकर देवर विवाह अथवा किसी साहसिक कार्य की सिद्धि के लिए घर से निकल पड़ता है। लोक-कथा में रतनसिंहजी को उनकी भौजाई अपनी बहिन विवाह देने की बात कहती है। रतनसिंह के आनाकानी करने पर भौजाई ने ताने के साथ कहा जान पड़ता है कि पूंगलगढ़ की पद्मनी पंचफूला के साथ ही विवाह करेंगे। खींवे-बींजे की बात में खींवा की स्त्री अपने देवर बींजा को चित्तौड़ से घोड़ी लाने का ताना देती है। हिन्दी के कवि भूषण के विषय में भी ऐसी चर्चाएं हैं। यह अभिप्राय जीवन की यथार्थता पर अवलम्बित है और मनोवैज्ञानिक, प्ररूढ़ियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। व्यंग मानव जीवन में बड़ा प्रेरणाप्रद होता है। व्यंग कसा जाता है, तब उसको निर्मूल करना ही पड़ता है।

१८. **दृष्टि गर्भ** — किसी पुरुष पर आकर्षित होकर देखने से गर्भाधान का वर्णन लोक-कथाओं में सर्वत्र मिलता है। मगर राजस्थानी लोक कथाओं में नारी किसी सर्प जैसे जीव पर आकर्षित हो जाती है। जिससे गर्भाधान होकर पुत्र रत्न की उत्पत्ति होती है। ऐसी लोक कथाओं को दृष्टि गर्भ नामक प्ररूढ़ि की पंक्ति में लिया जाता है। लोक कथाओं में दृष्टि गर्भ अभिप्राय का अंगीभूत अभिप्राय अमृत, साधु का दिया चिटिया और आम हैं।

१९. **उपश्रवण** — यह बहुत प्राचीन मूल अभिप्राय है। छान्दोक्ष्य उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय में राजा जानश्रुति और रेक्व के उपाख्यान में यह वर्णन मिलता है। राजस्थानी की अनेक लोक कथाएं इस अभिप्राय के संबंध में प्रचलित हैं। नदी में मुर्दा जा रहा था। उसकी जांघ में चार लालें थीं। जिनकी बात आधी रात के समय एक सियार ने पशु पक्षी की बोली जानने वाली एक कोक-शास्त्र पढ़ी साहूकार लड़की को सुनाई। उसीको एक बार एक कौए ने सूखे नीम वृक्ष के नीचे चार मोहरों के बर्तन बताये। जैसे मनुष्य पशु-पक्षियों की बोली जान लेते हैं। वैसे पक्षियों में भी बड़ी सूझ बूझ होती है।

> कोक पढ्योड़ी कांमणी, कौवा सुगन विचार।
> सूखै नीम री जड़ां में, नीचै चरू है चार॥

ऐसी एक लोक कथा राजा भोज की भी है। राजा किसी जन्तु की बोली सुनकर हंसता है। रानी इस पर रूठ जाती है। तब उसको हंसने की बात बताने के लिए दोनों गंगा को चलते हैं। रास्ते के किसी शहर के पास एक बकरा अपनी बकरी की मांग को राजा भोज की बेवकूफी का उदाहरण देकर टालता है। राजा उन दोनों की बातें सुनकर वापस घर आ जाता है। ब्लूम फील्ड का विचार था कि मूल अभिप्रायों में उपश्रवण नामक अभिप्राय का स्थान उसकी सर्व सामा-

न्यता और बहुमूलता के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहेगा।

२०. यक्ष - यक्षिणि सिद्धि — वैदिक उपासना पद्धति के अनुसार जगह जगह देव स्थान बने और यक्षों की पूजा शुरू हुई। यक्षों को वीर और पीर भी कहा जाता है। राजा विक्रमादित्य और रिसालू के वीर वश में थे। वे उनसे कई अनहोने काम भी करवा लिया करते थे। श्री वाशुदेव शरण अग्रवाल और डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी ने यक्ष नामक तथ्य एवं मूर्तियों की खोज की है। कथाओं में ये लोक तत्व [अभिप्राय] खूब मिलते हैं। महाभारत में युधिष्ठिर यक्ष प्रश्नोत्तरी दृष्टव्य है। इस विषय में राजस्थानी व्रत कथाएं और पुण्य कथाएं ध्यान देने योग्य हैं। यक्ष देव का स्थान किसी वृक्ष में माना जाता है। अतः पीपल पंथवारी सींची जाती है। नगर बसेरा नाम के नगर में घुसने से प्रथम वृक्ष पूजा की जाती है। — " नगर बसेरा जो करै सौ नर धोवै पाव, ताता मांडा लापसी देसी म्हारी माय, माय न देसी मायसी देसी द्वारका रौ नाथ, बैकुंठां रा वास मीठा-मीठा गास, पोढण नै सुख बास।" यक्ष क्रूर एवं स्वामी प्रकृति के भी माने गये हैं। लोगों को धन भी देते हैं। आधुनिक समय में पेड़ों में भूतों का मानना यक्ष प्रथा का ही पालन है। ये भूत लोगों के सिर चढ़ते हैं। यहां भूतों की भयंकर प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। भूत भी वश में होकर धन देते हैं। ऐसे धन देने वाले देवों में विनायक, वृढ़ विनायक, क्षेत्रपाल, हनुमान, भैरूंजी की कथाएं मिलतो हैं। लोक कथाओं में यक्षिणि-सिद्धि की बातें भी मिलती हैं। पद्मावत में राघव चैतन्य को यक्षिणि सिद्धि का वरदान बताया गया है।

राघोर पूजा जाखिनि, दूइज देखावां सांज।
पंथ ग्रंथ ने जे चल हि, ते मूलहि बनमांज॥

पिता का अपमान होने पर पंडित के प्रथम लड़के ने आमावश्या की रात को चन्द्रमा दिखा दिया। दूसरे ने कच्चे सूत के सहारे आकाश में जाकर अपने अलग अलग अंग गिराकर इन्द्रजालिक खेल दिखाया और तीसरे ने जल दृष्टि से राजा को प्रभावित किया। ये सब यक्ष-सिद्धि के कार्य प्रसिद्ध हैं। याद करने पर ये यक्ष या वीर तुरन्त हाजिर होकर बड़े से बड़े कार्य को रात भर में पूरा कर देते हैं। अतः राजस्थानी लोक कथाओं में यक्ष तत्व बड़ा रोचक है। यहां यक्ष-भूतों और यक्षनियों की अनगिनत कथाएं हैं।

२१. सृष्टिकर्ता के शत्रु — दुर्गा सप्तसती की लोक कथाओं में इस मूल-अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। सृष्टिकर्ता के निद्रा मग्न होने पर शत्रु उपद्रव करने लगते हैं। यदि पौराणिक कथाओं का विश्लेषण किया गया तो उनमें लोक कथाओं के ऐसे अनेक मूल-अभिप्राय उपलब्ध हो सकेंगे।

२२. **कमल पूजा** — राजस्थानी में कमल का अर्थ शीश [मस्तक] है। और यहां के साहित्य में कमल पूजा एक विशिष्ट अभिप्राय है। मूंहता नैणसी री ख्यात का थोड़ा उदाहरण देखिये– "तद बैरसी माता री इच्छना मन में करी–म्हारै बाप रौ वैर वळै। गैचन्द हाथ आवै तौ हूं कमल पूजा करनै श्री सचियाजी नूं माथौ चढाऊं -।" उक्त ख्यात में वीरों के कमल पूजा संबंधी अनेक प्रसंग आते हैं। जगदेव पंवार की बात में, जगदेव कह्यौ — "जो म्हारौ माथौ लौ नै सिघराव री ऊमर बधारौ तौ म्हारौ माथौ तैयार छै।" कमल पूजा अभिप्राय शक्ति पूजा का शाब्दिक रूपान्तर है। यहां इसका क्रियात्मक प्रयोग भी मिलता है।

कर अेक कमळ धरै है, कर अेक साहि कटारियां।
बखाणूं वलै है केहो हाथ हमीरियां ॥

वीर हमीर अपना कमल (शीश) कहने पर एक हाथ में लेकर दूसरे हाथ कटारी चलाकर शुत्रु को समाप्त कर देता है। राजस्थान में ऐसे योद्धा को जुझार के नाम से पुकारा जाता है जो बिना सिर की धड़ द्वारा पराक्रम कार्य दिखा जाते हैं। ऐसा रूप पणिहारिने देखती हैं।

"बिना सिर रौ मोटचार, लुगाई जाय, देखौ हे भेणौं, पणियारी तो पाणी काढरी" [जन काव्य पृथ्वीराज सूरजां] मूल रूप कमल पूजा एक विशेष भावना का अभिप्राय है।

२३. **पेंप रा फूल**— राजस्थानी लोक बातों में वर्णित पेंप के फूलों का अभिप्राय पारिजात के फूलों से है, जिनको पा लेना एक कठिन कार्य है। फिर भी नायक घर से निकलता है और अनेक कष्ट उठाकर भी इस कार्य में सफल होता है।

२४. **भलाई व्यर्थ नहीं जाती**— इसमें शंख-डफोल और सर्पों की लोक-बातें हैं। शैला, कछुआ और सर्प अपना उपकार करने वालों का उपकार करते हैं।

२५. **नटो तो कहो मत** —पशु पक्षियों की भाषा को समझना भी एक अत्यन्त औत्सुक्यवर्धक मूल अभिप्राय है। इसमें भेद की बातें होती हैं। भेद-रखने की कठिनाई और उसको प्रकट करने का खतरा। संक्षेप में इस अभिप्राय का नाम 'नटो तो कहो मत' हो सकता है। "अरू वार नटिनै कहियां थांरौ मरण हुसी।" यह अभिप्राय इटली की लोक कथाओं में भी पाया जाता है। और खर-पुत्रक जातक व महाकौशळ में भी मिलता है। राजस्थानी की चौबोली कथा को इस मूल अभिप्राय में नई परिणिति दी गई है। इसके साथ कई गौण अभिप्राय भी आये हैं। जैसे १. पशु-पक्षियों की भाषा एवं पन्द्रहवीं विद्या २. मौन धारण तथा मौन भंग ३. विवाहार्थी नागपाश ४. प्राण प्रतीक ५. निषिद्ध कक्ष ६. मृत्यु पत्र ७. वाक्छल। डॉक्टर सहल ने 'नटो तो कहो मत' नाम से

एक पुस्तक लिखी है। राजस्थानी लोक कथाओं में इस मूल-अभिप्राय का प्रयोग बहुत होता है। परम्परित कथाओं में बार बार आवृत होने वाले सरल प्रत्यय भी मूल अभिप्रायों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। जैसे—फूला - मालिन, ठग-ठगनियां, परियां, जादूगरनियां, दैत्य - दानव, सौतेली मां आदि मूल-अभिप्राय कहे जा सकते हैं। इनके अलावा पूर्ण खोज करने पर निम्नलिखित मूल-अभिप्राय और मिलते हैं। १. सदाव्रत - बिछुड़े हुए लोगों को मिलाने वाले स्थान २. राम घोटे से सहायता लेना ३. मृतक को पानी या अमृत के छींटों से जीवित करना ४. निपुत्रों का मुंह न देखना ५. आंखें निकलवाना या घानी [कोल्हू में] डालकर पिसवा देना ६. योद्धा की जान सात समुद्र पार पिंजड़े के तोते में होना ७. मनुष्य को पत्थर में परिवर्तित कर देना ८. मनुष्य को मक्खी बनाकर दीवाल के चिपका देना ९. काले कपड़ों से दुहाग देना १०. चंवरी के लिए अपनी तलवार भेजना ११. मातृ - वात्सल्य के वर्णन में स्तनों से दूध की धार निकलना १२. राजा का रात्रि पहरा देना १३. राजकुमारों के देसूंटे १४. किसी को तेल में तलकर खाना १५. रानियों का किसी वस्तु के लिए दांतुन त्याग १६. अंगूठी पहचान १७. जादू की कड़ाई १८. परकाय प्रवेश १९. स्वप्न के बीच जगा लेना २०. मनुष्य की आंखें न निकालकर हरिण की निकालना। श्री मनोहर शर्मा ने लोक गीतों में भी कुछ मुख्य एवं वर्णात्मक रूढ़ियों की खोज की है। राजस्थानी लोक गीतों में बहुत सी लोक-रूढ़ियां प्रयुक्त होती हैं। जैसे - १. सरोवर गमन रूढ़ि [पणिहारी, काछबौ, नटड़ौ और तुलसी गीत, लाछा गीत, चन्द्रावली, मुरलौ, भूमादे, रतनादे री बेल और जापे आदि के गीत] २. दाम्पत्य जीवन के प्रतीक वृक्ष—पींपळी, मंहदी, नीमड़ली, बड़लौ, निम्बूड़ौ ' मरवौ, केवड़ौ, वधावै आदि गीत हैं। दाम्पत्य पल्लवित, पुष्पित एवं शीतल वृक्ष के समान ही है। ३. पुरुष वेष की वर्णात्मक रूढ़ि—इसमें ध्रूजी हरजस, बनड़ौ में सवारी विषयक रूढ़ि, वर्णनात्मक रूढ़ि के गीत हैं। इसमें नारी के रूप और वेश-वर्णन की रूढ़ियां हैं। ४. ओलंग रूढ़ि [प्रवास अथवा प्रवास की सेवा] ऊमादे, लखपत गीत ५. मार्ग दर्शन रूढ़ि कलाळी, जंवाई के गीत—इसमें रात वासौ, [ठहराव] आतिथ्य, गृहस्थ संपन्नता, वधावा, देश के मुख्य स्थान, मुख्य जातियां आदि के विषय में वर्णनात्मक रूढ़ियां प्रचलित हैं।



५

लोक कहावतें

कहावतों की संक्षिप्त पृष्ठभूमि — कहावत कुछ शब्दों का समूह है जो विशिष्ट सांकेतिक अर्थ की व्यंजना के लिए जन-सामान्य द्वारा प्रयोग में लिया जाता है। इन शब्दों से प्राप्य अभिधार्थ सहज दिखता हो, किन्तु प्रसंगानुकूल उनकी व्यंजना किसी सामाजिक रूप से अनुभूत सत्य को व्यक्त करती हैं। इसी बात को दूसरी तरह से व्यक्त करें तो कह सकते हैं कि वस्तुतः कहावत स्वयं 'एक शब्द' है जो विशिष्ट अर्थ-व्यंजना को अपने में समविष्ट किये हुए है और सामाजिक व्यक्ति उसके प्रचलन के कारण ठीक उसी अर्थ को ग्रहण कर लेता है। सूक्तियों के इस प्रचलन के पीछे सामाजिक अनुभव की अचेतन सत्ता कार्य करती है। विभिन्न कार्यों के दौरान में, घटनाओं में, प्रकृति के कार्य-व्यापारों में, पशु-पक्षियों के व्यवहारों में और मानसिक उद्वेलन की स्थितियों में सादृश्यता या विरोध मूलकता, शाब्दिक श्लेष या शब्द-वैचित्र्य, प्रास या तुक की कल्पना से अनुभूत सत्य तिक्त वाक्य या पद में निर्मित हो जाता है। निश्चय है कि इस प्रवृति का जन्म वाणी या भाषा के साथ ही हो गया होगा और मनुष्य के विकास के क्रम में उसने नित नवीनता ग्रहण की होगी।

भारतीय वाङ्मय में वेदों की प्राचीनता असंदिग्ध है और उसी आद्य उषःकाल में हमें सूक्तियों की प्रथम किरणें मिलने लग जाती हैं। ऋगवेद एवं अथर्ववेद के कितने ही पूर्ण या अर्ध ऋक अथवा पाद या अर्धपाद में हमें अपनी कहावतों का उद्गम मिलना प्रारंभ हो जाता है।

१. **वेदों की कहावतें**—वैदिक कहावतों का प्राचीन समय से लेकर अभी तक कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ है। इसके आधार पर प्रथम एक नीति-मंजरी नामक ग्रथ उपलब्ध है। इसमें आठ अध्याय और दो सो श्लोक हैं। श्लोक के पूर्वार्द्ध में कोई सूक्ति या कहावत है और उतरार्द्ध में ऋगवेद की कथा का स्पष्टीकरण है। उदाहरणार्थ नीति मंजरी का केवल एक श्लोक उद्धत कर रहा हूँ —

तत्वविदपि संसारे मूढ़ो भवति लोभतः।
तत्वज्ञा सरमायाचदिन्द्रमन्न' गवां ग्रहे ॥

ब्राह्मण ग्रंथों में भी अनेक कहावती उक्तियां मिलती हैं। उनमें आने वाली सूक्तियां और सुभाषित शब्द कहावत या लोकोक्ति के ही रूप मालूम होते हैं। "कृष्णों वैभूत्या पर्जन्यो वर्षति" सूक्ति को राजस्थानी की काली घटा बरसंत से और "चक्षुर्वै सत्यम्" को आंख्यां देखी परसुरांम कदै न कूड़ी होय से मिलाइये। जनसाधारण में जैसे लोकोक्ति का प्रचलन है, विद्वानों में वैसे ही प्राज्ञोक्तियां चलती हैं। उपनिषदों में ऐसे लौकिक न्याय, कहावती उपमाएं, कहावती वेशभूषा आभाणक और निष्कर्ष आदि अनेक वाक्य प्रयोग में आते हैं। ये सब प्राज्ञवर्ग की उक्तियां हैं, जो न्याय, दृष्टान्त उदाहरणादि के व्यवहारिक प्रयोगों में लोक सामान्य के योग्य अपनानी पड़ती हैं।

२. महाभारत - रामायण की कहावतें — रामायण में अनेक लोकोक्तियां हैं, जो प्रवाद के रूप द्वारा हमारी दृष्टि में आती हैं। वेदों के बाद आदि कवि बाल्मीकि की रामायण का ही सांस्कृतिक सम्मान है। रामायण, महाभारत और योग वाशिष्ठ तो हमारे इतिवृत्तात्मक साहित्य के सिरताज हैं। पुरानी कहावतों की चर्चा भी इसी वर्ग में सम्मिलित होती है। पुराण, व्यवहारिक दार्शनिक एवं नीति-ग्रंथ हैं। उनमें जीवन के सर्व अंग-प्रसंगों से संबंध रखने वाली सूक्तियां भरी पड़ी हैं। ये सूक्तियां एक प्रकार की कहावतें ही हैं। सूक्तियां आदर्श मानव के नैतिक नियम हैं। ऐसी सूक्तियों और लौकिक प्रवादों से रामायण भरा पूरा है।

रामायण में एक सूक्ति आई है: गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदा। इसी उक्ति के साथ ही यदि हम राजस्थानी की कहावत को साम्य दर्शाने के लिए लायें तो वह होगी — गाजै सो बरसै नहीं।

रामायण की अन्य उक्ति है:

आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु कः।
यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास मधुरो भवेत् ॥

इसी प्रसंग में राजस्थानी की कहावत दृष्टव्य है:

नीम न मीठा होय सींचौ गुड़ घीव सूं ॥
ज्यांरा पड़या सुभाव क जासी जीव सूं।

महाभारत भारतीय संस्कृति का कोष है। इसमें मानव जीवन की अनेकानेक कहावतें उपलब्ध होती हैं। इसकी सूक्तियों और लोकोक्तियों का संपूर्ण अनुशीलन दुस्साहस है। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। "सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम्।" अर्थात् हर मनुष्य अपने आपको बुद्धिमान मानता

है। राजस्थानी में इस आशय की कहावत, परायै धन रौ अर आपरी अकल रौ के छेड़ौ, द्रष्टव्य है।

योग वाशिष्ठ में भी सूक्तियां और कहावतें बहुत हैं। "यावत्तिलमं् तथा तैलम्" कहावत के बराबर हमारी 'तेल तिलां सूं नीकळै' की कहावत मिलायी जा सकती है।

"जेष्ठ: पितृसमो भ्राता–" बड़ा भाई पिता तुल्य, यह पौराणिक उक्ति है। इसके समकक्ष राजस्थानी में भी प्रचलित है। "आहरे न कारे लज्या बोहारे" के भावार्थ की संस्कृत सूक्ति पुराणों में मिलती है। "आहारे व्यवहारे च त्यक्त-लज्जः सदा भवेत्।" इनके सिवाय स्मृतियों की कहावतों, नीति वाङ्मय, चाणक्य नीति-अर्थशास्त्र, सुभाषितरत्नाभांडागार, संस्कृत काव्यों में प्रयुक्त कहावतों, पाली भाषा [जातक] की कहावतों, प्राकृत की कहावतों, अपभ्रंस की कहावतों आदि से भारतीय कहावत कोश समृद्ध बना है। भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रख्यात व अज्ञात कवियों के दोहे, पंक्तियां, चौपाइयां, कवित्त आदि भी लोक प्रिय होकर कहावतें बन गई हैं। विदेशी कहावतों का इतिहास और उनका आपसी तुलनात्मक अध्ययन भी मानव विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। इनका विशेषाध्ययन अत्यावश्यक है।

कहावतों की गरिमा और परिभाषा — भाषा तथा साहित्य लिखने या बोलने में सौन्दर्य और सौष्ठव लाने के लिये कहावतों का व्यवहार सदा से प्रचलित है। ये साहित्य को सलोना बनाती हैं। इनसे भाषा भी सजीव और स्फूर्तिदायक बनती है। इनका प्रयोग करने वालों को तत्काल एक परंपरित सूझ-बूझ मिल जाती है। वे जानते हैं कि इस प्रकार की घटना पहले भी घट चुकी है। जिससे लोगों को पूर्ण हितकर बल मिलता चलता है और उसी स्थिति के प्रत्यक्षानुभव पर वे अपने विचारों को प्रकट करते आये हैं।

कहावतों को शिक्षित और अशिक्षित सभी लोग समय समय पर काम में लेते रहते हैं। मनुष्य जीवन की समस्याएं ही कहावतों को पैदा करती हैं। मानव की असंख्य उलझनात्मक परिस्थितियों का संग्रह ही तो जीवन है। अत: इनकी प्राय: पृष्ठभूमि घटना परक होती हैं और जटिल उलझनें, पक्का ज्ञान तथा जीवन संसार के बड़े बड़े प्रश्न जब नुकीले, छोटे एवं आकर्षक वाक्यों द्वारा निसृत होते हैं तो प्रवादों की उत्पत्ति होती है। कहावतों का जनक कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता। कहावत एक विस्तृत जन-समूह रूपी जननी की कोख से जन्म लेती है। अत: यह एक केवल कथन है, एक उक्ति है। लोग अपनी प्रिय उक्ति बनाकर ही उसका नाम लोकोक्ति रखते हैं। जनता - जनार्दन के अनुभव, वचन, विशद वाक्य, विलक्षणोक्ति बनकर पटुता से पोषित होकर

लोकोक्ति कहलाते हैं ।

बड़े बड़े महात्माओं ने अपने उपदेश एवं व्याख्यान के समय कहावतों को काम में ली हैं । योरोप आदि देशों की शिक्षण पद्धति में भी लोकोक्तियों व कहावतों का उपयोग किया जाता है । जापान जैसे देशों में तो खेलों तक में कहावतों का प्रयोग होता है । भाषा विज्ञान अध्येताओं के लिए भी कहावतें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इनके द्वारा सामाजिक जीवन, पुराने रीति - रिवाज, नृवंश - विद्या आदि का ज्ञान होता है । जाति विज्ञान एवं संस्कृति के विद्वान भी कहावतों और मुहावरों को श्रमिक जनता की सामाजिक तथा ऐतिहासिक अनुभूतियों के संक्षिप्त रूप बताते हैं । भाषा की सुन्दरता, सरलता तथा प्रभावशालीनता का बहुत बड़ा श्रेय कहावतों को है । इनमें गागर में सागर भर देने की क्षमता प्रसिद्ध है । डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्ति साहित्य का महत्व बताते हुए लिखा है कि " लोकोक्तियां मानवी विज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं । अनंत काल तक धातुओं को तपा कर सूर्य - रश्मि नाना प्रकार के रत्नों, उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है । उसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं । जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है । "

विश्व के स्थल भाग पर जितने भी देश और जातियां हैं, सभी कहावतों के कायल हैं । दुनियादारी के आपसी सभी सुन्दर कार्य और साधारण सूझ - बूझ का ज्ञान इन कहावतों में मिलता है । ये मनुष्य प्रकृति और सभ्य मिलनसारी के माप-तोल वाले पूर्वजों से प्रदत बाट-बटखोरे हैं, जो हर समय हमारे जीवन कारबार में काम आते हैं । लोक-जीवन के ये सफल वाक्य, हंसी-खुशी और आनन्द-उत्साह के फव्वारे हैं, मगर कभी अगतिशील नहीं रहते । क्या घर और क्या बाहर ? मानव जीवन का संपूर्ण पथ-प्रदर्शन करना ही कहावतों का कर्तव्य है । लोग समाज में किस सभ्य व्यवहार से मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन सुखमय हो सकता है ? कहावतों में इनके उपदेशात्मक उदाहरण मिलते हैं । मनुष्य ठोकर खाता है । मगर कहावतों की सच्ची शिक्षा से वह बच भी सकता है । इनमें न धोखा - धड़ी है और न अन्याय ! ये तीखे तीर की भांति हमारे हृदय में बैठ जाती हैं । बड़े बड़े तार्किक वकीलों से भी हम लोकोक्तियों द्वारा विजय प्राप्त कर सकते हैं । इन सारगर्भित कहावतों के सामने कई बार पंडितों को भी मात खा जाना पड़ता है । इस साहित्य में नीति तो होती है, ग्रामीणता के दर्शन भी इसमें होते हैं । ऐसी ज्ञान एवं नीति-न्याय की कहावतों से राजस्थानी भाषा तथा साहित्य समृद्ध तथा संपन्न है । यहां की कथा-कहानियों में लोकोक्तियों की सजावट दर्शनीय है । कुछ छंद - शास्त्रज्ञों ने तो लोकोक्तियों को अपने व्यवहार

का अलंकार ही मान लिया है ।

साधारण जिन्दगी में कहावतों का स्थान महत्वपूर्ण एवं शोभनीय है । ग्रामीण लोक में ये गीता - रामायण की गरज सारती हैं । एक पंडित जैसे अपनी बात पुष्ट करने के लिए वेद शास्त्रों के श्लोकों से उदाहरण देता है, वैसे ही एक जन - साधारण कहावतें कहकर अपनी बातें पक्की करता है । कहावतों में राष्ट्र या समाज की संग्रहीत ज्ञान राशि लोक मुखासीन रहती है, तभी तो किसी ने इनको मानव जाति के अलिखित कानून बताया है । डॉ. सहल की राय में अपनी कथा पुष्टि हेतु उपदेश, उपालम्भ, व्यंग, चेतावनी आदि देने के समय किसी घटना की अाड़ में जो सारगर्भित और प्रसिद्ध उक्ति को काम में लेते हैं, उसे कहावत कहा जाता है । राजस्थानी में इनका सारगर्भत्व संक्षिप्तता, नुकीलापन, उक्ति वैचित्र्य, लाघवता, चटपटापन, तुकसाम्य आदि अनेक शैलियों में हैं । इनके अलावा प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की सूक्तियां भी कहावतों का स्वरूप ले लेती हैं । इनसे देश जाति के विचार, रीति - रिवाज, सामाजिक - संगठन, सदाचार, शिष्टता, नैतिक आदर्श आदि सभ्य भाव जागृत होते हैं ।

विश्व के विद्वानों ने कहावतों की अनेक परिभाषाएं की हैं ।

१. एक की सूझ जिसमें अनेकों का चातुर्य सन्निहित है । — लार्ड रसेल

२. जनता में निरन्तर व्यवहृत होने वाले छोटे छोटे कथन । — जॉनसन

३. जनता में प्रचलित कोई छोटा सा सारगर्भित वचन, अनुभव अथवा निरीक्षण निश्चित या सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाली कोई संक्षिप्त उक्ति ।
— आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी

४. लोक साहित्य का एक प्रकार जो साधारण घरेलू वाक्यों के रूप में जीवन की तीक्ष्ण आलोचना करे । — ब्रिटिश विश्व कोष

५. कहावत ज्ञानी - जनों की उक्तियों का निरूपण है । — बाइबिल

६. कहावतें वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तियां हैं, जिनकी विलक्षण ढंग से रचना हुई हो । — इरेस्मस

७. कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं, जिनमें सूत्रों की तरह आदिम पुरुषों ने अपनी अनुभूतियों को भर दिया । — ऐग्रिफोला

८. कहावतें वे छोटे छोटे वाक्य हैं जो जीवन के दीर्घ कालीन अनुभवों को अन्तर्हित किये हुए हैं । — सर्वेंटीस

९. कहावतें वे रत्न हैं जो पांच शब्द लम्बे होते हैं और जो अनन्त काल की अंगुली पर सदा जगमगाते हैं । — टेनीसन

१०. कहावतें ज्ञान के संक्षेपीकरण हैं । — जूवर्ट

११. संक्षिप्त और प्रयोग के उपयुक्त होने के कारण विध्वंस और विनाश से बचे हुए अवशेष को कहावत की संज्ञा दी गई है । — अरस्तु

१२. एक विद्वान ने संक्षिप्तता तथा, सारगर्भितता और सप्राणता कहावत को

तीन अनिवार्य तत्वों के रूप में ग्रहण किया है। — अज्ञात

१३. व्यवहारिक जीवन में मार्ग दर्शक वचन। — फीरस्ते

१४. वे कथन जो अनाम हैं, जिनके निर्माता का पता नहीं। — ट्रेंच।

विश्व में मिश्र, वेवीलोन आदि के नीति व बुद्धिमूलक साहित्य का प्रभाव वाइविल आदि ग्रंथों पर स्पष्ट है। ग्रीस, स्पार्टा, इंग्लेंड आदि देशों की कहावतें भी भारत के समान ही प्राचीन हैं। सेंट जेरोम ने अपनी कृतियों में चौथी शताब्दी में कहावती प्रयोग किये हैं। जगत प्रसिद्ध शेक्सपीयर ने अपने नाटकों के शीर्षक ही कहावतों के रूप में रखे हैं। स्पेन के उपन्यासकार सर्वेंटीस, लेटिन के कवि प्लेटो, फ्रांस के दो लेखक रोवले व फान्तेन तथा फुलर ने कहावतों का भारी प्रयोग किया है। सर वाल्टर स्कॉट ने भी अपने उपन्यासों में लोकोक्तियों को अपनाया है। हिन्दी में वावू भारतेन्दु, उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपने लोकप्रिय ग्रंथों में कहावतों का प्रयोग किया है। भारतीय विद्वानों ने भी लोकोक्तियों को परखा है, उसे भी पढ़िये :

१. मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र घनीभूत रत्न।

— डा. वासुदेव शरण अग्रवाल

२. लोकोक्तियां अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। — डा. उदयनारायण तिवारी

३. लोकोक्ति सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य-बुद्धि का निदर्शन है।

— प्रोफ़ेसर कन्हैयालाल सहल

४. लोकोक्ति वह लोकाभिव्यक्ति है, जो ईमानदारी के साथ लोक के अनुभव को लेकर कही गई है। — डा. शंकरलाल यादव

५. किसी सज्जन ने कहावतों को भौतिकवाद की बीजगणित बताया है।

— पीपल आफ इंडिया, रिजले

६. कहावतें हमारे देश की निधि हैं, जो प्राचीन महानता की परिचायक हैं।

— भारतीय कृषि कहावतें, विषय प्रवेश — लेखक रामेश्वर अशान्त

डाक्टर कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी कहावतों के अध्ययन में बहुत सी प्रसिद्ध परिभाषाओं के साथ तटस्थ लक्षण, स्वरूप लक्षण, सत्य और विरोधाभास तथा निष्कर्ष नाम से कहावत की परिभाषा के पांच भेद किये है। अतः कहना पड़ता है कि कहावत वह लोकप्रिय पंक्ति है जो लोक जीवन के दैनिक कारोबार, साख-संवंध और प्रेम वार्तालाप आदि के चोखे चुभते आकर्षक नगीने हैं। इनकी प्रयोग पटुता से और ज्ञान गरिमा से मानव मान वढ़ता है ऐसी मेरी निजि धारणा है।

३. कहावत की व्युत्पत्ति और पर्याय — व्युत्पति : इस विषय में अभी मत्यैक नहीं है। मगर कुछ अनुमानिक व्युत्पत्तियां प्रस्तुत की जाती हैं :

१. डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राकृत कहाप्, धातु से भाव वाचक संज्ञा

बनाने के लिए – त – प्रत्यय जोड़कर कहापत से कहावत बनी बताते हैं।

२. रामदहिन मिश्र कथावत से कहावत की व्युत्पत्ति मानते हैं।

३. कुछ लोग कथोद्धात, कथाव्रत, कथावस्तु से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। कह धातु के आगे अरबी आवत प्रत्यय लगाकर कहावत शब्द बना बताते हैं। कहाव के आगे–त–प्रत्यय लगाने से कहावत शब्द बन सकता है। कथापत्य, कथापुत्र, कहाउत आदि अनुमानिक शब्दों से भी कहावत की व्युत्पत्ति हुई बताते हैं।

४. एक कहावत विषयक निबंध में कहावत का सरल अर्थ कह+आवत अर्थात् परंपरा से कही हुई आ रही हो वह बात कहावत।

५. ठाकुर कवि ने कहावत को कहनावति कहा है। हिन्दी शब्द सागर प्रथम भाग पृष्ठ ५१५ पर कहनावत शब्द भी कहना + आवत से उत्पन्न बताया है।

६. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपनी बोल चाल रचना में कहनावति शब्द को अपनाया है।

कई सज्जन इसे कही हुई बात मानकर – 'जुग जासी पण बात न जायँ –' का प्रमाण देते हैं। श्री तुलसीदासजी ने ऐसी स्थिति में बत्तक शब्द का प्रयोग किया हैं। डाक्टर सुनिति कुमार चाटुर्ज्या और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने भी कहावत की पांडित्यपूर्ण व्युत्पत्ति लिखी है। नेपाली शब्द कोष में टर्नर ने इसका अनुमानित मूल रूप कथावार्ता बताया है। उन्होंने नेपाली कहाउत, पंजाबी कहोत और सिंधी कहात आदि शब्दों के साथ हिन्दी कहावत को तोला है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं मुनि जिनविजयजी के मत भी उपरोक्त पक्ष में मिलते हैं। डॉ. बाबूराम सक्सेना अपने कहावती विवेचन में हिन्दी [कहावत] शब्द का अर्थ कथावार्ता से भिन्न बताते हैं। कहावतों को मालवी बोली में कैवात या कहणात कहते हैं। यदि हम इस [कहावत] शब्द की व्युत्पत्ति शब्द सादृश्य के आधार पर मानें तो लिखावट, सजावट, रुकावट, सुकावट, बनावट, रखावट, पहरावट, मिलावट आदि शब्द कहावत के नजदीक पड़ते हैं। इस ढंग से राजस्थानी भाषा के कथनीय अर्थ में कई आज्ञार्थी शब्द कुवावट, कुहावट और कैवावट आदि काम में आते हैं। अतः कहावत की व्युत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कह देना संभव नहीं है।

४. कहावत के पर्याय शब्द — असंख्य विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त कहावत के अनेक समानार्थी या पर्याय रूप मिलते हैं, जिनकी तुलना करने से इसके अर्थ और उत्पत्ति पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। अतः केवल भारतीय भाषाओं के प्रयुक्त शब्दों को ही आप विज्ञजनों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम हम अपनी सबसे समृद्ध एवं प्राचीन भाषा संस्कृत को ही आगे लाते हैं। इसमें कहावत के लिये कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विभिन्न ग्रंथों में कहावत के विभिन्न पर्याय रूप मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों की सूक्तियां और सुभाषित कहावत रूप में

हो काम में आये हैं। लोकोक्ति, लोक प्रवाद, परवाद, आभाणक, लौकिकी गाथा, प्रायोवाद आदि शब्दों का संस्कृत में सर्वत्र प्रयोग पाया जाता है। वेदान्त ग्रंथ, वाल्मीकि रामायण, कादम्बरी, बृहद् कथा और कथा सरित्सागर जैसे ग्रंथों में उक्त शब्दों के यथा अवसर प्रयोग हुए हैं। पाली भाषा के कवि समय सुन्दर ने सीताराम चौपाई में एक जगह कहावत के लिए आहीण शब्द का प्रयोग किया है। आहाणय, आहाण, अखाणय, किंवदन्ति और भाषितो शब्द का व्यवहार भी पाली भाषा में पाया जाता है। अपभ्रंश भाषा में कहावत के अर्थ में-अहाणउ, [आभाणक] शब्द व्यवहार में आया है। इस तरह से हमारी प्राचीन भाषाएं कहावत शब्द के प्रयोगों से परिपूर्ण हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में तो कहावत शब्द के पर्याप्त पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं। मगर राष्ट्र भाषा हिन्दी में कहावत शब्द के पूर्ण रूप कहनावत, कहाउत, कहनूत, उपखान, पखाना, लोकोक्ति आदि कई शब्द उपलब्ध हैं। उर्दू में जरबुल, मिसल, लेंदी में अखाण, गढ़वाली में पखानों और मिकर भाषा [आसामी] में इसे लम्बीर या लम्बरीम कहा जाता है। बंगला में परवाद, वचन, प्रवचन, लोकोक्ति प्रचलित वाक्य आदि शब्द कहावत के लिए काम में आते हैं। मराठी में म्हेण, म्हेणणी, आंणा, आहाणा, न्याय, लोकोक्ति जैसे कई शब्द कहावत के पर्यायवाची शब्द हैं। गुजराती में इसके कहेवत, कहेती, कथन, कहेणी और उखाणू नाम के पर्याय हैं। मालवी में कैवात और राजस्थानी में कोथ, कैवत, कुवावत, कुवावट, ओखांणा आदि शब्द कहावत के पर्याय स्वरूप शब्द हैं। गढ़ावी लभाषा की एक पुस्तक में इसको पखाणा बताया गया है।

५. कहावतों में व्यंग और विशेषताएं – राजस्थानी कहावतें बड़ी मूल्यवान हैं। ये नीति शास्त्र की भांति जीवन के समस्त कार्य-कलापों पर आधारित हैं। राजस्थान में बहुत से लोग विश्वास के साथ इन्हीं के अनुकरण पर कार्य करते हैं। कहावतों में मानव जीवन के व्यवहार की सत्यता प्रकट होती है। इसलिए कहावतें हमारा मन मस्तिष्क अपनी ओर खींच लेती हैं। ये व्यवहार कुशलता की कुंजियां हैं। इन उक्तियों से किसी भी व्यक्ति की चेष्टाओं, क्रियाओं और जड़ अन्तः करण को तोला जा सकता है। सचमुच कहावतें सच्चे, खरे - खोटे को परखने वाली कसौटी हैं। कोई धूर्त आदमी जब ऊपरी सुन्दरता बनाकर लोक ठगने के प्रयत्न में लगता है, तब हम भी अपनी कहावती बुद्धि से उसे पहचान जाते हैं और तुरन्त कह डालते हैं – 'लामै घूंघटाळी लुगाई अर मुळकणियो मोटचार' – बड़े खराब होते हैं। यदि कोई आदमी एकदम शर्म छोड़ देता है तो उसे रास्ते पर लाने के लिए नीमाणे वाले खेजड़े की कहावतोपाधि प्रदान की जाती है– 'नीमाणा खेजड़ो ऊग्यो, [एक घृणित कथा] – के छींयां बैठस्यां' लाक्षणिक ढंग से

बताया गया कि तुम्हारी बेइज्जती हो रही है। साथ में उत्तर भी दे दिया गया कि इसी में यश है। कहावत नसीहत की कला है। हमें कहावतों में मनुष्य की ऐसी निर्लज्ज मनोवृति को सुनाने व छुड़ाने वाले अनेक उदाहरण मिलते हैं। किसी कसूरवार के कसूर को अन्य व्यक्ति के पीछे माफ करते हुए कहा जाता है – 'कुत्ता तेरी कांण के तैरे धणी की'। कुत्ता तक कहकर लजाया जाता है और फिर कसूरवार के किसी संबंधी व्यक्ति पर एहसान करके माफ कर दिया जाता है, ताकि उस आदमी से फिर कभी कसूर होने की संभावना ही नहीं रहती। दूसरे अनुचित लाभ करने वाले पर तो बड़े व्यंग के साथ एक लज्जित करने वाली कहावत है। कहने वाला अपने ऊपर ही लेकर कहता है — म्हारी मां भोळी ही ढकणी रै बदळै हांडी उठा लावती' भोळी शब्द काकु वक्रोक्ति है। मां को चालाक बताया गया है। चालाकी की ऐसी और कहावत हमें याद है – 'इस्यौ ही भुगानियौ भोळौ जकौ भूखौ भेड़ां में जावै।' याने भगवानिया बड़ा चालाक है, वह भूखा भेड़ें चराने कदापि नहीं जायेगा। कई स्थानों पर दूसरे के अधिक नुकसान के साथ अपने वैसे ही रंग रूप वाला नुकसान मिलाकर भोलापन प्रदर्शित करने की हास्यात्मक कहावतें कही जाती हैं। एक व्यक्ति अपनी भैंस मर जाने पर अफसोस व्यक्त करता है। तब दूसरा उसके साथ मिलकर कहता है– 'आपां नै काळै धन सूं लैणियौ कोनीं, म्हारै ही आज उनावड़ियौ [जल गर्म करने का लघु पात्र] फूटग्यौ।' ऐसी दूसरी कहावत देखिये :

भैंस मरी तौ कांई हुवै, जोरू ही मर जाय।
धक्कौ अैड़ौ जांणियै, भरी चिलम गुड़ जाय॥

लोक कहावतें गहरी चोट करने वाले अचूक व्यंग हैं। उनकी अप्रस्तुत योजना के अभिव्यंजनात्मक विधान से घायल श्रोता किसी को कहने तक का साहस नहीं कर सकता। 'उत उताई के बेटौ जायौ, नाळै पैल्यां नाक कटायौ।' चंचलता के ऊपर तीव्र बाण है। आगे कुछ और व्यंग देखिये :

१. ठाकरां खळ खावौ ? के, आ ही कुत्ती सूं छुडाई !
२. ठाकरां ठाडा किसाक ? के, कमजोर रा तौ बैरी पड़्या हां !
३. टांडौ क्यूं हौ ? कै, सांड हां। गोबर क्यूं करौ ? के गऊ रा पूत हां।
४. सीतळा माता घोड़ौ चायै ? के, म्हैं ही गवै चढूं।
५. बाबाजी कोपीन बासै ? के रैवै किसीक जागा है।
६. थारौ बोरौ तकड़ौ ? के, खावौ कुत्ता !
७. मकोड़ौ कै मां गुड़ री भेली ल्याऊं ? के, कड़तू कानीं देख।
८. निकासी नै घोड़ौ चायै ! के, घिरतौ ले जाई।
९. पाडाजी थारौ तौ आघ [आदर] डाढ़ौ दीखै ? ऊभा नै ही कुतर, पालौ, बांटौ-चूंटौ मिळै। बोल्यौ – आघ म्हांरौ क्यांरौ है ? म्हैं इयां री भैंस पावसा

[दूहा] देवूं अर अै म्हानैं काटो जाड़ा का कूटळो नांख देवैं ।

१० राजा रै सोना रा पागड़ा ? के, गुड़ रा हुवै तौ ही थोड़ा ।

११. सेठां दस्सा के बीस्सा ? न दस्सा न विस्सा म्हें साढ़ बाईसा ! तौ किसै गोता ? के, करणी पोता ! जीम लीना तौ मनाग्री तेतीसा ।

१२. कंवरजी मैलां सूं उतरचा, भोडळ रौ भळको । बतळायां बोलै नहीं, बोलै तौ डबकौ ।

वास्तविक ढंग से कहावतों में हम मूर्खों को निम्न पशुओं के नाम से संबोधित कर देते हैं । जैसे – बकवादियों को – 'भुसणां कुत्ता खाणा नहीं' के संयत शब्दों द्वारा विवेचित किया जाता है । ऐसे ही गुणहीन व्यक्तियों की झूठी नामवरी [प्रसिद्धि] को लक्षित करके एक कहावत कहते हैं – 'कागां रै काछड़ी हुवै तौ उडतां री दीखै' अर्थात् – कौओं के कच्छे पहने हुए होते तो उनके उड़ते समय सबको दिखाई देते । द्वितीय कहावत और देखिये जो पूर्ण अवगुणों की द्योतक है । 'बाई कीनै परणाई ? के, बुगां नै ! बाई बुगां ही जोगी !'

मानव मनोवृत्ति ऐसी होतो है कि वह अपने आपको सदैव दूसरों से विशेष गुणवान समझता है और बढ़ बढ़कर बातें बनाया करता है । मानो विधाता ने उस व्यक्ति को जन्म से ही कान में फूंक मारकर इस लोक में भेजा हो कि तेरे जैसा निपुण एवं सगुण इस लोक में और किसी को ही नहीं बनाया है । अज्ञानी, अल्पज्ञ और कमजोर आदमी जब अत्यंत अहं के साथ अपनी बहादुरी या प्रशंसा की डींग मारता है, तब उनके हीन भाव को प्रदर्शित करता हुआ दूसरा व्यक्ति इस तरह की [अधोलिखित] कहावतें कहता है ? 'लूण केवै मन्नै ही सीरै में घालौ' कोई बात हुई ? सीरा खराब थोड़ा ही करना है । २. 'राबड़ी केवै मनै मेढ़ै हेटै बरतौ' [अनुचित बात की खिल्ली बताना] ३. 'राबड़ी केवै मनै ई दांतां सूं खाओ' इस तरह से झूठी गप्पें [डींग] हांकने वालों को उनकी महान कमजोरी दिखाकर निरुत्तर कर दिया जाता है। नहीं तो राबड़ी जैसे खट्टे एवं साधारण पदार्थ का विवाह के विशेष समय में उपयोग बताना ! साथ ही साथ उसके पतलेपन और नर्मपन पर दांतों का प्रयोग करवाना विरोधाभास नहीं तो क्या है ?

'म्हांनै मीठी लागै राबड़ी, जांमैं दांत लागै न जाबड़ी ।'

मनोविज्ञान वालों ने स्वयं प्रशंसकों की इस कृति को हीन भाव कहकर विवेचन किया है ।

ग्रामीण लोग अपने वार्तालाप में कहावतों का विशेष उपयोग करके अपने कथन को प्रमाण-पुष्ट बना लेते हैं । इनमें अनेक प्रकार के गुण एवं उनकी विशेषताओं के भाव हैं, जो लोकप्रियता में प्रथम हैं । संस्कृत में – 'स्वल्पा च मात्रा

बहुलो गुणश्च, की संक्षिप्तता ही इसकी दूसरी विशेषता है । यह लाघवता ही महानता की मोड़ है । सारगर्भिता और चटपटापन तो इस कहावत के मनमोहक गुण है ।

कुछ कहावतें आंतरिक पीड़ा की घटना से संबंधित होती हैं, जैसे:

१. दे पांडिया आसीस ! के आंतड़यां देसी ।
२. बाबाजी तापौ ? के जी जांणै ।
३. बाबाजी बाछड़िया टाळया ? के, बाछड़िया टाळना तो घरां कोनी हा के ?
४. भाई मरयैं रौ धोखौ नीं ! भुरजाई रौ बट नीकळ जावै तौ !
५. निन्दरा आव अर जाव ? के, आज तेरी मौत है !

कहावत में अनुभव एवं प्रत्यक्षता का सार भरा रहता है, जो सत्य का साथी है । अत: कहावत की नींव सत्यता है । यह इसकी तृतीय विशेषता है । किसी ने अपने अनुभव निरीक्षण से कथन को सत्य पाया । जिसकी एक कहावत है – 'खर्ची खूटी अर यारी टूटी ।' देखिये कैसा गंभीर अनुभव एवं सत्य है । यह वाच्यार्थ ही नहीं केवल लक्ष्यार्थ ही है – 'स्वार्थी प्रेम ।' खर्च करने के लिये धन नहीं रहा, तब मित्रता टूट गई । ऐसी एक स्वार्थमयी साधारण कहावत और मिलती है– 'सुलफिये यार किसके दम, लगाये और खिसके ।' आजकल के मित्र चिलम तम्बाखू, गांजे-सुलफे तक ही होते हैं । राजस्थानी कहावत की चौथी विशेषता उसकी व्यहारिक घरेलू भाषा ही हो सकती है । कहावत जनपदीय बोली की अपनी वस्तु है । इसमें सरल वातावरण, सीधी साधी भाषा और सार्थक शब्द होते हैं । उक्त दृष्टि से एक कहावत देखिये – 'अणहूंत भाठै सूं काठी हुवै ।' अर्थात् दुर्बल परिस्थिति के लिए यह कहावत कितनी यथोचित है, ऐसी एक सामाजिक कहावत और लिखी जाती है– 'रावत राखी राबड़ी, डूम राख्यौ सुभराज ।' इसमें मुंह बोलता सामाजिक चित्र है । ऐसे ही कई चित्र देखें: 'लूंठै रौ डोकौ डांग नै फाड़ै ।' २– 'बुरै रा दो बांटा' ३ – 'बांह देयंर गळौ करणौ ।"

पांचवी विशेषता कहावतों की है – उसका बिना संयोग [नामशून्य] के प्रचलित होना । इसमें रचयिता के नाम की कतई छाप नहीं रहती । जैसे – 'त्रिया तेरह मरद अठारह ।' स्त्री तेरह और पुरुष अठारह वर्ष में ही विवाह के लायक होते हैं । यह कहावत कब, कहां और किसके द्वारा उत्पन्न हुई, सब अज्ञातनामा है । डाक्टर सत्येन्द्र ने लोकोक्तियों को सतुक और अन्योक्ति अंश को भी विशेष माना है । वे कहते हैं तुक से कहावत का लयांश खिल जाता है । लेकिन यह बात विद्वानों के लिये विचारणीय जान पड़ती है ।

कहावत के साथ मुहावरे — यदि व्याकरण को भाषा का अस्थिपंजर कहें तो

कहावत और मुहावरे उसकी जान हैं। कई बार कहावत के साथ मुहावरा इस तरह घुल-मिल जाता है कि पहचानने में भी नहीं आता। अतः कहना पड़ता है कि यह [मुहावरा] एक 'हौर' शब्द से बना हुआ अरबी लफ्ज हैं। इसका अर्थ अभिव्येय अर्थ से विलक्षण होता है। जैसे – जेब गरम करना, एक मुहावरा [वाग्धारा] है कारण गर्म शब्द साधारण न होकर लाक्षणिक अर्थ में काम आया है। हिन्दी शब्द सागर में ऐसे वाक्यांश या वाक्यों को रोजमर्रा बताया है। शुक्लजी उक्त मत के पक्ष में हैं। लेकिन केशवराम भट्ट रोजमर्रा और मुहावरे को एक ही बताते हैं। मौलवी अल्ताफ हुसैन हाली मुहावरे का दूसरा रूप रोजमर्रा बताते हैं। श्री गयाप्रसादजी शुक्ल मुहावरे को वाक्यांश बताते हैं जो वास्तव में लक्षणा व्यंजना द्वारा सिद्ध होकर एक बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित अर्थ [प्रत्यक्ष अर्थ से विलक्षण] होता है। आधुनिक भाषा में मुहावरा बड़ा प्रचलित एवं प्रसिद्ध वाक्यांश है। संस्कृत में इसके यथार्थ अर्थ प्रतीति वाला कोई शब्द नहीं मिलता। हिन्दी और संस्कृत में – वाग्धारा, वाग्रीति, प्रयुक्तता और भाषा संप्रदाय, रमणीक शब्द आदि शब्द मुहावरे के बदले में काम लिए जाते हैं। गुजराती में इसको रूढ़ी प्रयोग के नाम से पुकारा गया है। अतः हमें इसका अन्तर बताना पड़ता है।

कहावत एक नियमित एवं नैतिक कथन है तो मुहावरा विशुद्ध कार्य व्यवसाय। कहावत के वाक्य सर्वांग अमर हैं, मगर मुहावरे के वाक्यों में ताल, पुरुष, वचन और व्याकरण के प्रभाव द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। लोकोक्ति में नीति निपुणता के दर्शन होते हैं, परन्तु मुहावरों में नीति की जरूरत नहीं। उनमें तो प्रयोग की लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता होनी चाहिये। राजस्थानी भाषा में – 'अड़ौ दड़ौ बूढ़िये के सिर पड़ौ।' और 'अकल सरीरां ऊपजै, दिया आवै डांम' आदि कहावतें हैं और 'लारै लगना, फूट्यौ ढोल होना, सिर चढ़ना, चांदो होना, छिगर जाना, छावड़ होना, दाळ में काळा होना, लोही वाळना, सींग आना, अगूंठा दिखाना, रंग आ जाना, थूक रा बड़ा करना, कांन पीळा करना, रावड़ी सूं कांन चेपना। छाती पर मूंग दलना। बुरेड़ौ मतिरियौ होना। हाथां वासण छूटना आदि मुहावरे हैं।

लौकिक न्याय, लोकोक्तियां और प्राग्योक्तियां — प्राचीन साहित्य में न्याय शब्द का व्यवहार भी जगह जगह मिलता है। ये छोटे छोटे वाक्य होते हैं, मगर इनके भाव बड़ी गंभीरता लिए रहते हैं। संस्कृत में लोक प्रसिद्ध उक्ति को ही न्याय नाम दिया गया है। इनके अनेक भेद पाये जाते हैं। जैसे–गोमहिषी न्याय, अजा कृपाणि न्याय, गलहस्तन न्याय, अन्ध गज न्याय, तरक्ष डाकिनी न्याय, काक तालिये न्याय, कूप मंडूक न्याय, घुंणाक्षर न्याय, पंक प्रक्ष्यालन न्याय,

जामात्रि सुद्धि न्याय, चक्र भ्रमण न्याय, अरण्य रोदन न्याय, ऊसर वृष्टि न्याय, आदि असंख्य न्याय हैं, जो शास्त्रीय न्यायों से बहुत दूर कहावत नियमों के पक्ष में प्रचलित हैं। इन न्यायों के मूल में कोई न कोई कथा अवश्य रहती है, जिसका ज्ञान उस न्याय के अर्थ को जानने के लिए जरूरी है। इस तरह से कई कहावतें भी अपने पीछे ऐसी कथाएं लिए चलती हैं, जो उनका उद्गम होती हैं।

नीति शिक्षा — उच्च आदर्श और तत्व ज्ञान के लिए संस्कृत साहित्य में प्रज्ञा सूत्र, विद्या सूत्र, व्यवहार सूत्र, प्राज्ञोक्ति, वक्रोक्ति, नरमोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, सुभाषित, मुक्तक आदि अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं। जो अर्थ गौरव, सरलता, लाघवता, चटपटापन एवं सारगर्भितता की दृष्टि से कहावत के निकट जान पड़ते हैं। कहावतें जैसे जन साधारण के काम आती हैं, वैसे ही प्रज्ञासूत्र आदि पंडितों के व्यवहार की सूक्तियां हैं। इनमें प्राज्ञोक्तियां प्रचलित हैं। प्राज्ञोक्तियों में नैतिक निचोड़ होता है और कहावतों में लोक व्यवहारिक तत्व रहते हैं। अतः कहावतें लोकोक्तियां भी कहलाती हैं। यह एक गौण अर्थालंकार है। सभवतः सर्व प्रथम - कुवलयानंद - में अप्पयदीक्षित ने इसकी परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की है – 'लोकप्रवादानु कृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते –' अर्थात् लोक विख्यात किसी कहावत के अनुकरण से लोकोक्ति अलंकार होता है। विद्वानों ने लोकोक्तियों को मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न बताये हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियां प्रकृति के स्फुलिंग [रेडियो एक्टिव] तत्वों की भांति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती हैं। लोकोक्ति साहित्य संसार के नीति साहित्य [विजडम लिटरेचर] का प्रमुख अंग है। ये लोक वाटिका के नीति सौरभ पुष्प हैं तथा सदाबहार के लोक-मुख पौधे पर अत्यन्त ताजगी के साथ सदैव खिलते रहते हैं। तथा अपने अभिध्येयार्थ को छोड़कर अन्योक्ति के रूप में प्रस्फुटित होते है। मनुष्य अपने प्रस्तुत लाभ को छोड़कर जब अप्रस्तुत लाभ की ओर झुकता है, तब कहावतोपदेश द्वारा उसे सन्तुष्ट किया जाता है। डाक्टर सहल के लिखे उद्भव आधारानुसार इनको [कहावतों की] उत्पत्ति के कारण लोक कहानियां ऐतिहासिक घटनाएं तथा प्राज्ञवचन हो सकते हैं। डा. पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने ठीक ही लिखा है कि कहावत के द्वारा कहानी का संकेत दे दिया जाता है। संकेत प्रायः चरम वाक्य द्वारा दिया जाता है। डा. सहल ने कहावतों के लोक कथा आधार प्रसंग में चरम वाक्य, कथा से शिक्षा, असंभव अभिप्राय और कहावतों से कथाओं की उद्भावना नाम के चिताकर्षण व सोदाहरण चार भेद छांटे हैं। सर हरबर्ट रिजले ने कहावतों के दो वर्ग निर्धारित किये है। (क) सामान्य और (ख) विशेष।

कहावतों के वर्गीकरण — १. मेन वारिंगने – मराठी प्रावर्बस् नामक पुस्तक में कहावतों को कृषि, जीव-जन्तु, अंग प्रत्यंग, भोजन, नीति स्वास्थ्य और रुग्णता, गृह, वन, नाम, प्रकृति, संबंध, धर्म, व्यापार तथा परकीर्ण नाम के चौदह वर्गों में विभक्त किया है। २. विहार प्राव्रर्ब्‌स के सम्पादक कहावतों के निम्नलिखित ६ वर्ग निर्धारित करते हैं – क. मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से संवद्ध। ख. सांसारिक ज्ञान विषयक। ग. सामाजिक और नैतिक। घ. जातियों की विशेपताओं से संवद्ध। ड़. कृषि और ऋतुओं संबंधी। च. पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से संबंधित। ३. डाक्टर शंकरलाल यादव ने अपनी पुस्तक में लोकोक्तियों के ६ वर्ग करके अध्ययन किया है। क. जाति परक, ख. स्थान परक ग. इतिहास परक, घ. कृषि वर्षा परक, ड़. नीति परक, च. व्यंग्यात्मक।

४. डाक्टर सत्येन्द्र ने कहा है – लोकोक्ति के दो अर्थ माने जा सकते हैं – एक पहेली दूसरा कहावतें। बृज में उक्तियों के कुछ रूप और मिलते है। वे हैं– अनमिल्ला, भेरी, अचका, ओठपाव, खुसी, गहगढ़ और ओलना। डॉक्टर सत्येन्द्र ने कहावतों को अलग मानकर उसके सामान्य और स्थानीय नाम के दो प्रकार भी माने हैं।

५. डॉक्टर श्याम परमार ने कहावतों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया है। विपयानुसार, स्थानानुसार, भाषानुसार, जाति अनुसार। ६. कहावत साहित्य मनीषी श्री मुरलीधरजी व्यास ने इनके दो विभाग क. सार्वदेशिक व सार्वकालीक ख. एक देशीय व एक कालीक नाम की सूक्ष्म रूपरेखा द्वारा किया है।

डॉक्टर कन्हैयालाल सहल ने कहावतों के रूप और वर्ण विषय दोनों को लेकर राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन में तुक, छन्द, अलंकार लौकिक न्याय, अध्याहार, संवाद, संख्या, व्यक्ति आदि सभी उक्त तत्वों पर विचार किया है। १. वर्ण विषय को लेकर उन्होंने राजस्थानी कहावतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है– १, ऐतिहासिक, २. स्थान संबंधी, ३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र [क] जाति संबंधी कहावतें [ख] नारी संबंधी कहावतें। ४. शिक्षा ज्ञान और साहित्य–क. शिक्षा संबंधी कहावतें। ख. मनोवैज्ञानिक कहावतें। ग. राजस्थानी कहावतें। ५. धर्म और जीवन दर्शन– क. धर्म और ईश्वर संबंधी कहावतें। ख. शकुन-संबंधी कहावतें। ग. लोक विश्वास विपयक कहावतें। घ. जीवन दर्शन संबंधी कहावतें। ६. कृषि विषयक कहावतें ७. वर्षा विषयक कहावतें। ८. परकीर्ण कहावतें। प्रस्तुत प्रबंध विषय को ध्यान में रखकर हम भी राजस्थानी कहावतों को नीचे लिखे हुए वर्गों से स्पष्ट करें: १. मानव जाति और उनकी विरादरी से। २. इतिहास एवं स्थान से। ३. वर नीति और धर्मोपदेश के जीवन से। ४. कृषि, वर्षा तथा लोक शकुन

विश्वास से। ५. मनौविज्ञान और व्यंग से। ६. प्रकीर्ण परिधि से– क. कहानियों की कहावतें। ख. राजस्थानी साहित्य की कहावतें। ग. अन्य कहावतें।

१. मानव जाति और उनकी बिरादरी से — 'नारी' – राजस्थानी कहावतों में नर-नारी के स्वभाव और उनकी वर्ण बिरादरी के आचार विचार तथा नीति-रीति का वर्णन मिलता है। इनके कहावती कोथ, वर्ण बिरादरी की अनेक तस्वीरें हैं, जो पाठकों के सम्मुख मानव-वृत्तियों को प्रकट करते हैं। राजस्थानी कहावतें हैं— नारी नर की खान। लुगाई की कूख ली है। नारी को तो एक भी चोखौ, सूरी का बारह भी के कार का? पहली में नर रूपी रत्न की खान नारी को बताया है। दूसरी में लुगाई की कूख [कुक्षी] की प्रशंसा की है और अन्तिम में शूकरी के बारह बच्चों की बजाय सिंहनी के मात्र एक शावक को उत्तम बताया है। अतः हम अपना मानव जाति और बिरादरी विषयक अध्ययन नारी को लेकर ही आरंभ करेंगे। क्योंकि मनु ने भी कहा है — यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता—अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता रमते हैं। हां! हमारे देश में नारी का प्राचीन काल से आदर रहा है। ज्ञान अधिष्ठात्री सरस्वती, द्रव्यदेवी लक्ष्मी और बलदेवी शक्ति, नारी ही है। सीताराम, राधेश्याम में प्रथम नारी का ही नाम आया है। श्री मैथिलि शरण गुप्त का निम्नलिखित कथन ठीक ही है—एक नहीं दो दो मात्राएं, नर से भारी नारी –। मगर इन आदर्शों के साथ उसके कलह जैसे अवगुणों की करतूत वाली कहावतें भी मिलती हैं—१. तेरा गमाया घर गया श्रे कांदा खाणी नार –अर्थात् हे प्याज खाने वाली औरत तुम्हारे उजाड़ने से ही घर नष्ट हुआ है। २. देख बंदी का चाळा, सिर मुंडा मुंह काळा – ३. नारी गिज्या सो नर मुवा आदि। नारी जीवन समस्या पूर्ण है। उसमें अनेक उलझनों वाली कष्टकर कहावतों का भी बाहुल्य है।

त्रिया –

१. तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।
२. तिरिया तेरै मरद भट्टारै।
३. तिरिया रै दो आसरा, का पीहर का सासरा।

लुगाई –

१. लुगाई रौ न्हावणौ, मरद रौ खावणौ।
२. लुगाई रौ जमारौ न्यारौ।
३. लुगाई रौ रूप कांई देखणौ, कूख देखणी।

नारी के पारिवारिक कुछ नमूने –

१. दादी परणी नीं, दोहिती नै फेरा भावै।

२. जच्चा जिसा ही बच्चा ।

३. मासी काळा कुत्ता खासी, भांणजा छुडासी ।

४. मरौ मां जीऔ मासी ।

५. पीसै री डोकरी, टक्को सिर मुंडाई रो ।

६. माड़ो कांम कुण करियो ? के, बहू । बहुआं कनै चोर मरावै, चोर बहू रा भाई ।

७. बेटी अर बळद जुवौ नीं न्हाखै ।

८. बेटी री मां रांणी भरै बुढ़ापै पांणी ।

९. बहन हांती री धिरांणी है पांती री नीं ।

जाति संबंधी नारियां –

१. निकमी नायण, पाटड़ा मूंडै ।

२. खातण होय, वळीतै नै क्यूं जाय ? तेलण होय लूखौ क्यूं खाय ?

३. कुम्हार कुम्हारी नै नीं नावड़ै, गधै रा कांन मरोड़ै ।

४. धोवण सूं छींपी के घाट, बींरै मोगरी बींरै लाठ ।

५. गोली पारका धोवै, घरहाळा धोवती लाज मरै ।

अन्य –

१. लाली रै वाही हवाली ।

२. खसलै खेमली खिराज सूं टक्को लेले ब्याज सूं ।

३. बोळी बूझै बोळी नै के करांला होळी नै ? का चावळ का लापसी बोळी बोळी घापसी ।

४. म्है ही रांणी, तूं ही रांणी, कुण घालै चूल्है में छांणी ।

५. फुहड़ घर आई किंवाड़ी, कुता मिल चाल्या रेवाड़ी ।

उसके पीहर और ससुराल के बहिन, बेटी, बहू वाले पद पराधीनता, सौभाग्य, दुर्भाग्य, फूहड़पन, माता, जच्चा, डोकरी, सास, ननद मान्यताएं, परिस्थिति आदि के संबंध में यहां काफी कहावतें हैं। इनमें त्याग तपस्या की भावनाएं प्रबल हैं।

किसान और हरिजन तथा अन्य — नारी के बाद निष्कपटजनों में किसान और हरिजन का नंबर आता है। वे सीधे, सच्चे और मेहनती स्वभाव के होते हैं। उसे हर कोई हर बात कह सकता है। उनकी इच्छाएं अधिक नहीं होतीं। किसान कहता है —

१. नवीं मूंज री खाट, के न चूवै टापरी, भैंसड़लचां दो चार के दूझै बापड़ी। बाजर हंदा रोट, दही में ओलणा, इतारा दे करतार फेर नहीं बोलणा ॥

२. आळस नींद किसान रौ खोय ३. करसौ रात कमावै, बाण्यां ना बेटा सारू ।

[किसान बनिये के लिए कमाता है।]

हरिजनों के विषय में भी अनेक कहावतें सुनी जाती हैं। कुछ आधुनिकता

के साथ भी चल पड़ी हैं । जैसे– डेढ़ां री अर भेड़ां री आजकलै चढ़ियोड़ी है । [वर्तमान उन्नति] १. आसंगाई ढेढ़णी बिलोवणै में पग देवै २. डेढ़ा ढळकौ [नवीन कार्यों में उत्सुकता] ३. डेढ़णी वाळौ जोबन [अपने को प्रकट करना ४. जात री डेढ़णी भींटोड़ौ भावै कोनीं ५. के थोरी कौ गायबौ ? [थोरी का क्या गाना] ६. के साटिये री साख [साटिये का क्या प्रमाण] । ७. डूंमा रौ सौ डेरौ [अस्त व्यस्त वस्तुएं] ८. सैंसी रौ सौ सांगौ [गंदगी] ९. भंगी रा सा लच्छ [अनुपयुक्त पहनाव] डूंम और सैंसी की बात बात में कहावतें वोली जाती है । जैसे—

पिलंग निवारां पोढ़ती , खटरस भोजन खाय ।
रांणी वणगी डूमणी , पण तासीर न जाय ।।

गांव बळै अर डूम तींवारी मांगै

क. अधिक खाने के समय कहे– डूम है के ? ख. स्वादिष्ट खाने के समय कहे-- डूम है के ? ग. अधिक सोने के समय कहे– डूम है के ? घ. देरी से उठने पर और च. जाड़ा लगने पर कहे – डूम है के ? छ. वेकार रहने पर कहे – डूम है के ? ज. किसी चीज मांगने पर कहे– डूम है के ? झ. डूमड़ा गांव छोड , के उठा रे छोरा होकौ । स्नान न करने पर कहे–सैंसी है के ? ट. हाथ न धोने पर कहे: सैंसी है के ? ठ. मैला रहने पर कहे– सैंसी है के ? ड. अणभणिया भील मन जाण्या पलांणै । अशिक्षित भीलों से स्वेच्छा पूर्वक काम लिया जाता है । पिछड़ी जाति के पेशेवर लोक १. आंख मीणे री सी [डकैतों की सी खूंखार आंखें] २. ल्होसकौ बावरी रौ सौ [बड़ा साफा] ३. लड़ाई ढेढ़ा-थोरचां री सी [असभ्य बोली] ४. घाघरौ गूजरी रौ सौ [मोटौ] ५. धोबी री सी मोगरी [छोटौ एवं गोल औरत] ६. माली चाहै बरसता [पानी का इच्छुक] ७. नाई री नौ पांसळी [चतुर] ८. नौ नाई पौण लुगाई [दुर्बल] ९. भाव कूंण बधायौ ? के गरीब [गरीव को पैसों के लिए अनाज सस्ता देना पड़ा] १०. भाव कूंण घटायौ ? गरीब [गरीब को पेट के लिए अनाज महंगा भी लेना पड़ा] ११. गरीब का सैंग गुण गळ जावै [गरीब के गुणों की कदर नहीं होती] १२. नट बुद्धि आ जाय, जट बुद्धी नीं आवै [नट बुद्धि से जट बुद्धि जबरदस्त] १३. दर्जी कहता है– ज़ींणा जीतै सींणा [जीवन पर्यन्त सीना] १४. ओ गोलौ ! ओ गोलौ कहे– गोलौ थारौ बाप । [कम असल जाति] १५. खातण क्यूं बळीते नै जाय ? [खाती की स्त्री को ईंधन लाने की क्या जरूरत] १६. तेली रा तेरह मर जाय [हठ धर्मी] १७. गाडिये बळद रै गुळां री के अेब ? [साधारण व्यक्ति के लिए कोई काम अशोभनीय नहीं] १८. गदड़ी सांगण आथर दूजौ । [मनुष्य वही , पहनाव दूसरा १९. चाचेदी धी , शक्कर विच घी । [चाचे की लड़की से मुसल-

मानो में अच्छी शादी गिनी जाती है] २०. मियां है जठै फजीती घणी [एक लोक कथा] २१. भील रै कांई ढील। [कार्य तत्पर] २२. तेलो किंकौ वेली। [तेली किसी का मित्र नहीं] २४. खत्री कींरै मित्री। [खत्री किसके मित्र होते हैं] २५. नाई वात गमाई। [चुगलखोर नाई] २६. जाट आगड़ा थाट। [हल चलाने वाला] २७. तेल जळै दरवार रौ, नाई रौ के जाय। २८. धाणका मां का न भांण का [धांणके किसी के सज्जन नहीं] २९. लोह जांणै लुहार जांणै, खाती री वलाय जांणै। [सबसे अलग] ३०. सौ सुनार री अेक लुहार री। ३१. सुनार मां री हांचळ [स्तन] ही नीं छोड़ै [वीच में उड़ा खाना]

तुलनात्मक कहावतें [जातियों की] — १. चिकटी चमार बंकौ, मूढ़ बंकौ वांणियौ, खोट में सुनार वंकौ, कुवध वंकौ कांणियौ।

२. छोडा छोलण वूंट उखाड़ण, थपथपियौ अर नाई, इतरा चेला मत करौ गुरूजी कुवद करैला काई।

जाट — मारवाड़ की प्राचीन संस्कृति में जाट का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोक मानस ने उसकी खूब खबर ली है। जाट पर यहां पर्याप्त उक्तियां पाई जाती हैं। सरल स्वभाव और अजीव अक्खड़ता के साथ उसकी हाजिर जवाबी तथा मसखरापन प्रसिद्ध है। स्थानाभाव के कारण इस जाति की कहावतों के दो चार नवीन उदाहरण आपके सामने रखे जा रहे हैं – एक नट पानी का घी बनाकर लोगों से कह रहा था – यह घी है। यह सारे पदार्थों को स्वादिष्ट वना देता है। इस पर जाट तुरन्त कह उठता है। 'तम्वाखू वणाय ले' [तो फिर तम्वाखू को सुधारा जाय –] वस हंसने लगते हैं। नट लज्जित हो जाता है। तब से कहावत चली है – जट बुद्धि नीं आवै। १. किसी ने पूछा – चौधरी गंगाजी देखी, वोल्यौ – खोदी किसै कुतके सूं ही ? २. जाट आगड़ा थाट, भण्यौ जाट खुदा वरौवर ३. जाट जंगळ ना छेड़िये, हाटां वीच किराड़, आठ फिरंगी नौ गोरा, लड़ै जाट रा दो छोरा ४. लोटियौ जाट करणियौ मेणौ अकल रौ उस्ताद ५. आसोजां रा तपिया तावड़ा, जोगी हुग्या जाट। क. जाट जंवाई भाणज्या, रैवारी सुनार ६. जाट री वेटी काकीजी री आंण ७. जाट आवै जट्टण, दो रोटी चट्टण। आज इस जाति का यहां आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पथ उज्ज-वल है।

वांणिया — जाति संवंधी कहावतों में सवसे अधिक वनिया जाति की कहावतें प्रचलित हैं। उनकी कुछ आधुनिक कहावतें देखें –

१. रांणियां रै जायेड़ा सूं वांणियां विसेस है।

२. गांव विगाड़्यौ वांणिया, खेत विगाड़्यौ सिणियां, रियौ खियौ वांमणिया।

३. रूठियोड़ा भोपाळ के तूठा वांणिया, जेबां घाल्या हाथ जदे म्हा जांणिया ।
४. बांण्या तेरी बांण, कोई नर जांणै नहीं ।
पांणी पियै छांण, लोही अण छांण्यौ पीवै ॥
५. वनिक पुत्र कागद लिखै, कानां मात न देय ।
हींग मिरच जीरौ लिखै, हुंग मर जर कर देय ॥
६. बांणिया मीत न वैस्या सती, सांच नै बोलै अेक रती ।
७. जांण मारै बांणियौ, पीछांण मारै जाट ।
८. और मंत्री सब कीजियै अेक न कीजियै बांणियौ ।
९. खड़ौ बांणियौ पड़ै समांन, पड़्यौ बांणियौ मरै समांन ।
१०. घरां बुलावै, मीठौ बोलै, करै मन रा जांणिया ।
११. धनवन्ती रौ कांटौ — धनवन्ती रै कांटौ लाग्यौ सार करै सब कोई ।
निरधनियौ डूंगर सूं पड़ग्यौ खबर न लेवै कोई ।

राजपूत — राजस्थान की यह जाति अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध है । इसने लोक की पूरी प्रतिपालना की है । अच्छे राजा के राज्य में प्रजा चैन की बंशी बजाती है । १. राजा राज प्रजा चैन २. रणखेती रजपूत री ३. राजपूत री जात जमी ४. रजपूत नै रेकारै री गाळ । ५. रजपूती रही नहीं, पूगी संमदरां पार ६. रजपूतो धोरां में रळगी, ऊपर रळगी रेत ७. राजा मांनै सौ रांणी, बाकी भरौ पांणी । रजपूतां रौ रांम नीसरग्यौ है तज्या राजा जोगी अगन जळ ।

बांमण — राजस्थानी कहावतों में बांमण की नूंता वृत्ति, भिक्षा वृत्ति, पाप पूर्ति, दान इच्छा, मूर्खता आदि की भरमार है । इनकी कहावतें सुनकर कान बंद करने पड़ते हैं :

१. अेक नूतै में बांमण री नाड़ कट जावै २. बांमण रीझै लाडुआं ३. बांमण राजी जीमण में ४. बांमण बारह मन खांणै वाळौ । ५. नूंत्यौ बांमण रीस करै । संस्कृत के नाटकों में बामण को जहां कहीं भी विदूषक बनाया गया है, वहां उसकी मिष्ठान्न प्रियता की हंसी उड़ी है ।

ब्राह्मण के लिए हीन वृत्ति वाली कहावतें — १. काळ कुसमे ना मरै, बांमण बकरी ऊंठ, बौ मांगै बा फिर चरै, बौ सूखा चाबै ठूंठ । इस मंहगाई और अकाल के जमाने में तो ब्राह्मण की ऐसी लोकोक्तियों को बहुत प्रोत्साहन मिला है । जैसे–भिक्षावृत्ति तेरा ही सहारा है । ब्राह्मण हाथी चढ़ियौ ही मांगै अर्थात् समृद्ध ब्राह्मण भी मांगने के स्वभाव को बनाये रखता है । इस कहावत की एक बात देखिये । किसी राजा ने अपने ब्राह्मण को अपने परगने की हाकमी प्रदान की । उसका आदेश ब्राह्मण को मिला । उसमें उसका पेटिया लिखा है या नहीं सो भी उसने पूछ लिया–इण में हमारौ पेटियौ, पण लिखै हूं छै–राजा ने कहा–राजयोग्या नहीं विप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुनः । बाह्मण नै साठ बरस तांई तौ बुध

आवै कोन्या अर पछै जावै मर। यह कहावत ब्राह्मण की मूर्खता की निशानी है। वंग रा लागू कित्ता ? ब्राह्मण, नाई, कुत्ता ! कुत्ता बामण कुत्ता हाथी, कदै न जाति के मायो। काळ वागड़ सूं ऊपजै, बुरो बांमण सूं होय। बांमण यूं बतळायो, लारै लाग्यो आयो। बांमण तो हथळेवै रो सीरी है। बींद मरो बीनणी मरो, बांमण रो टको तैयार है। बांमण जाटो, पागड़ फाटो खाटो रावड़ खाय, लेपतड़ो कासी पढ़चो तो जातो वो न जाय। बांमणां रो बाजार अर कुत्तां री कतार कण देखी।

२. **इतिहास एवं स्थान से**— अ. राष्ट्रीय परंपरा में ऐतिहासिक कहावतें; कहावतों में राष्ट्रीय इतिहास एवं भौगोलिक स्थिति का वर्णन भी रहता है। ये सही जानकारी के निर्देशन स्वरूप हैं। इनसे वीर, विद्वानों तथा स्थानों की विशिष्ट संस्कृति का ज्ञान होता है। राजस्थान की पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतें एक प्रकार से राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएं ही हैं। गाथा शब्द, ऋगवेद, एतरेय ब्राह्मण और निरुतक से यहां काम आने लगा है। सतपथ ब्राह्मण तथा एत्रेय ब्राह्मण में वैदिक गाथाओं के पर्याप्त नमूने मिलते है। पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश के बाद पुरानी राजस्थानी भाषा में तो इनके पाठ शुरू हो गये थे। वात, ख्यात और कथा काव्य तो इन गाथाओं के पिटारे हैं, जिनको हम ऐतिहासिक कहावतें, उपाख्यान तथा परवाद नाम से चुन चुनकर निकाल रहे हैं।

[आ] घटनाओं वाली ऐतिहासिक कहावतें — निम्नलिखित ऐतिहासिक कहावतों का अर्थ घटनाओं से स्पष्ट होता है। कई जगह इनको बातालार्थ भी कहा गया है :

१. कान्दा खाया कमधजां, घी खायो गोलां।
चूरू चाली ठाकरां बाजन्तां ढोलां॥

२. गैली पहली समझी नहीं, मेंहदी का रंग कहां गया।
अब प्रेम नहीं उस प्यारी से वह पानी मुल्तान गया॥

३. मांन रखै तो पीव तज, पीव रखै तज मांन।
दो दो गयन्द न बंधहि, अेकै खंभू ठांण॥

४. अणचकिया काळ भळै मत आई म्हारै देस में।
[ऐसी ऐतिहासिक भयंकर स्मृति को भी लोक मेधा अभी तक याद रखती है।]

[इ] व्यक्ति प्रधान ऐतिहासिक कहावतें :

१. भीमां तूं भाटो, मोटा मगरा मांयलो।
कर राखूं काठो, संकर ज्यूं सेवा करूं॥

२. तरवर जांही मोरिया, सरवर जांही हंस।
बाघो ज्यांही भारमली, दारू ज्यांही मंस॥

[ई] प्रश्नोत्तर ऐतिहासिक कहावतें :

१ आग लगी बन खंड में, दाज्या चन्दन वंस ।
म्हे तौ दाज्या पंख विन, तूं क्यों दाज्यौ हंस ॥
पांन मरोड़िया रस पियौ, रमिया ज अेकण डाळ ।
थें दाझौ म्हें उड़ चलां, जीणौ किताक काळ ॥

२ पीथल धोळा आविया, बहुली लागी खोड़ ।
पूरै जोबन पद्मणी, ऊभी मुक्ख मरोड़ ॥
प्यारी कहै पीथल सुणौ, धोळा दिस मत जोय ।
नरां नाहरां दिगमरां, पाक्यां ही रस होय ॥

३ उठ धवळा कंद धर, थो कहूं जांगड़ियांह ।
गाडी पड़ियौ उजाड़ में खींचै न टोगड़ियांह ॥
दांत पड़िया खुर जरजरिया, सींगां छोडी साथ ॥
ले सांई गळ घंटलौ औरां रै गळ बांध ।

[उ] स्थानीय ऐतिहासिक कहावतें — ये स्थान विशेष की कहावतें विश्व भर में अपने अपने रंग से रंजित हैं ।

१ काग कुमाणंस ठौड़ पड़ियौ मरै ।
२ सोडै घर सांखली सांखली घर सोडी, दो घर डूबता अेक घर डूबौ ।
३ सपनै देखै सांखली ढींगसरी रा केर ।
४ काळू बड़ी द्वारका मेखौ दीनानाथ ।
५ काळू आडी काळका वासी आडी बाड़ ।
६ लादड़ियौ तौ लादौ कोनीं डेलू रहग्यौ दूर ।
जालपसर रा चौधरियां कुवौ दीनौ बूर ॥
गांव तौ कूजट परौ, और सब ढांणी ।
अन्न रौ अंकार कोनीं खारौ जहर पांणी ॥
७ माया मांणी बाघला के लाखै फूलांणी ।
रहती पहंती मांणग्यौ हरगोविन्द नाटांणी ॥
८ लागी फेट खंडेले री सीकर होगी धेलै री ।
९ वण्या अेक बार तौ रतन ।

(ऊ) भौगोलिक स्थान प्रधान ऐतिहासिक कहावतें — ये प्राचीन रियासतों के शहर विशेष की कहावतें हैं, जिनमें गढ़-कोट और नदी पहाड़ों का वर्णन मिलता हैं । रियासतों का एकीकरण होने पर तो नई कहावतें बनने लग गई हैं । जैसे— कार्य के सुधर जाने पर जैपुर वणगियौ — अर्थात् जयपुर राजधानी बन गया है ।

१ देख्यौ नीं जैपरियौ तौ कुळ में आयर के करियौ ?
२ जैपर सहर चितरवां छाजा, लोग मजूर लुगाई राजा ।

३. पीसँ रौ जैपर नीं तौ जमपुर ।:
बागां बागां बावड़ियां, फुलवादां चहुं फेर ।
कोयल करै टहूकड़ा, अहियौ घर आंमेर ॥

(क) राजस्थान –
राजस्थांन प्रदेस है, सब देसां रौ भांण ।
अजब इलाकौ मुरधरा, जरा न सकां बखांण ॥

(ख) मारवाड़ –
आकन रा झोंपड़ा, फोगन री बाड़ ।
देखी राजा मांनसिंह थारी मारवाड़ ॥

(ग) ढूंढ़ाड़ –
ऊंचा पर्वत सर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा बधका नीपजै, रंग देस ढूंढ़ाड़ ॥

(घ) बीकानेर –
दारू अमल मिठाइयां, सोना-गैणौ साह ।
पांच थोक पृथ्वी सिरै, वाह बीकांणा वाह ॥

(ङ) हाड़ौती –
देख्यौ रांणा थारौ देस, रांड सुहागण अेक ही भेस ।

(च) आबू –
जब खाणौ भखणौ जहर, पाळौ चलणौ पंथ ।
आबू ऊपर बैसणौ, भलौ सरायौ कंथ ॥

स्थान संबंधी कहावतें – [तुलनात्मक]
मारवाड़ मनसूबै डूबी, पूरब डूबी गांणा सूं ।
खान देस खाणा में डूबी, दक्खण डूबी दांणा सूं ॥

ऋतुओं के पक्ष में –
१. सीयाळौ सौभागियां, दोरौ दोजखियां ।
२. पग पूंगळ, धड़ कोटड़ै, उदरज बीकानेर ।
भूल्यौ चूक्यौ जोधपर, ठावौ जैसलमेर ॥ [अकाल के लिए]

नर-नारी के पक्ष में –
मारवाड़ नर नीपजै, नारी जैसलमेर ।
तुरी तौ सिंधां सांतरा, करहल बीकानेर ॥

(क) गढ़ –
दाब फतेहपुर देस में, कर तुरकां नै तंग ।
सीकर गढ़ घाल्यौ सिरै, राय सलौतां रंग ॥

(ख) गढ़ –
सिर मांडण गुजरात सिर, दसज कीधी दौड़ ।

उण सांगा रौ बैसणौ , चंगौ गढ़ चितौड़ ।।

नदी –

रैंडीयौ रणका केरै , लूणी लहरां खाय ।
वांडी बापड़ी क्या करै , जुहियां से घर जाय ।।

(ए) ईश्वर नीति एवं धर्मोमदेश के जीवन से — (क) ईश्वर संबंधी—यहां हम ईश्वर विश्वास नीति मूलक और भाग्यवाद की कहावतें लिखते हैं । राजस्थानी में इस विषय की कहावतों का सर्वत्र प्रचार है । कुछ ईश्वर विषयक नई कहावतें भी चल पड़ी हैं । जैसे आज के रामराज्य की लीला न्यारी है —

१ रांम री मां नै लातां मारणी २ राम सूं वैर बुरौ है ३ रांम आगै जोर नहीं चालै ४ रांम देखे ५ रांम का मारयां ६ रांम के घर न्याय है ७ रांम देवै तौ छप्पर फाड़र देवै ८ आंधै री माखी रांम उड़ावै ९ मारण वाळा सूं जियाळण आळौ लूंठौ है १० रांम भुळा देना ।

नैतिक संबंधी — (ख) इसमें अच्छी बुरी [नैतिक अनैतिक] दोनों प्रकार की कहावतें आयेंगी ।

१ नींवत माड़ी २ नींवत रौ चोर ३ नींवत रौ काळौ ४ नींवत रा फळ ५ नींवत लारै बरकत ६ सांच नै आंच कोनीं ७ धरम उठा लेणौ ८ धरम री वाड़ हरी ९ धरम खातै १० धरम खुट्ग्यौ ११ धरम फळै १२ कूड़ में धूड़ कोनीं । १३ नेम निमांणै धरम ठिकांणै ।

अनैतिक – (ग) १ भलाई रांड कुत्तां री भू २ पाप वधै ३ कूड़ परोटै किरांणौ । ४ करौ पाप खाओ धाप ५ पाप रौ घड़ौ मोड़ौ भरीजै ६ पापी रौ धन परळै जाय ७ ठायां ठायां टोपली बाकी रा लंगोट ।

भवितव्यता होकर रहती है—(घ) १ मौत रौ पासौ खाली है २ खूटी नै बूंटी कोनीं ३ भावी प्रवल है ४ कदेई घी घणा कदेई मुट्ठी चिणा ५ करम कमेड़ी रौ सौ, मन राजा रौ सौ ६ मन चाले टट्टू [भाग] नहीं चालै ७ अंजळ पांणी री बात ८ दांणै दांणै पर मोर छाप ९ लिख्योड़ौ चुगै १० करणी रा फळ लागै ११ औ भौ मीठौ अगलौ कण दीठौ । १२ भाग छियां सागै १३ घोड़ै री अर मरद री भाग फिरयां खुलै १४ अजगर पड़यौ उजाड़ में दाता देवण हार १५ करमां री बाजै १६ जी मांगै तौ करौ ।

४. कृषि, वर्षा तथा शकुन विश्वास से — (क) कृषि ज्ञान की कहावतें १. राजस्थान कृषि कार्य का मुख्य प्रदेश है । इसमें कृषि संबंधी जितनी कहावतें मिलती हैं, उतनी और कहीं नहीं मिलती । कृषि संबंधी कहावतें जो किसान, खेत , बैल, ऊंट आदि का ज्ञान जनता के समक्ष सदैव पेश करती रहती हैं । इनमें खगोल-भूगोल का सम्मिश्रण अनुपम और अद्वितीय है । यथा -- खेत बड़ा घर सांकड़ा, हळ हालां, खेत पड़ालां-- उक्त कहावतों का वातावरण कृषि मूलक है एवं इनका

अभिधेय खेती से संबंधित है। राजस्थानी में ऐसी अनेक कहावतें मिलती हैं जो किसान की पूर्ण मित्र हैं। ये कृषि शास्त्र के सूत्र हैं और किसान के लिए बड़े लाभदायक हैं। यहां हम कहावतों को पहले लेते हैं, जिनमें कृषि कानूनों के साथ ज्योतिष-शास्त्र के गम्भीर तत्व भी सन्निहित हैं :

१ सांवण पैली पंचमी, मेह मंडियौ असराळ।
थिरचक थाणा रोपदौ ले खेतां हळ हाल ।।

२ सांवण में सूरियौ चालै भादूड़ै परवाई।
आसोजां में पिछूं चालै, चारूं कूंट सवाई।

३ खेती बळवां सेती, ४ बावणी डेहरी को हुश्रौ भावै सेर हो ५ बुध बावणी विसपत लावणी ६ जेठ बाजरी मोभी पूत भाग्यां रै हुवै ७ रास पुरांणी बाजरी, मींडक फाळ जवार। इक्कड़ दुक्कड़ मोठिया, कीड़ी नाळ गुवार। ८ मेह मेह करतां वडेरा मरग्या ९ मेह बटाऊ पांवणा, अणचिन्त्या ही आवणा १० वूठा जावै मेवड़ा, दीठां जाय कटक ११ हळ वायर हंसियौ, कस लेसी कसियौ १२ स्यावड़ माता सत की दाता १३ तीसां रातां टींडसी १४ कांती में सब साथी १५ माह उवारै फागण बाळै। १६ धिन खेती धिग चाकरी।

अकाल – १ पग पूंगळ, सिर मेड़ता, उदरज बीकानेर।
फिरतौ घिरतौ कोटड़ै, ठावौ जैसलमैर ।।

२ चेत मास उजियाळै पाख, नौ दिन बीज लुकोयै राख।
आठै नमैं निरख कर जोय, ज्यां वरसै ज्यां दुरभख होय ।।

३ आयौ गयौ न पूछै बात, खेती में क्यूं आथ न साथ।

(ख) **वर्षा विज्ञान की कहावतें** – मारवाड़ में वर्षा निमित्त भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र इन चारों प्रकार के निमितों से संबंध रखने वाली वर्षा विषयक कहावतें खूब प्रचलित हैं। स्थानाभाव के कारण अलपोदाहरण दिये जाते हैं। सजीव द्वारा वर्षा ज्ञान –

१ अतरित आळौ आदमी, सोवै निद्रा घोर।
अणपढ़िया आतम थकी, कहै मेघ अति जोर ।।

२ ढोल दमामा दुड़बड़ी, बारौ चंदर बाज।
कहे डोम दिन तीन में, इन्द्र करै आवाज ।।

३ कुन्दन जमै न जड़ाव पर, जमै सलाय न कीट।
कह जड़िया सुणज्यौ जगत, उड़ै मेह री रीठ ।।

४ घोव्यां घोखौ मिट गयौ, मन में हुयौ हुलास।
देख सूदणी वजवजी, मेह आवण री आस ।।

५ आगव सूजै सांडणी, दौड़ै थळां अपार।
पग पटकै वेसै नहीं, जद मेह आवण हार।

६ घड़लां पांणी ऊकळै, चिड़ियां धूड़ में न्हात।

वर्षा नेड़ी आ रयी, आज तथा प्रभात ।।

७. चैन नहीं चंचोलड़यां, कूकत रैण कुजोग ।
जळहरजामी नाख जळ, वळण बुझावण रोग ।।

८. गिरगिट रंग विरंगौ होय, मक्खी चटकै देह ।
माकड़ीयां चहचह करै, जद अत जोरै मेह ।।

अन्तरिक्ष द्वारा वर्षा ज्ञान – १. परवाई पर पिच्छु करै, घर बैठी नार घड़ौ भरै ।

२. सुकरवारी वादळी, रही सनीचर छाय ।
ड़ंक कहै अे भंडळी, बिन वरस्यां ना जाय ।।

३. आभौ रातौ, मेह मातौ । (४) आभौ पीळौ, मेह सीळौ ।

५. उगन्तै री माछळी, आथण मोग हुलास ।
वादळ कर गिरमी करी, जद वरसण री आस ।।

६. आभै जळ रौ जोर है, जळ भर चांद जळेर ।
कुंडाळौ करड़ौ कस्यौ, सूरज रै चौफेर ।।

७. आंधी लारै मेह आवै, बेटा लारै बहू आवै

दिव्य द्वारा वर्षा ज्ञान – (१) साम्हां सुकरां सुर गुरां, जे चंदौ ऊगंत ।
ड़ंक कहे हे भंडळी, जळ थळ अेक करंत ।

२ खादरा सूं भय खावता, आद्रा दिया धपाय ।

३ रोहणी गाजै, कीरत रा बरसै । टुक टुकड़ा नै दुनियां तरसै ।

४ बरसै भरणी, छोडै परणी ।

५ आद्रा बाजै वाय, तौ पड़ी झूंपड़ी झोला खाय ।

६ हसती सूंड उलाळै, तौ पोटौ जाई गाळै ।

७ सत मिछ ऊपर देव गुर, मंगळ चित्राधार ।
अन्न घास कदै ना हुवै, रच्छक जगदाधार ।।

८ ऊग्यौ आहेड़ी, के देखै बायेड़ी । (९) :''' पिछली बाही, पुण्याई लागै ।

उक्त ज्ञान सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और तारों के द्वारा होता है ।

सम्मिश्रण द्वारा वर्षा ज्ञान – संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में वर्षा के लिए कातिक से आसोज तक बारह महीनों के दिनों का फल निर्धारित किया गया है । राजस्थानी भाषा में भी इसी तरह के कहावती पद्य बारह महीनों के लिए प्रचलित हैं । यहां केवल एक पद्य नमूने के तौर पर दिया जा रहा है — नौ दिन कहिजै नौरता शुक्ल चेत रै मास । जळ वूठै बिजळी हुवै, जांणौ गरभ विणास ।। अर्थात्: चैत-शुक्ल पक्ष नौ रात्रि में यदि पानी बरसे तो समझलो कि वर्षा के गर्भ का नाश हो गया । आगे वर्षा नहीं होगी । प्राचीन ग्रंथों में इस वर्षा गर्भ का उपक्रम, प्रसव उपघात, दोहद [ऊख-इच्छा] आदि का उल्लेख है । गर्भ धारण के छः महीने और पन्द्रह दिन [१९५ दिन] बाद वर्षा गर्भ का प्रसव होना माना है । इस विषय में निम्नलिखित दोहा देखें —

जिण दिन होवै गरभड़ी, तिण थक्की छै मास।
ऊपर पन्द्रह दीहड़ै; वरसै मेह सुगाज ।।

[ग] शकुन अपशकुन की कहावतें– हिन्दू अपने धर्म को सही बताते हैं और अन्य अपने को। हिन्दुओं में भी शैव, शाक्त वैष्णव, जैन और सिख अपने अपने सिद्धान्तों, विश्वासों एवं भावनाओं को सही बताते हैं। व्यक्ति अपने में व्यक्त नहीं रह सकता। वह सदैव समाज के विचारों से प्रभावित होता है। अतः कहा जा सकता है कि मनुष्य सत्यासत्य की खोज से मूक रहकर अपने को समाज के आगे समर्पण कर देता है। वह सामाजिक लोगों से जो भी सुनता है उसे अन्धा-धुन्ध मान जाता है। वह पूर्वजों से अपनी जातिगत रूढ़ियां को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करता चलता है। इसे हम कच्चे घड़े का रंग कह सकते हैं, जो बचपन से ही रंगा जाकर कितना पक्का हो जाता है?

दूसरी बात, मनुष्य अपने तत्व ज्ञानी पूर्वजों की मान्य परम्पराओं के पक्ष में रहकर ही मानव धर्म का पोषण करता है। ऐसी पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आती हुई धारणाएं, दान पुण्य और शकुन स्वरोदय को चिरस्थायी बनाये रखती हैं। तभी तो हम अपने विवाह यात्रा आदि के मंगल समय में नीचे लिखी बातों पर पूर्ण विचार करते है —

आटो, कांटो, घी घड़ो, खुलै केसां नार।
वांवों भलो न दाहिणो, स्याळी, जरख सुनार ।।

अर्थात् आटा, कंटक, घी से भरा घड़ा तथा बाल बखेरे हुए औरत यदि यात्रा के समय सामने आ जाय तो महा अशुभ मानते हैं। नाहर, जरख और सुनार तो चाहे दाहिनी ओर मिलो या बायीं ओर किसी भी अवस्था में शुभ नहीं होते। जैसे– हथेली में खाज आना धन प्राप्ति और पैर में खाज [खुजली] आना यात्रा का विधान माना जाता है, वैसे ही यहां रास्ते में लकड़ी की गाड़ी, विधवा नार, जोगी, सोगी, बिल्ली, नाहर, जरख, खाली घड़ा, कन्या की छींक, बायीं कोचरी का बोलना, दाहिनी तरफ गधे का गुजरना, मरद की बाईं आंख फुरकना आदि बातें अपशकुनों में शुमार हैं। शिशुपाल रुकमणि को ब्याहने बरात लेकर रवाना हुए तब ये उपरोक्त सारे उल्टे अपशकुन उन्हें हुए थे —

तिलक विहुणौ मिल्यौ पांड्यौ, सांमै विधवा नारी। प्राचीन परम्परा में गाय, गधा, सियार, तीतर, नीलटांस, सोन चिड़ी, मालाळी, बांझ, निपुत्रा, चारा, घास, आग, [धूम्र युक्त] औखद, पागल, काली चीजें, आदि को दायें बायें देखकर शकुन मनाये जाते हैं। राजस्थानी कहावतों में अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। इस भाषा में शकुन को 'सूंण' नाम से संबोधित किया जाता है। जैसे – मिनख सूंण री रोटी खाय।

१ डावै तीतर डावैं साळ, डावं खर बोलै असराळ।
डावैं लूंकां डों डों करै, लंका रौ राज विभीसण करै।
२ खर डावा विस जीवणा।
३ तीन कोस भी मिल जाये कांणौ तौ पाछौ घर नै आजाणौ।
४ आंख फडूकै दहणी, लात ममूकां सहणी।
५ नाई सांमो आवतां दरपण हाथ मिलंत, सुकन विचारै पंथिया, आसा सै पूजंत।

यात्रा पर जाते समय बायें तरफ कोचरी के बोलने पर अपशुकन माना जाता है। उसका प्रभाव मिटाने के लिए निम्न प्रकार की कई कहावतें कही जाती हैं —

[क] जाट जाटणी रांधै सीरौ, कोचरी रै मुंह में खेजड़ी रौ खीरौ।
[ख] तरभरिया तरू ऊपरां, चन्दा केळ करंत।
निरधनियां धन होयसी, बिछड़्या आय मिलन्त।।
[ग] कुंभ करै वौ कोचरी, हड़मन्त नै हिरणी।
इतरा लीजै जीवणा, प्रभातां मिरणौ।
पाठांतर - कुंभ केरै ओ कोचरी, विषवर नै वाराह।
इतरा लीजै जीवणा, बाकी सब डावाह।।
[घ] कुंभ करै ओ कोचरी, दायां आवै भाज।
जै बोलै अै जीवणां, मिलै परगणौ राज।।
[ङ] काळी हाळी बाळदी, गाडे़ती गवाळ।
सात देव रक्षा करौ, पंखेरू पूंछाळ।।

राजस्थान में कई लोग शुकनों के ज्ञाता हो गये हैं, और कई आज ही मौजूद हैं। यहां शकुनों की लोक - कहानियां भी प्रचलित हैं। आगे कुछ छींकों की कहावतें देखें —

छींकत खाजै छींकत पीजै, छींकत रहिजै सोय।
छींकत पर घर कदी न जाजै, लांठी बाजी होय।।

अर्थात् राजस्थान में भोजन, स्थान, दान - पुण्य में बायीं अथवा पीछे की छींक को और विद्या अध्ययन, दवा सेवन, प्रदेश एवं युद्ध गमन तथा खेत जोतने जाते समय दाहिनी, सामने की एवं अपनी छींक शुभ बताई गई है।

हल जोतने जाते समय तो लोग बड़े शकुन स्वरोदय से जाते हैं। वे साथ में प्रह्लाद की [होली में जलाये नारियल की] सुरक्षित रखी चिटकी अपशकुन न लगने की गरज से ले जाते हैं। इस समय-संबंधी भी कहावतें है। एक कर्म-हीन की खोपड़ी की लोक - कथा भी उक्त विषय के संबंध में प्रचलित है। राजस्थानी लोक साहित्य में कौए के द्वारा भी शकुन मनाये जाने की कई कहावतें मिलती हैं। घर पर कौआ आकर बोलता है, तब किसी के प्रियजन आने की

इंतजार सफल मानी जाती है।

जैसे काग उडावण म्हैं गई, आयो पीव भड़क्क।
आधी चूड़ी काग गळ, आधी गई तड़क्क।

शकुन देशानुसार —– एक प्रांत के शकुन दूसरे प्रांत के अपशकुन भी हो सकते हैं। राजस्थान में यात्रा पर जाते हुए व्यक्ति को कोई पीछे से आवाज देता है तो उसे अपशकुन माना जाता है। बंगाल में यदि कोई ऐसा करे तो शकुन माना जाता है – 'पीछे थाके डाकले भालो' खाली घड़े का राजस्थानी अपशकुन भी बंगाल में शुभ माना जाता है। जैसे—भोरती थाके खाली भालो, जोदि भोरती जाय। आगे थाके पीछे भालो, जोदि डाके माय। अर्थात् भरे घड़े से खाली अच्छा होता है। यदि वह भरा जाने के लिये जा रहा हो तो और आगे की अपेक्षा पीछे की आवाज [सम्बोधन संबंधी] शुभ होती है यदि माता बुलाती हो तो यहां की अपशकुन वाली और भी कई कहावतें यहां शुभ मानी जाती हैं। बंगाल में वंध्या दर्शन अशुभ और विधवा का शुभ माना जाता है। अन्तिम बात यह है कि मनोविज्ञान वाले भी शकुन मानने वाले व्यक्ति के लिए कुछ मनोविश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। मगर ये सब शकुन है रहस्य, अगम और अनागत और अनन्त की लीला।

लोक विश्वास की कहावतें – लोक विश्वास अथवा अन्य विश्वास वैसे तो एक ही हैं। लेकिन अन्य विश्वास असत्य विश्वास है और लोक विश्वास सहैतुक एवं युक्तियुक्त विश्वास है। राजस्थान में डाकण [डाकिनी] होने के अनेक विश्वास जमे हुए हैं। वे व्यक्ति तथा समाज के बौद्धिक विकास के साथ सुदृढ़ हैं। फिर क्यों न विश्वास पर युक्तियुक्त कहावतें बनें? राईकाणी ही अर डाकण व्हैगी, पछै पाछ वयांरी, ऊंटां चढ़ चढ़ मिनख खावण लागगी। – अर्थात् ऊंटों की ग्वालिन थी, डाकिनी हो गई और ऊंटों पर चढ़ चढ़ लोगों को खाने लगी। गुटियो राजा सोवै है, डाकण छुरी पलारै है। – एक घर डाकण ही छोड़े। डाकणां रै व्याह में नूतांरां रा काळजा वंटै। आपरी मां नै डाकण कुण कवै? डाकण बेटा ले के दै? – डाकण सूं गांव रा नाळा के छांना? लोक विश्वास विषयक अन्य कहावतें भी बड़ी प्रचलित हैं। जैसे – एक मरे बच्चे की मां अपने दूसरे बच्चे के लिए फिर डरती है। तब विश्वास दिलाने के लिये कोई खैरख्वाह कहता है — 'बिल बिल गोह थोड़ी ब्याई है?' राजस्थान में इस तरह की विश्वस्त कहावतें बहुत हैं।

१. नीर निवांणा, धर्म ठिकांणा। (२) खाद करै उपाद। (३) बांझ व्यावै न दूर वाजै। (४) खर्च रा भाग मोटा। (५) निर्धन री धन रांम। (६) नौ-नगद तेरह उधार। (७) खा-पी सूं जांणी, मार कुट भाज जांणी। (८) नरां नाहरां डिग-

मरां, पाकां ही रस देत। (६) भूतां री चाळौ। (१०) सिर बड़ौ सपूत रौ, पग बड़ौ कपूत रौ। (११) सौ दवा अेक परहेज। (१२) वुध पेरै वागा कदै न रेवै नागा। (१३) कांणौ कुचडंडौ कावरौ, ना छाती पर वाळ; दिनूंगै दरसण वुरा, दौफारां ही टाळ। (१४) धन खेती ध्रग चाकरी। (१५) ठगां ठगां ठाकर बाजै। (१६)जीमणौ मां रै हाथ रौ हुवौ भलांई जहर ही। रैणौ भायां में हुवौ भलांई वैर ही। वैठणौ छियां में हुवौ भलांई केर ही। चालणौ गेलै रौ हुवौ भलांई फेर ही। धीणौ भेंस रौ हुवौ भलांई सेर ही। (१७) के वाळ सूं आळ, ठगां सूं के मितराई। के जोगी सूं झगड़ौ, सांपां किसी सगाई? (१८) राजा रौ दांन प्रजा रौ स्नांन! (१६) थावर कीजै थरपना, वुध कीजै व्यापार। (२०) मरद तौ मुछाळ वंकौ, नैण वंकी गोरियां, सुरै तौ सिंगाळ वंकी, पौड़ वंकी घोड़ियां।

इसको कई लोग निर्मूल सिद्ध करते हुए कहते हैं –

मरद तौ जबान वंकौ, कूख वंकी गोरियां।
सुरै तौ दुधाळ बंकी, तेज वंकी घोड़ियां॥

इसको यदि हम आज नीचे लिखे ढंग से वदल दें तो यह नये मुल्यांकन में प्रचलित हो सकती है। क्योंकि लोक साहित्य में जबानी प्रचार का बड़ा महत्व है। जैसे –

मरद तौ आचरण वंकौ, ज्ञान वंकी गोरियां।
वाल तौ सुआळ वंकौ, धीव बंकी त्योरियां॥

[क] राजस्थानी कहानियों की कहावतें— संसार के सभी देशों और जातियों में कहावतों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव-जीवन के व्यापक क्षेत्र में विभिन्न अनुभव सर्व-साधारण लोक के मानस को प्रभावित करके उसकी अभिव्यक्ति से संबंधित अंग को उन्नति प्रदान करते हैं। ये अनुभव ही कहावतें या लोकोक्तियां कहलाते हैं। कहावतें न तो किन्हीं तत्वदर्शी लोगों का गूढ़ चिन्तन है और न साहित्यिकों का वास्तविक ज्ञान। ये तो लोक जीवन के दैनिक अनुभवों के सफल उद्गार हैं। साहित्य के हृदय में बहने वाले जीवन-आनन्द का सार है या मनुष्य जीवन की मथानी में मथा हुआ घृत का लोंदा है।

कहावतें अपने मूल में किसी न कसी घटना के लिए होती हैं। क्योंकि जीवन नाना भांति की घटनाओं का एक क्रमबद्ध इतिवृत है। घटना से परिपूर्ण लोकानुभव है और प्रत्येक अनुभव के पीछे कोई न कोई घटना है। घटनाएं जीवन में घटती हैं और पीछे अपना संकेत छोड़ जाती हैं। मनुष्य किसी भी घटना पर वस्तुस्थिति का अनुभव करता है और वह उसी अनुभव पर अपना वुद्धिबल लगाकर, उक्ति चातुर्य-पूर्ण अभिव्यक्ति करता है, तव वह कहावत वन जाती है। कहावत ही जन-साधारण का नीति-साहित्य है। इसी से जन-सामान्य हर समय शिक्षा ग्रहण करता रहता है।

लोक साहित्य में कहावती साहित्य की बड़ी महत्ता है इसमें छोटे-छोटे तेज, तीखे चुभते वाक्यों में गहरे अनुभव, जटिल समस्याएं एवं कठिन प्रश्न सिमट कर आ जाते हैं। बिन्दु में सिन्धु और गागर में सागर भर देने का गुण इस ज्ञान गंगा की विशेषता है। यह मानव ज्ञान से तपे हुए परम्परित अनमोल रत्न होते हैं। इनके अनुभव-पृष्ठों में जीवन के घटना-व्यापार स्पष्ट दिखाई देते हैं। अतः तमाम कहावतों की पृष्ठभूमि घटना परक होती है। लेकिन वह घटना-कथा खूब प्रचलित होकर सर्वजनीन बन जाती है और सबके मन बुद्धि को प्रभावित करके कहावत को पैदा कर देती है। बाद में स्वयं नष्ट भी हो जाती है। लार्ड रसेल ने कहावतों को अनेकों की बुद्धिमानी और एक की चतुराई बताया है।

राजस्थानी में बहुत सी ऐसी कहावतें मिलती हैं जिनके रंग-रूप, आकार-प्रकार को देखकर तुरंत मालूम कर लिया जाता है कि इसके पीछे कोई कथा है। विविध कथात्मक कहावतों के रूपों में से उदारहण के तौर पर कुछ प्रस्तुत करता हूं। जो किसी घटना के बाद प्रचलित हुई हैं।

१. आप आपरा जांमा-कांमा करैं जका नैं छाजैं।
कूकर काज गधो जद करैं, मोरां मूसळ बाजैं ।।

एक कुत्ता अपने मालिक के घर सदैव रखवाली किया करता था। वह दिन में तो थोड़ी बहुत झपकी ले लिया करता, मगर रात को कभी सिर भी नहीं टेकता। एक दिन कुत्ते के मन में रात भर सुख से सोने की इच्छा प्रकट हुई। उसने अपने परम मित्र गधे को घर की रखवाली करने के लिए तैयार किया। तब गधा सबके सो जाने पर उस घर का पहरेदार बना और उसने कुत्ते को बेफिक्र सो जाने के लिए मुक्त करके उपयुक्त स्थान पर भेज दिया।

कुत्ते की अनुपस्थिति के कारण उस रात को घर में चोर घुस गये। पहरेदार गधे ने उनको देखा और जोर जोर से रेंकना आरम्भ कर दिया। उसकी कड़ी आवाज को सुनकर घर के सब लोग जाग पड़े। क्योंकि गधे के बोलने से उन लोगों की नींद में बाधा पड़ी। वे जाग रहे थे। अतः उन्होंने गधे की पीठ पर मूसल (लठ्ठ) के कई वार किये और उसे घर से बाहर निकाल आये। चोर एक बार तो चुप हो गये परन्तु सबके सो जाने पर माल असबाब निकालकर ले गये।

सवेरा हुआ। सब लोग उठे। घर की चोरी का पता लगा तो सब बड़े उदास हुए। अधिक हानि के कारण गधे की चतुराई और अपनी मूर्खता पर वे बहुत पछताए। गधा भी मूसल की मार से दुखी था।

आप आपरा जांमा कांमा, करैं जका नैं छाजैं।
कूकर काज गधो करैं जद मगरां मूसळ बाजैं ।।

ऐसी कहावतों की कहानियां सभी देशों में प्रचलित हैं। परन्तु बहुसंख्यक राजस्थानी कहानियों के पीछे रहस्यमयी, रमणीक, और नीति पूर्ण कहावतें संलग्न हैं। इनके प्रचलित वाक्य तो एक दो ही बोल जाते हैं, पर पीछे की

कहानियों का आनन्द कुछ और ही होता है। बिना कहानी को सुने किसी भी कहावत का पूरा मतलब समझ में नहीं आ सकता है। और न ही वह प्रभावोत्पादक बन पाती है। सचमुच गूढ़ार्थ पदों की भांति राजस्थानी कहानियों की कहावतों की विस्तृत व्याख्या जानना अति आवश्यक है। उनकी स्पष्ट व्याख्या कहानियां है, कहावत नहीं ! आगे कहानियों की केवल कुछ कहावतें नमूने के तौर पर प्रस्तुत की जाती हैं —

१ मेरी ही अर मैं ही लाई, २ राई रा भाव रात्यूं ही गया, ३ सूत्यां री पाडा जणै, ४ ओ कुण खीर में मुसळ मारै, ५ भाई रै मन भाई भायौ, ६ ज्यूं ज्यूं भीजै कांमणी, ७ घर घोड़ी पियौ माळवै, खेत तिलां री रास, ८ गळबंधी वाजै, ९ जेठ सारू के वेटी जाई, १० हांती थोड़ी हळवळ घणी, ११ आधौ रियौ ऊखळी आधौ रियौ छाज, १२ ऊंचौ चढ़ तळै नै देखै, ओ धन गियौ लाली लेखै, १३ कात्यौ तूम्यौ कपास [निजी संग्रह], १४ थोरी आळौ तातौ थूकणौ, १५ स्यामीजी आळौ बड़ो, [निजी संग्रह] १६ आप कमाया कांमड़ा किणनै दीजै दोस, १७ मर जाणा संसार में रह जाणी है गल्ल (निजी संग्रह) !

निजी संग्रह में कहानियों की कहावतें एक आश्चर्यमयी वाणी-वाटिका है। इसमें चमत्कार का प्रकाश गमक रहा है। प्राकृतिक गरिमाएं, प्राचीन हरियाली एवं सौन्दर्य का सरल सौष्ठव है। इसमें धोखे तथा कल्पना का नाम नहीं है। ये महानता की नहीं लघुता की श्रेष्ठ छबियां हैं। अनपढ़ ग्रामीणों, किसान मजदूरों और सभ्य संस्कृति विहीन लोगों की वह भाषा है जो जनसाधारण के हृदय पर विराजमान है। इस साहित्य को मधुरा-लोक-साहित्य [Pleasant surprise.] नाम भी कुछ लोगों ने दिया है।

कहावतें एक सत्य का कथन या घटना है। उसे एक उक्ति कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसी उक्ति को लोग अपनी उक्ति बनालें तब वह लोकोक्ति का नाम धारण कर लेती है। ऐसा लौकिक सत्य, लोकानुभव और लोक चातुर्य, लोक वांगमय का अमूल्य धन है। हमारी भाषा वास्तव में भाग्यशालिनी है, जिसका भंडार कथाओं की कहावतों से समृद्ध है।

कात्यौ तूम्यौ कपास

एक किसान था। उसका नाम मेघदास था। उसकी औरत का नाम धाई था। धाई काम चोर स्त्री थी। खेत के काम से सदैव जी चुराया करती थी। वह कोई न कोई वहाना वना कर घर पर ही रहा करती थी।

एक वार मेघदास के खेत में बहुत अच्छी फसल लगी। वेचारा अकेला मेघदास खेत का काम करने में असमर्थ हो रहा था। तब उसने अपनी स्त्री से खेती के काम में सहारा लेना चाहा। लेकिन स्त्री ने वहाना बना लिया कि मैं तो घर पर रहकर कपास कातूंगी। आप अन्न का इन्तजाम करते हैं, मैं वस्त्रों का प्रबंध करती हूं।

मेघदास ने कपास कात डालने की गर्ज से अपनी औरत को घर छोड़ दिया और स्वयं

खेत के काम में जुट पड़ा। चार महीने बराबर खेत पर काम किया; तब जाकर अनाज का खलिहान पड़ा।

एक दिन मेघदास ने अपनी स्त्री से काते हुए सूत का हिसाब मांगा। स्त्री घबराई, क्योंकि उसने एक भी धागा सूत नहीं काता था। स्त्री ने हैरान होकर अपने एक पड़ौसी व्यक्ति से यह समस्या सुलझा देने की प्रार्थना की। आदमी वह लट्ठधारी था। उसी रात को एक खाली पीपा लेकर मेघदास के खलियान के पास जाकर पीपा बजाता हुआ धूल में लट्ठ मारने लगा। मेघदास ने दूर से घबराते हुए पूछा—'तुम कौन हो और क्या चाहते हो?' तब उस बदमाश आदमी ने कहा —

गड़ गड़ ढमा, मेघमाळा, कठै गया खळै का रुखाळा।।
का मारूं धाई, का मेघदास, का करूं कात्यौ तूम्यौ कपास।

अर्थात्—मैं कतार में गरजने वाला मेघ हूं। खलिहान का रखवाला कहां है? मैं उसकी स्त्री धाई को मारूंगा या उसके पति मेघदास को मारूंगा अथवा धाई के काते हुए सूत को वापस कपास बना दूंगा।

तब मेघदास भयभीत होकर कहने लगा—'मेरी स्त्री के काते हुए सूत को कपास बना दीजिये; मगर हम पति पत्नी में से मारिये किसी को मत!' ठीक वैसा ही हुआ। कपास तो पहले से ही थी। धाई की धूर्ताई का काम चल गया। उसी दिन से किसी किये हुए काम के बिगड़ जाने पर लोग कहते हैं—'कात्यौ तूम्यौ कपास हुग्यौ'

[ख] राजस्थानी शिष्ट साहित्य और कहावतें—ये राजस्थानी लोक साहित्य से भिन्न और राजस्थानी साहित्य का प्रमुख अंग हैं। कालक्रम की दृष्टि से उक्त साहित्य को तीन युगों में बांटा जा सकता है।

[क] प्राचीन राजस्थानी [संवत् १२०० से १६००]
[ख] माध्यमिक राजस्थानी [संवत् १६०० से १९५०]
[ग] आधुनिक राजस्थानी [संवत् १९५० से अब तक]

इस साहित्य में प्रचुर कहावतें मिलती हैं। क. प्राचीन राजस्थानी—विशेष कर इस काल की कृतियां जूनी गुजराती भाषा में मिलती हैं—प्रबोध चिन्तामणि, ढोला मारू रा दूहा और विमल प्रबन्ध आदि ग्रंथ हैं। ढोला मारू रा दूहा इस काल का मुख्य काव्य है। इसमें कहावतों और सूक्तियों की भरमार है। देखिये—

डूंगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
बहता वहै ऊतावळा, झटक दिखावै छेह।।

[ख] माध्यमिक राजस्थानी—इस काल में राजस्थान के सांचौर नामक स्थान में एक समय सुंदर नाम के कवि हुए हैं, जिनकी—समय सुंदर रा गीतड़ा, कूभै राणै रा भीतड़ा—नाम से लोकोक्ति बन गई है। कवि के सीताराम चौपाई नामक ग्रंथ में लोक प्रचलित, सरल, सुबोध कहावतों की झड़ी सी लगी दिखाई देती है। नीचे थोड़े नमूने पेश हैं:

१. करम तणी गति कहियन जाय [दूसरा खंड छंद २४]

२. कीड़ी ऊपर केही कटकी—[खंड ६ ढाल २ छंद ४६] इस काल में माल कवि, पृथ्वी राज, जग्गा जी, कृपा राम, बांकी दास आदि के अनेक पद कहावतों की भांति प्रचलित हैं—

केहर केस भमंग मण, सरणाई सुहड़ांह।
सति पयोहर, कृपण धन पड़सी हत्थ मुवांह।

इस काल में राजिया के दोहे लोकोक्ति के रूप में बड़े प्रसिद्ध हैं।

[ग] आधुनिक काल— इस काल के काव्यों में कहाकतों की बहार दिखाई देती है। मूंघा मोती, मरुभारती, दसदेव और कळायण आदि ग्रंथ इसमें विशेष हैं।

१. भली राड़ सूं वाड़, मंगळ नाकै रेवणौ [मूं. मो.] २. फाड़ै सौ मण दूध, काचर रौ इक बीज [म.भा.] ३. हाथ पोलौ जगत गोलौ [द. दे-] ४. गिणतां घिसी असाढ़ नै आंगळियां री रेख। [कळायण] इनके अलावा हमें पवाड़ों, लोक वातों, लोक गीतों, लोक काव्यों एवं लोक ख्यालों आदि साहित्य में भी कहावतों की मनोहर छटा दिखायी देती है, जिनका सूक्ष्म दिग्दर्शन करें। स्थानाभाव के कारण मात्र एक उदाहरण दे रहा हूं—

१. पवाड़ों में कहावतें—

छोटै तौ मुखड़ा सूं रे थे मोटी वात मत करौ। (पाबूजी के पवाड़े)

२. बातों में कहावतें—

भाई हुए सौ बाहुड़े, गयै बिरांणै छड्ड (डाढ़ालै सूर री बात)

३. लोक गीतों में कहावतें—

ऊजड़ खेड़ा भंवरजी फेर बसै जी
हांजी ढोला निरधनियां धन होय
जोबन गयौ न बावड़ै
हांजी थांनै लिखूं बारम्बार
पिया घर आवज्यौ धण अेकली

४. लोक काव्यों में कहावतें—

अेकज घर में दो मता, भली कांय से होय।
पुरुष जु पूजै देवता, भूत जु पूजै जोय॥ (रू मं. पृष्ठ १३)

५. राजस्थानी ख्यालों में कहावतें—

थोथा चना बाजै घणा, भरतल न बिल्कुल बाजता।
गाजेगा सौ बरसै नहीं, बरसैगा सौ नहीं गाजता॥

[लावणी संग्रह — लावणी कंकाली पृष्ठ ४]

हमने यहां राजस्थानी लोक साहित्य के साथ कुछ सभ्य साहित्य की कहावतें भी लिखी हैं, जो कहावतों में यह साहित्य संचय बड़ा उपयोगी एवं संरक्षणीय है।

(ग) अन्य कहावतें — राजस्थानी में पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं, विवाह-त्योहारों, बहादुरी तथा अतिथि-सत्कार, भोज्य-पदार्थ, संबंध-स्वास्थ्य, गहने-कपड़े, कारबार-ज्ञान और गुण आदि विषयक में काफी कहावतें हैं। उनके भी कुछ नमूने लीजिये —

१ ऊंट छोड्यो आक बकरी छोड्यो ढाक। २ अकल बिना ऊंट उबांणा फिरै। ३ अश्व चढ़ण व्याकरण पढ़ण, जाणण ज्योतिस अंग। ४ राजपूत रो घोड़े में, बांणिये रो रोड़ै में, जाट रो लपोड़ै में धन जाय। ५ गांगे री गाय गांगै री बाछो। ६ गाय वियायी लाखो, अगलै घर सूं राखो। ७ पाडै को अर पराई जाई को रांम ई बेली है। ८ बकरे री मां कित्ता थावरै टाळै। ९ बिल्ली रो कांकण। १० गादड़ सिंहजी ग्यारसीया नाहीं काटै नाड़ी; भायलो सें दगो विचारियो कांधै पडी कुहाड़ी। ११ चिड़ी करै चूंचाट कागलो ढोल घुरावै; गुरसां गावै गीत, कबूतर चंग बजावै। १२ गोह री मौत आवै डेढ़ां रा खालड़ा खड़बड़ावै। १३ सांपां किसा सनेस। १४ कातरियो कपूत बैठो, म्हू हूं फाको राव। म्हारी मां नै बाजा बाजिया, मनै ढोळै बाव। १५ छोटी बनड़ी बड़ो सुहाग। १६ सगा ब्याह बिगड़्यो? के आधो म्हारै ही पांती आसी। १७ चैत रो पाळो गौर री घाघरो भाड़णो। १८ बैरी नै आदर सार। १९ सगो सगै री जड़। २० सास बिना के सासरो नदी बिना के नीर। २१ बड़ी पकोड़ी बांणियो, कांसी अर कसार। २२ का मूरख खा मरै का मूरख उठाय मरै। २३ अन्न जिसो ई मन्न। २४ काचर बोर थळी रो मेवो। २५ दूध दही रा पांवणा छाछड़ली अणखावणा। २६ पांणी पीणो छांण कर प्रसंग करणो जांण कर। २७ चाकरी न कीजै यार घास खोद खाइये अबर लावै आस पास (तू) दूर जाग लाइये। २८ जकै करी दुकांनदारी भक मारै तहसीलदारी। २९ मिनख मजूरी देत है ना राखेलो रांम। ३० गैणो भूखै री राबड़ी धायै रो सिणगार। ३१ हांडी में रूप पेई में सिणगार। ३२ भण्यो पण गुण्यो नहीं। ३३ सीख सदाई दीजिये जिणनै सीख सुहाय। ३४ सीख सरीरां ऊपजै दियो आवै डांम। ३५ भाई बेटी नीं परणीजै और बाकी कीं नीं छोड़ै।

कहावतों के अग्रिम मूल्य — राजस्थान में स्थान विशेष के कारण कृषि और वर्षा प्रिय कहावतें सर्व प्रिय हैं। ये अनेक सिद्धांतों से परिपूर्ण होती हुई किसान के पथ प्रदर्शन में श्रेष्ठ साधन रहती आई हैं। मगर अब इनका भविष्य अंधकार मय बनता जा रहा है। बहुत सी ऐसी कहावतें आज के इस वैज्ञानिक एवं नहर निर्माण वाले युग में निरर्थक होती जा रही हैं। एक हल से बोई जाने वाली — कुणकै कुणकै रास और और चुळकै चुळकै छाछ — वाली कहावत का अब अधिक महत्व नहीं है। उसकी उपयोगिता टेक्ट्रों के बीस बीस हलों में तथा सिंचाई के पानी में समा गई है। इन आश्चर्य जनक वैज्ञानिक परिवर्तनों के साथ जीवन के मूल्य भी बदलते जा रहे हैं। हमारे देश के लोग भी, भविष्य-उषा की ओर

सुदृढ़ता के साथ बढ़ने लग गये हैं। वे प्राचीन सपनों से कान फटफटाकर हट गये हैं। इस जागृति में नया मानव, नया खेत, नया हल, और नवीन कहावतें ही अब हमें अधिक लाभान्वित करेंगी, ऐसी उम्मीद है। परन्तु इस बुद्धि और तर्क के युग में लोक की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता को बताने के लिए मौखिक साहित्य की भी आवश्यकता होती है। माना कि सभ्यता इस साहित्य की परम शत्रु है, मगर वह हमारी संस्कृति की आधारशिला स्वरूप कहावतों पर कदापि कुठाराघात नहीं कर सकती। हां, उनमें पलने वाली रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को अवश्य उपेक्षणीय समझा जा सकता है। इनके कारण ही मानव विकास की गतिशीलता अविरुद्ध होती है। अतः कहा जा सकता है कि कहावतों के धार्मिक घाट पर तो कई पाखंड पशु मुंह बाये बैठे हैं। जो आधुनिक मानव को भयभीत ही नहीं करते बल्कि चंगुल में आने पर निगल भी जाते हैं। लेकिन ऐसे कहावती रूढ़िप्रद सिद्धांत अब हमारे विचार स्वातंत्र्य भावना में वाधा नहीं पहुंचा सकते। क्योंकि आज हम तर्क युग के मानव कहलाते हैं। सक्रिय भाव से वातावरण को अपनाना ही हमारा धर्म है।

उपसंहार – कहावतों में हमारे गांवों की सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि-कौशल, पशु-पालन, कला-कारीगरी और लेनदेन आदि के संबंध में ग्रामीण लोग कहावतों के ही आश्रित हैं। शकुन-विश्वास और कन्या-जन्म तथा मानव-स्वभाव आदि के ज्ञान-विज्ञान वाली कहावतों में तो उपदेशात्मक मनोवृत्ति के ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो हमारी संस्कृति के देदीप्यमान दीपक हैं। इनका प्रकाश, श्रुति परम्परा के स्नेह सहयोग से हुआ है। गांवों में इन [कहावतों] की शासन सत्ता भारी प्रतिष्ठित है।

राजस्थानी कहावतों के अध्ययन से इस प्रांत की शिक्षा संस्कृति को नूतनता दी जा सकती है। क्योंकि हमें अपने जीवन के बदलते हुए मूल्य की परिस्थिति में योग देना है और गांवों में शहरी संस्कृति का स्थान बनाना है। अतः मरद तौ आचरण बंकौ,... कहना पड़ेगा। प्रकाशित कहावती साहित्य–डा. कन्हैयालाल सहल ने अपने राजस्थान के कहावती शोध प्रबंध में किसी अंग्रेज लेखक के कथनानुसार बताया है – कि कुल मिलाकर विश्व का कहावती साहित्य ६००० हजार पुस्तकों से तो किसी हालत में कम न होगा। अकेले यूरोप में तीस चालीस हजार से कम कहावतें नहीं होंगी। लेसन्स इन प्रोवर्ब्स [By R. e. Trener] में स्पेनी कहावतों की संख्या २५ व ३० हजार बताई है। हिंदुस्तान और एशिया को मिलाने पर तो कहावतों की संख्या लाख के लगभग हो सकती है। इन सब में मानव-जीवन के विभिन्न अंगों से संबंधित कहावतें हैं। जातिगत विशेषता की, गुण-दोष वाली, नीति-रीति बोधक, पेशेवर, व्यवहारोपयोगी, अंग-उपांगों की त्रुटियां

प्रकट करने वाली, निर्धन-रंक संबंधी, ऋतु-नक्षत्र और त्योहार-विषयक, वंशानुगत संस्कारों की प्रबलता प्रकट करने वाली, नारी विषयक एवं नारी चरित्र संबंधी, पुरुष स्त्रियों के नामों वाली, ईश्वर की शक्ति और कृपा का परिचय देने वाली आदि आदि विषयों पर बहुत सी कहावतें चलती हैं। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि मांडण ने अपनी प्रबोध बत्रीशी में ठीक ही लिखा है कि—अवनी रही उखाणा भरी, तो किम सकाई पूरी करी ? अर्थात् पृथ्वी कहावतों से भरी है, जहां से खोदिये कहावतें निकल पड़ेंगी।

इस विषय के भारतीय और अभारतीय सारे प्रकाशित ग्रंथों की नामावली [लेखकों सहित] मैंने इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में लिखी है। यहां केवल राजस्थानी भाषा से संबंधित कहावती पुस्तकों की सूची ही लिख रहा हूं — १. मारवाड़ रा ओखाणा [लक्ष्मण आर्य] २. मारवाड़ी वेदर प्रोवर्ब्स [लालचन्द विद्याभास्कर] ३. मारवाड़ी कहावत [जोधपुर] ४. मारवाड़ी कहावतें [श्री जगदीश सिंह गहलोत] ५. मारवाड़ की कृषि कहावतें [वही] ६. गुजराती कहावत संग्रह [दूलीचन्द शाह] ७. मालवी कहावतें [रतन लाल मेहता] ८. मेवाड़ी कहावतें [श्री लक्ष्मी लाल जोशी] ९. राजस्थानी कहावतें [भाग क. और ख. श्री स्वामी और व्यास] १०. भीलों की कहावतें [फूलजी भाई भील] ११. राजस्थानी कहावतें [श्री कन्हैया लाल – हिन्दी बंगला मंडल कलकत्ता] १२. राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन [डा. सहल] इनके अलावा राजस्थानी कहावतों के बहुत से निबंध भी प्रकाशित हुए हैं। हमारे पास भी कहानियों की सैकड़ों कहावतें प्रकाशित और अप्रकाशित संग्रहीत हैं।

कहावतों के इतिहास से तो यह सुस्पष्ट है कि कहावतें Fragments of wisdom) हैं। अनुभव - दुहिता हैं, ज्ञानविज्ञान की रश्मियां विकीर्ण करने वाली ऐसी मणियां है जिनका प्रकाश आज भी मन्द नहीं पड़ा है और यावच्चन्द्र दिवाकर - वे अपने अंतर्हित सत्य के बल पर जगमग करती रहेंगी। [राजस्थान वीर जनवरी १९६३]





पहेली

पहेली, प्रवाद और अन्य पहेली — ईश्वर की सृष्टि रचना की महत्ता के प्रथम प्रश्न के साथ मानव मस्तिष्क तर्क की तरफ बढ़ा और उसने सूर्य, चन्द्रमा, उषा, वायु, अग्नि को अपने अपने कार्य में अटल परिश्रम करते देखा। तब तत्काल उसके सामने इस लीला का एक बड़ा प्रश्न पहेली का रूप धारण करके आ टिका। परमात्मा की सृष्टि सचमुच विश्व की आदि पहेली है। उसे सुलझाने के लिए असंख्य युगों से विश्व के सहस्रों दार्शनिक योगियों ने साहित्य रचना की है। आज भी मानव का ज्ञान-विज्ञान, आचरण-संस्कृति और खोज उपलब्धियां इस सृष्टि की पहेली के प्रति सतत सजग हैं। मानव और पहेली का प्राचीन संबंध यही है :

> क्रीड़ा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञेराकीर्ण मंत्रणे।
> परव्यामोहने चापि सोप योगाः प्रहेलिकाः ॥ [1]

अर्थात् — खेल, गोष्ठी तथा विनोद काल में प्रहेलिका जानने वाले पारस्परिक विचार-विनिमय अर्थात् परामर्श एवं श्रोतृ वृन्द को मोहित करने के लिए अर्थात् आश्चर्य-चकित करने के लिए इनका उपयोग करते हैं। वेद ज्ञान राशि के प्रमुख स्रोत हैं और उनमें पहेलियों के सुन्दर तथ्य उपलब्ध हैं। ब्रह्म निरूपण की कतिपय शक्तियों के वर्णन में पहेलियों का अतुल प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल का १६४ वां सूक्त, जिसमें ५२ मंत्र प्रायः प्रहेलिकामय हैं। उसी के दशम् मंडल के ७५ वें सूक्त के प्रथम १३ मंत्र पहेलियां-स्वरूप हैं। संभव-तया इसीलिए ऋग्वेद को पहेलियों का वेद कहा है। डा. सत्येन्द्र ने लिखा है — पहेलियों को संस्कृत में ब्रह्मोदय भी कहा गया है। वैदिक मंत्र में प्रचलित ब्रह्मोदय शब्द का अर्थ—ब्रह्म — चैतन्य और उदय— जागृत करना रहा होगा, यही निश्चय है।

---

१ साहित्य दर्पण दशम् परिच्छेद, पृष्ठ ४९९।

पहेली शब्द संस्कृत के उसी ब्रह्मोदय का प्रर्याय एवं प्रहेलिका का तद्-भव रूप है। हमारे देश में इसका प्रचलन वैदिक काल से पाया जाता है। पहले यह अश्वमेध यज्ञ में अनुष्ठान का एक प्रकार माना जाता था। अश्व वलि ने प्रथम होतृ एवं पंडित ब्रह्मोदय पूछते थे। अन्य देशों में भी उस समय पहेलियों को अनुष्ठानिक महत्ता प्राप्त थीं। दी गोल्डन वॉ, नवां भाग पृष्ठ १२१ पर फ्रेजर महोदय ने लिखा है कि पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी वात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन होगी। उसी परम्परा में कई स्थानों पर कतिपय जातियां आज भी विवाह संस्कार के समय पहेली वुझाने का कार्य शुभ मानती हैं।

वेद से पूर्व भी इस मौखिक साहित्य ने वेद निर्माताओं को अपनी ओर आकर्पित कर दिया था। ऐसा ऋग्वेद में आये हुए ब्रह्मोदयों से ज्ञात होता है। संस्कृत साहित्य में जिन ६४ कलाओं का उल्लेख मिलता है उनमें पहेलियों की भी गणना आई है। जैसे—अन्तर्लापादि।

मनुष्य मनोविनोद के विना नहीं रह सकता। मौजी लोगों का मनोरंजन, नाट्य, संगीत, नृत्य और काव्य से होता है। भारतीय साहित्य ऐसे मनोरंजक विपयों से भरपूर है। उसमें विभिन्न विपयों पर प्रमोदार्थ अनेक तरीकों से वुद्धि मंथन तथा ज्ञान विकास के तत्वों की दिलचस्प वहार है। पहेली साहित्य इसका एक नमूना है। इसलिए पहेलियों को हम केवल ज्ञान-वैभव एवं ज्ञान गणना का ही माध्यम नहीं मानते, उनको वुद्धि-मापक यंत्र भी कह सकते हैं। ये वाल-मनोरंजक के सिवाय समाज विशेष की मनोज्ञता को प्रकट करने वाली रुचिकर रश्मि-मणियां हैं। अतः कहा जा सकता है कि पहेलियां मनुष्य सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। तभी तो इस पुरातन पहेलियों की ज्ञान-गरिमा को देखकर आश्चर्यो-दधि में डुवकियां लगानी पड़ती हैं। ये आदिवासियों की शान और आर्येतर जातियों में ज्ञान की खान स्वरूप प्रस्थापित हैं। आर्यों तक आते आते तक तो यह प्रथा विल्कुल पुष्ट हो चुकी थी। संस्कृत में इसके प्रहेलिका, अर्थ कूट श्लोक, अन्तरालाप, वहिरालाप, वहिरन्त प्रश्न, जाति प्रश्न, पृष्ठ प्रश्न, उत्तर प्रश्न आदि अनेक भेदोपभेद हैं। अग्नि पुराण में गोष्ठियों के वाग्वन्द ऐसे कुछ शब्द-गुम्फन चित्रों के सात भेद किये गये हैं। उनमें से वहां, द्वयर्थक गुह्य का प्रयोग होता है, उसे प्रहेलिका कहते हैं। प्रहेलिका में शाब्दी औरं आर्थी दो भेद वताये हैं। शाब्दी प्रहेलिकाओं के वहुत से भेद प्रभेद मिलते हैं। अनेक काव्य शास्त्रियों के साथ दंडी ने सोलह प्रकार की शुद्ध पहेलियों के लक्षण और चौदह दुष्ट पहेलियों के संकेत दिये हैं। उक्त प्रकारों का नामोल्लेख करना आवश्यक है। वे ये हैं—समागता, वंचिता, व्युतक्रांता, प्रयुपिता, समानरूपा, परूषा,

संख्याता, प्रकल्पिता, नामान्तिरिता, निभृता, समानशब्दा, संमूढा, परि-हारिका, एकच्छना, उभयच्छना और संकीर्णा।

समय पाकर पहेलियों में दृष्टिकूट, उलटबांसी, मुकरियां आदि आ मिली हैं, सिद्धों द्वारा दार्शनिक तथा रहस्यात्मक विवेचन, संतों द्वारा उक्तियों की चमत्कृति एवं प्रभाव पूर्ण बनाने के तरीके और लोक-जीवन में विनोद और बुद्धि परीक्षा के प्रयोग होने लगे। आगे इनका परम्परित पथ बन गया।

महाभारत काल में वेदों की हजारों वर्ष पुरानी इस परम्परा के सूत्र को स्वीकार करके लौकिक एवं साहित्य रुचि को सहयोग प्रदान किया गया। युद्धिष्ठिर से पूछे गये यक्ष के प्रश्न तथा उनके उत्तर लोक और साहित्य की अनुपम वस्तु है। यह बीज वेदों के ब्रह्मोदय के रूप में वपन किये गये, आधुनिक लोक-गीतों की पहेलियों के परम्परित प्रेरक हैं।

सन्तों की उलटबांसियां, विषय का अंग और संध्या भाषा में पहेलियों का साहित्य लोक जीवन की प्रिय निधि बन गई है। तांत्रिकों ने, वज्रयामी सिद्धों ने इस–उल्टा कथन प्रद्धति को अपने सिद्धांत साधना के रहस्यों में लपेटकर लोक सुलभ तथा व्यापक बनाया। इस में लोक-साहित्य तथा समाज और शास्त्र की प्राचीन मान्यताओं को उपेक्षित किया गया। यहां आप प्रथम एक गोरख वाणो का रसास्वादन करें जो कबीर की उलटबांसियों की मूल प्रेरणा है–

१ डूंगर मंछा जळि सुसा, पाणी में दो लागा।
अरहट वहै तृसाळवां, सूळै कांटा भागा॥
२ समदर लागी आग, नदि जळ कोयला भयी।
देख कबीरा जाग, मंछी रूखां चढ़ गई॥
३ कुंजर को कीरी गिलि वैठी, सिघाई खाई अघानौ स्याळ।
मछरी अग्नि मांहि सुख पायी।
४ पंगु चढ्यौ पर्वत के ऊपर, मृतक देखि डरानो काल।
जाको अनुभव होइ सु जाने, सुन्दर ऐसा उल्टा ख्याल॥ १

एक विस्यम बोधक पहेली और देखिये–

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंह चरावै गाई॥टेक॥
पहले पुत्र पीछै भई माई, चेला के गुरु लागे पाई॥
जल की मछली तरवर व्याई, पकड़ बिलाई मुरगे खाई॥
वैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुता को ले गई बिलाई॥
तलि करी साखा, ऊपरि करी मूल, बकत भांति जड़ लागे फूल।
कहे कबीरा या पद को बूझे, ताकू तीनू त्रिभुवन सूझे॥ २

बड़ी रहस्यमयी पहेली है—सिंह खड़ा गाय को चरा रहा है [अर्थात्

१ सुन्दर ग्रंथावली, पृष्ठ ५१० [सं. ३] २ कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १९३ (पद ३११)

स्थिर ज्ञान द्वारा अनुप्राणित वाणी उचित रूप में स्फुरित हुआ करती है] पुत्र का जन्म हो चुकने पर माता का आविर्भाव हुआ [अर्थात् जीव का शुद्ध रूप माया द्वारा परिच्छन्न होने के पूर्व विद्यमान था] चेलों के पैरों पर गुरु माथा टेक रहा है [अर्थात् निर्मल चित्त के प्रति शब्द स्वयं आकृष्ट हो जाता है अथवा मन स्वयं वशीभूत हो जाता है] जल में रहने वाली मछली ने वृक्ष पर जाकर अंडे दिये। [अर्थात् मूलाधार के निकट वर्तमान कुंडलिनी मेरूदंड के ऊपर जाकर फलप्रद हुई] बिल्ली को पकड़ कर मुर्गे ने खा लिया। [अर्थात् ज्ञानोपलब्धि हो जाने पर मन दुर्नीति को नष्ट कर देता है या सर्वथा त्याग देता है] बैल को बाहर छोड़कर गून स्वयं घर को लौट आई। [अर्थात् स्वरूप में सिद्धि हो जाने के पहले ही शरीर के प्रति उपेक्षा का भाव आ गया] कुत्ते को बिल्ली ले भागी। [अर्थात् अज्ञानी पुरुष को माया ने बहका लिया] शाखा नीचे की ओर हो गई और जड़ ऊपर चली गई [अर्थात् प्राणों के ऊपर चढ़ाये जाते ही इन्द्रियां वश में आ गई अथवा सृष्टि का मूल ऊपर की ओर है। और उसका विस्तार नीचे की ओर है] तथा उसमें अनेक प्रकार के फूल फल भी लग गये। [अर्थात् सुषुम्ना के अन्तर्गत षट-चक्रों का अस्तित्व है] कबीर का कहना है कि जो कोई इस पद के रहस्य को समझ लेता है, उसे त्रिभुवन की सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

यहां एक ऐसा राजस्थानी का अटपटा निर्गुण भजन लिख रहा हूं सो विचारें; अर्थ काया पर है।

माटी घड़ै कुम्हार नै, खाती नै छोल रही लकड़ी
धरती बरसै अम्बर भीजै, काटै बिरख कुहाड़ा छीजै
इणरो अरथ ग्यांन सूं कीजै, लोहो घड़ै लुहार नै,
जाळै नै खा गई मकड़ी ॥ १
ले कपड़ा धोबी नै धोवै, बीज पकड हाळी नै बोवै
दुखिया हांसै, सुखिया रोवै, इणरो ग्यांन विचार नै,
ना रही मूरख संग जकड़ी ॥ २
ले कपड़ा दरजी नै सीमै, रोटी पकड़ मिनख नै जीमै
जलमै छाछ, दूध दो घी में, सोनो घड़ै सुनार नै,
झट मूसै बिलाई पकड़ी ॥ ३
वणिया तुलै, तराजू तोलै, आंधा देखै, गूंगा बोलै
दंतू कवै कोई चातरक खोलै, पती नै पढ़ै गंवार नै,
अब गली आ गई संकड़ी ॥ ४ खाती नै छोल रही लकड़ी।

यद्यपि सगुण मार्गी सन्तों को ऐसी प्रतीकात्मक आश्चर्य जनक उलट कथा कहने की कतई आवश्यकता नहीं पड़ी और न उन्हें अपने आराध्य देवों के चरित्र

चित्रण के वर्णन में ऐसी कमी अखरी तथापि लोक जीवन की इस अद्‌भुत शैली का वे कदापि लोभ संवरण नहीं कर सके। अत: सूर और तुलसी की अमर कृतियों में इस बुद्धि-वैभव एवं प्रहेलिकात्मक शैली के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। सूर का एक दृष्टिकूट पद देखें – कहत कत प्रदेसी की बात।

मंदिर - अरघ [१] अवधि हरि बदि गये [२] हरि आहार [३] चलिजात।
अजिया भख [४] अनुसारत [५] नाहीं कैसे कै दिवस सिरात [६]।
ससि-रिपु [७] वरष्, भानु रिपु [८] जुग सम, हर रिपु [९] किये फिरै घात।
मघ [१०] पच में ले गये स्याम घन ताते जिय अकुलात।
वेद नखत ग्रह जोरि अरधकरि [११] को वरजै हम खात।
सूरदास प्रभु तुमहि मिलन को कर मींडत [१२] पछतात ।

इनकी परम्परा में लोक साहित्य के गीतों को लोकायनी कवियों ने पहेलियों युक्त बना लिये हैं। एक छप्पय देखें —

सारंग [13] से दृग लाल, माल सारंग [१४] की सोहत।
सारंग [१५] ज्यूं तनु श्याम बदन [१६] लखि सारंग [१७] मोहत।
सारंग [१८] सम कटि [१९] हाथ माथ बिच सारंग [२०] राजत।
सारंग [२१] लाये अंग देखि छवि सारंग [२२] लाजत।
सारंग [२३] षण पीत पट सारंग [२४] पद सारंग [२५] धर।
रघुनाथ दास बंदन करत सीतापती रघुवंश वर।

यह पहेली परम्परा मध्य युग में आकर गूढ़ता, गम्भीरता की जगह हास्य मनो-रंजन, विरोधाभास मंडन और आश्चर्यजनक परिस्थिति के पथ पर आरूढ़ हो गयी। इस काल में खुसरो जैसे कवियों की सरस श्रृंगारिक पहेलियां, मुकरियां और अनमेल ढकोसले लोकजीवन निरीक्षण - परीक्षण तथा चित्रण सहित बड़े प्रचलित हुए हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने बारहवीं, तेहरवीं, शताब्दी की हिन्दी कृतियों के साथ खुसरो की पहेलियों तथा मुकरियों का भी विवेचन किया है। बीरबल आदि अन्य कवियों ने भी इस काल में पहेलियों को लिखा है। इनमें धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक तथा पारलौकिक प्रसंगों के स्थान पर अपने निकट

---

१ पक्ष १५ दिन। २ कह गये। ३ सिंह का भोजन (मास, महीना) ४ बकरी का भोजन (पत्ती-पत्री)। ५ नहीं भेजते। ६ बीते। ७ चन्द्रमा का शत्रु (दिन) ८ सूर्य का शत्रु (रात्रि) ९ कामदेव। १० मघा नक्षत्र से पांचवा नक्षत्र (चित्रा, चित्ता–चित्त) ११ नक्षत्र २७ वेद ४ ग्रह ९=४० का अ घा २० (विष) १२ मलते हैं। १३ कमल। १४ सोना। १५ बादल। १६ मुख। १७ चन्द्रमा। १८ सिंह। १९ कमर। २० बाण। २१ कर्पूर। २२ कामदेव। २३ सुहावने रंगीन। २४ कमल। २५ धनुष। [सारंग धारण करना]

क्षेत्र के दैनिक जीवन की लोक व्यावहारिक वस्तुओं पर ही पहेलियां बनने लग गईं। यह अधिकतर अनपढ़ कवियों की मन घड़न्त रचनायें हैं, मगर इनमें अध्ययन की जगह सांसारिक अनुभव का आत्मीय हाथ है। ये लिपिकार लेखक और रचना काल से शून्य हैं। पर लोक एवं लोक-साहित्य की महत्वपूर्ण सामग्री है। यहां राजस्थानी की एक अनदेखी और अनसुनी पहेली को आप पढ़िये —

कुत्तौ बैट्यौ हाटक तोलै ताकड़ी।
आकां लाग्या आंम फिरासां काकड़ी॥
कीड़ी करै सिणगार, कै हाथी परणनै।
ऊंट फिरै विचाळ, कै सलाह करणनै॥
पांणी लागी लाय बुझावै तुणतुणी।
सुण खत्रांणी बात अणदेखी अणसुणी॥
दधिसुत सो रिप तास रिप, तस रिपु को रिप सोइ।
तिस को स्वामी मोहि सुहि, म्हूं बलिहारी तोहि॥

—सोढ़ा नाथी रौ कह्यौ

[दधिसुत चन्द्रमा, जाको रिपु बादल, तासु रिपु वाइ: ताकी रिपु नाग, नाग को रिपु गरुड़ तिनका स्वामी श्रीकृष्ण]

कीर कंवळ अर कोकिला, अहि गज सिंघ मराळ।
उदैराज देख्या इता, लूंबत ओकहि डाळ॥

यह किसी नारी सौन्दर्य के विषय में है—कि सूवे जैसी नासिका, कमल जैसा सुंदर मुख, कोयल की सी वाणी, सर्प जैसी चोटी (वेणी) हाथी की सी मतवाली चाल, सिंह जैसी कमर और हंस की सी चाल बताई है। पहेलियां सभ्य और असभ्य सभी कोटि के मनुष्यों और जातियों के रूप में प्रचलित हैं। विश्राम के समय में युवक, बाल, वृद्ध और वनितादि लोक के सभी अंग इससे अपना मन बहलाव करते आये हैं। राजस्थान, मालवा, निम्वाड़, गुजरात और उत्तर प्रदेश में जंवाई (जमाता) की वाग्वीरता जांचने के लिए ससुराल में गादी दूहों के रूप में पहेली को भरपूर काम में लिया जाता है। गादी-दूहों में शृंगार वर्णन की बहुतायत रहती है। विवाह तथा मुकलावे के समय यहां गाकर पहेलियां पूछने की प्रथा है। ये जंवाई तथा समधियों से पूछी जाती हैं।

पहेली का अर्थ होता है किसी को कठिन समस्या में या उलझन में डाल देना। राजस्थानी में इसको आडी, अडवी या पाली कहते हैं। आडी का अर्थ, वाग्रोक (किश्त) दे देना होता है और पाळी–पाळ अथवा सीमा को कहते हैं, जिसके अन्दर किसी आदमी को पहेली बूझ कर कब्जे (कैद) करके अर्थ में बांध दिया जाता है। राजस्थानी की यही पाळी हिन्दी में फाली कहलाती है। विभिन्न

स्थानों में फाली, आडणा, पहेली बताना और गाहा खोलना के रूप में प्रयुक्त करके इसका अर्थ खुलवाते हैं।

फाली फल गर्भित रचना और गाहा, गाथा या कथा को कहा जाता है। मालवी में इस (पहेली) को पारसी तथा भोजपुरी में बुझौवल कहते हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने इन बुझौवलों को बड़े गूढ़ार्थ वाले बताये हैं। पहेलियों का प्रमुख कार्य मन-बहलाव से ही संबंध रखता है। मगर मात्र मनोरंजकता ही इसका सब कुछ नहीं है। यह वक्ता की मेधा-ज्योत्स्ना तथा श्रोता की ज्ञान-सूझ के आलोक स्वरूप साधन हैं। बड़े प्रत्युत्पन्नमति चतुर नर एवं महानुभाव भी इनकी अर्थ विलक्षणता के आगे सिर झुकाते हैं। इसके अर्थ गौरव का थोड़ा अवलोकन कीजिये।

अपदो दूर गामी च साक्षरो न च पंडितः।
अमुखःस्फुटं वक्ता च यो जानाति सः पंडितः॥

अर्थात् जो बिना पैर के दूर तक आने वाला है, साक्षर या पढ़ा लिखा होने पर भी पंडित नहीं है, बिना मुंह के स्पष्ट बोलने वाला है, उस अज्ञात को जानने वाला ही पंडित है, बाकी सब तो मूर्ख हैं। [कागज]

पहेलियों के वर्ण्य-विषय बड़े व्यापक एवं विस्तृत हैं। इनकी संख्या समृद्धि सतत गतिमान है। लोक-प्रतिभा का यह वायु पुत्र [पहेलियां] अपने मार्ग में कभी अवरुद्ध नहीं होता। वक्ता इसके ज्ञान में किसी प्रस्तुत वस्तु यानि उपमेय के द्वारा अप्रस्तुत [उपमान] की मांग करता है। अस्पष्ट संकेत देकर सामने वाले से वस्तु का नाम पूछना चाहता है। यह अप्रस्तुत योजना ग्रामीण स्थिति या प्राकृतिक वातावरण से चुनकर शब्दाडम्बर द्वारा वक्ता की छुपाई हुई होती है। क्योंकि गांव के मेधा चातुर्य को प्रकाशमान बनाये रखने के लिए ग्रामीण वातावरण ही उपयुक्त होता है, जिसमें पहेलियों के अनन्त एवं असंख्य विषय समाये रहते हैं।

पहेलियां वस्तु का मूल्य निर्धारित करने वाली उपमानों से बनी हुई शब्द तस्वीरें हैं। जिसमें चित्र सम्मिलित करके प्रश्न किया जाता है यह किसका है? अर्थात् प्रश्नकर्ता चित्र के पूर्व पक्ष की स्थापना करके अपने प्रतिपक्षी से उत्तर पक्ष की आकांक्षा रखता है। मगर यह उपमानों का अपूर्ण रूप होता है। उपमानों से जो चित्र बना है, वह स्पष्ट नहीं होता है। उससे इच्छित वस्तु का अधूरा संकेत मिलता है। परन्तु संकेत इतना सही होता है कि यथा संभव उससे दूसरी वस्तु का बोध नहीं हो सकता।

पहेली कहावत का ही एक प्रकार है। इसे लोकोक्ति भी कह सकते हैं। लोक-मानस इसके द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है। किन्तु पहेली की कथन प्रणाली कहावतों की प्रवृत्ति से भिन्न होती है। भिन्नता

के कारण ये हैं— १. एक ही वस्तु या तथ्य के लिए बहुत से शब्दों का प्रयोग । २. शाब्दिक भाव से इनका संबंध नहीं रहता । ३. इसमें प्रकट को गुप्त रखने की चेष्टा की जाती है । ४. ये बुद्धि कौशल के आधार पर चलती हैं । दूसरी ओर कहावत में सूत्र प्रणाली होती है । इसमें भाव की मार्मिकता घनीभूत रहती है और लाघवता से विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति पाई जाती है ।

पहेली मनुष्य की विकसित विधा का व्यावहारिक नमूना है । इसके अर्थ की कई लोगों में तलाश की जाती है । राजस्थान में यह सदा से उत्तम कोटि का मनोरजन माना गया है । आज भी रात्रि के समय लोक-समूह में विनोदार्थ बड़े उत्साह से आपस में आडी डाली जाती है । इस कार्यक्रम से लोगों का श्रम परि-हार एवं मनोविनोद संपन्न होता है । इसमें जीवन की उपयोगी वस्तुओं के वर्णन होते हैं । कुछ नमूने की वस्तुएं लिखी जाती हैं । मिलाइये—दीमक , आग , हुक्का खाट , भोजन , सामग्री , बंदूक , तलवार , कागज , कलम , पशु-पक्षी , खेत - खलिहान , पेड़ - पौधे , चांद , तारे , सूरज , बाग , बावड़ी और सरोवर आदि की झांकियां पहेलियों में गुम्फित रहती हैं । इनमें अनुभूतियों, मनोभाव, घटनायें, दिनचर्या , हास-परिहास और ज्ञान तोल की जांच-ज्योति को पनपाया जाता है । बालकों में बुद्धि बल एवं कौतूहल की उत्पत्ति होती है, जिससे जटिल समस्यायें सुलझाने की प्रवृत्ति वृद्धि का भंडार भरता है ।

ऐसी कुछ पहेलियां दी जा रही हैं , इनका भी अवलोकन कीजिये —

१ बिना फूंक बजावै बाजा, बिना राज रै बाजै राजा । कहो भायेला कुण है राजा ? (इन्द्र राजा)

२ बिना मैल माळियां रांणी , बिना रोयां नैणां पांणी । राती पीळी ओढ़ ओढ़णी कड़कै रूसै राचै रांणी । किण री धीवड़ किण री रांणी ? (बीजू रांणी)

३ डोलर पांन डगामग डांडी, बिना कुमार घड़ीजै हांडी । बिना जमावणी जमाईजै दही , मरद रै पेट ग्रस्त्री रही ? (मतीरौ)

४ काची नारी कचकची, भर जोवनियै खारी । म्हैं तनै पूछूं बालमा, बूढ़ी क्यूं होवै प्यारी ? (काकड़ी)

५ सिर केसर मुरगा नहीं , लीलकंठ नहीं मोर । लांबी पूंछ लंगूर नहीं, चार पांव ना ढोर ? (गिरगट)

६ ठंडी ठंडी घणी निराळी , म्हैं जाती पांणी सूं ढाळी । लखकर गरमी री हैरांनी, हो जावूं म्है पांणी पांणी ? (बरफ)

७ कदै नहीं म्हैं खाऊं - पीवूं , कदै नहीं म्हैं चरूं । सदा रावळै घरां रुखाळौ , चौकीदारी करूं ? (ताळौ)

८ बिना पांख कुण उड़ जावै ? काळौ चढ़ अकास दिखावै ? (धूंवौ)

९ अरे कहांणी म्हैं कहूं , सुनले म्हारा पूत । बिना पांख्यां ऊंची उड़ै , बांध गळै में सूत ? (पतंग)

१० घोळी घोळी घपली ; मूळै री सी कपली । खावै न पीवै , ईनै देख देख जीवै ? (रुपया)

११ चार चौकड़ी सोळै वानर , तीन घोड़ा अेक असवार ? (रुपया)

१२ आंटी टेढ़ी खेरड़ी नळी नळी में रस , ई आडी रौ अरथ बतायां रिपिया देऊं दस ? (जलेबी)

१३ छोटौ सौ दुरगादास , कपड़ा पेहरै सौ पचास ? (प्याज)

१४ अेक रांड बींरै सात वीसी गांड ? (चालणी)

१५ छोटी सी लकड़ी तामक तैया , मीठी लागै रे भैया ? (खारक)

१६ छोटी सी मीमली , राजा भेळी जीमली ? (मक्खी)

अलंकार शास्त्रियों ने पहेली को अलंकार माना है । जैसे - प्रहेलिकालंकार

प्रस्नहि में उत्तर कढ़ै , कछु सब्द के फेर ।
सौ प्रहेलिका दोय विधि , सब्द अर्थगत हेर ।।

१ देखी अेक अनोखी नारी , गुण उसमें इक सब से भारी ।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवै , मरना जीना तुरंत बतावै ।। [हाथ की नाड़ी]

२ लक्ष्मीपति के कर वसै , पांच वरन गनि लेव ।
पहिलो अक्षर छोड़िके , आय हमें किन देव ।। [सु–दर्शन]

राजस्थानी पहेलियां , वस्तु के गुप्त वर्णन के ढंग से बड़ी महत्व पूर्ण हैं । ये कई तो प्रश्नोत्तर के ढंग से चलती हैं और कई परिजन संवाद के रूप में । बातों और गीतों से भी इनका अधिक प्रचलन है । इनका अर्थ [पहेली] पूछते समय किसी के बाप दादे को नाई अथवा डूम तक की उपाधि देदी जाती है । उक्त बात पहेली के साथ ही कही जाती है । अतः श्रोता के लिए पहेली बुझाना [अर्थ बताना] आवश्यक हो जाता है ।

१. गळा में गांठ गुद्दी में गूमड़ौ ।
ई आडी रौ अरथ बता , नीं बाप दादौ डूमड़ौ । [मकोड़ौ]

२. छोटी सी टिकड़ी पीळै रंग पाई ।
ई आडी रौ अरथ नीं बतायां बाप दादौ नाई । [नथ]

३. चार नार चिट्टू पिट्टू एक नार जंगी ।
ई आडी रौ अर्थ नीं कै बाप दादौ भंगी । [पंजौ]

गूढ़ार्थ पदों की भांति पहेलियों के गोपनीय उल्लेख बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं । इनमें बेटी जाया बाप, मरद के पेट स्त्री, बेटे का जन्म मां-बाप से प्रथम , बीस गीगला गोद , अस्सी धीवड़ियां पेट, पग पांणी सिर वास्दे, [आग] आटे , पानी के बिना सीरा बनाना , दाढ़ी वाले छोकरे का बाजारों में बिकना , फूल द्वारा बेल को खा जाना, मुरदे का आटा खाना आदि गोप्य वर्णन हैं , जो कहीं कहीं ऐसे क्लिष्ट कल्पनायुक्त हो जाते हैं कि पढ़े-लिखे लोग भी

ग्रामीणों की इस विनोद-वार्ता का सही उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं।

राजस्थान में ऐसी असंख्य पहेलियां हैं, जिनमें ऐसा उत्तम ग्रामज्ञान स्पष्ट छलकता है। आन-उर्वरा वाली यह राजस्थानी धरा पहेलियों में भी लोक बुद्धि-उर्वरा की परिचायक है। किसी भी नयी वस्तु का आविष्कार लोक के सामने आता है, वह तुरन्त पहेली का रूप धारण कर लेता है। देखिये रेलगाड़ी, पोस्टकार्ड, पेंसिल और हवाई जहाज पर कैसी उपयुक्त पहेलियां बनी हैं।

१. एक सखी हम आवत देखा, श्याम घटा बदली में रेखा।
हाथ सिरोही मंगळ गावै, ब्याही है वर ढूढ़त आवै। [रेलगाड़ी]

मंगल गान के साथ यह ब्याई है, किन्तु वर ढूंढ़त आवे दृष्टव्य है। टिकट लिया हुआ यात्री उसका पति है, फिर भी वह रुक रुक कर नये वरों को खोजती है।

२. धोळी धरती काळा बीज, बावण वाळो जावै रीझ। (पोस्टकार्ड)

सफेद कागज [धरती] काली स्याही से लिखे हुए बीज रूप अक्षर विषय-वस्तु के चित्रण में सार्थक हैं, जिन पर लिखने वाला [बावण वाला] रीझ जाता है।

३. अेक मुर्गो चालतौ फिरतौ थाक गियौ।
पाती लायौ गर्दन काटी, पाछौ चालण लाग गियौ। [पेंसिल]
४. गरण गरण नभ चाकी फिरै, तीन पगां री मछळी तिरै। [हवाई जहाज]
५. नूंवै जुग री बच्ची, अेक कांन री कच्ची।
थे कियौ इयै पार, फैला आई उवै पार। [टेलीफोन]

हास्य और विनोद मनुष्य जीवन का एक तत्व है। लोक साहित्य में आनन्दोल्लास की रोचक भावनायें इनमें पाई जाती हैं। राजस्थानी में आडी आडने वाला [वक्ता] ललकार कर बूझने वाले [श्रोता] की ज्ञान परीक्षा करता हुआ कहता है — 'आडी लेसी क पाडी ? का गिरियां सूधी गाडी ?' इस पर श्रोता उत्तर देता है — 'पाडी लूंगा। वह गिरियां सूधी गाडी का अर्थ भी सूथण [पाजामा] बता देता है। वक्ता फिर पूछता है — 'मामै साथै जीमसी क, सैंसी सागै ?' श्रोता — मामै साथै। इस तरह के वार्तालाप के बाद आपस में दोनों आडी आडना शुरू करते हैं। जो बड़ा मनोरंजन का सुन्दर प्रसंग चलता है। और भी लोग सुनते हैं। राजस्थानी गीतों में भी स्त्रियां एकत्रित होकर जुंवाई से पहेलियां पूछती हैं। उनमें मान-सम्मान वाले विशेषण लगाकर जवांई के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया जाता है। गीतों में दोहों के द्वारा चुनौती, शर्त और गालियां भी दी जाती हैं। एक गीत देखिये —

नानड़िया जवांई म्हारी अड़वी री अर्थ दौ
थांरी सुरता करौ नीं विचार। — अर्थ दयौ

टेक — नौ जाया नौ पेट में ढोला, नौ नानेरै जाय
भतौ करूं तौ फेर जणूं, काळां में कै खाय
बावौ सूतौ साळ में, कोई पग फळसै सूं बार
थे जांणौ तौ वतायदौ, नीं सागै वाळा नै लौ बूझ
बाप भलौ बेटौ भलौ ढोला, पोतौ बड़ौ सपूत
पड़पोतौ ओ जलमियौ ढोला सोळै मूठी ऊत
सै सूं पैल्या म्हैं जलम्यौ ढोला, पछै बड़ौ भाई
धूम धड़ाकै बाबौ जलम्यौ, पछै जलमी बाई
मायड़ बेटी दो जणी ढोला, ज्यां बिच अेक भरतार
बाप बेटौ दो जणांजी, ज्यां बिच अेकल नार
चतर हुए सौ बतायदे ढोला, मूरख लूणीजै घास
नानड़िया जवांई राजन, म्हारी अड़वी रौ अर्थ दयौ

अर्थात् हे नन्हे जवांई आप हमारी पहेली का अर्थ बता दीजिये। आप अपनी अकल से सोच - विचार करके अर्थ बताइये या साथ वालों को भी पूछ लीजिये।

१ नो पुत्र जन्मे हैं नो पेट में हैं, नो ननिहाल चले गये हैं। मेरी इच्छा हो तो और भी जन्म सकती हूं मगर अकाल के समय ये क्या खायेंगें ? अर्थ बताइये। [काचर की बेल]

२ बावा घर की साल [कमरा] के अन्दर सो रहा है और उसके पैर दरवाजे के बाहर निकल गये हैं। जवांई अर्थ बताइये। [दीपक]

३ बाप अच्छा है, बेटा अच्छा है और पोता भी ठीक है। मगर पड़पोता बिल्कुल कपूत है। अर्थ बताइये। [दूध, दही, घी, और छछेडूं]

४ सबसे पहले मेरा जन्म हुआ, फिर बड़ा भाई जन्मा, बाद में बाप का जन्म हुआ इसके बाद बहिन का जन्म हुआ। अर्थ दें। [दूध, दही, घी और छाछ]

५. मां बेटी दोनों के बीच एक पति है। अर्थ — (काजल का कूंपला)

६. बाप और बेटे दोनों के बीच एक नार। अर्थ — (आरसी, दर्पण)

यदि कोई चतुर होगा तो इन सारी बातों का अर्थ बतायेगा और मूरख के लिए तो केवल घास काटने के समान है। जवांई हमारी पहेलियों के अर्थ बता दीजिये।

इस तरह की पहेलियों वाले गीत यहां काफी मिलते हैं। इनमें रळो वधावणौ, अरथ वाळौ सुपनौ और आंमौ मोळियौ आदि गीत प्रसिद्ध हैं। इनमें अलंकार और छन्द भी यथा उपस्थित होते रहते हैं। लोकगीतों की तरह राजस्थानी कथाओं में भी पहेलियां बुझाई जाती हैं। डा. सत्येन्द्र ने इन्हें बुझौवल कहानियों में सम्मिलित किया है। परन्तु इसका एक रूप, पहेली भी बताया है। उदाहरण : १. धन रौ बाप ? २. प्यार री मां ३. होण री भैण ४. अणहोत रौ भाई ५. विगड़ी रौ मीत ६. चंचळ नगरी, सोवै सौ खोवै। राजस्थानी में इस तरह की पहेलीयुक्त कहानियां पर्याप्त हैं। इनका उपयोग लौकिक जीवन में ज्ञान की

परीक्षा के लिए होता है। गीतों और वातों की भांति कहीं कहीं अशांत यौन कुंठाएं भी मिलती हैं। मगर ये शव्दों में दिखाई देती हैं, अर्थ में नहीं। जैसे—

१ मूंची सूं सूंधी करी दिया घसड़का चार,
अपणी काम निकाळ के मूंधी दीनी मार— (ओखली)

२ ओकड़ू होकर ढोकलू ढाळ्यौ,
खाडियो देखकर डंडियौ पलारचौ— [कुम्हार का चाक]

आंख पर भी ऐसी अनेक पहेलियां हैं।

वृज की पहेलियों का नीचे लिखे अनुसार वर्गीकरण किया है। डा. सत्येन्द्र ने इन्हें सात वर्गों में वांटा है– १. खेती संवंधी २. भोजन संवंधी ३. घरेलू वस्तु संवंधी ४. प्राणी संवंधी ५. प्रकृति संवंधी ६. अंग-प्रत्यंग संवंधी ७. अन्य। डा. शंकरलाल यादव और डा. श्याम परमार भी इसी वर्गीकरण के पक्ष में दिखाई देते हैं। डा. यादव एक पौराणिक वर्ग और मानते हैं। श्री मनोहर शर्मा ने राजस्थानी पहेलियों के गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार वताये हैं। श्री ओम प्रकाश अनूप ने मालवी पहेलियों को गेय और अगेय नाम से दो भागों में विभाजित किया है।

पहेलियों के विवेचन से ज्ञात होता है कि इनमें वहुत से ऐसे शव्दों की योजना होती है जिनका अर्थ, प्रस्तुत में तो कौतूहल पूर्ण होता है; मगर प्रकरण में आकर उनमें अर्थ द्योतकता आ जाती है। कहीं पर पादपूर्ति के लिए शव्द प्रयुक्त होता है और कहीं पर व्यंग अभिव्यक्ति के लिए। परन्तु ग्रामीण पहेलियों में अनूठी प्रणालियां पाई जाती हैं। यथा — छः अक्षर लगमात विना, पांडु सुत रै नांम। चतुर हुए सौ वतायदे, महाजनवाटि में गांव। राजस्थानी की इस पहेली में एक ग्राम का नाम पूछा गया है, जो विना मात्राओं वाले छः अक्षरों से निर्मित है और पांडव पुत्र के नाम पर महाजनवाटी में वसा हुआ है। यदि आप [श्रोता] चतुर हैं तो पहेली के संकेत स्थानों को खूव खोजिये और पता लगा लीजिये कि इस ग्राम का नाम अरजनसर है। कितनो अच्छी और सार्थक है यह ग्रामीण स्थानीय पहेली।

राजस्थानी भाषा में सार्थक और निरर्थक दो प्रकार की पहेलियां होती हैं जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

(अ) **सार्थक पहेलियां** – पहेलियों में हम सार्थक उन पहेलियों को कहेंगे जिनका गोपनीय अर्थ खोजने से सत्य निकल आता है। जैसे – डोलर पांन डगामग डांडी, विना कुम्हार घड़ीजै हांडी। विना जमावणी जमाईजै दई, मरद रै पेट स्त्री रही। इसका अर्थ खोजने पर मिलता है – मतीरा, जो हमारी वुद्धि में पूर्ण रूप से जंच जाता है। अतः इसे हम सार्थक पहेली कहेंगे। ऐसी कुछ सार्थक पहेलियों के उदा-

हरण द्रष्टव्य हैं —

हुक्के संबंधी पहेलियां —

१. विन रुत डेडर वोलियौ, जळहर कीवी पुकार।
जळ विचेतै देव वळै, सुरतां करौ विचार ।।

२. आया म्हारा पावणा, जांकौ अन्त न पार ।
प्यालौ पांणी आग कौ, सारा धाप्या जाय ।।

३. गयी थी वजार क लावण जौ चिणा ।
सामै मिळगी भोट के, चूंघै नौ जणा ।।

४. तळै नाव वळै, ऊपर वैठ्यौ राव।
कोटे कोटे पद्मिणी चलै पीव के लार ।।

५. घड़े में घड़घड़ाहट ऊठै, कच्ची वैरी काया ।
ई आडी रौ अर्थ नीं जांणौ तौ मांनखै क्यूं आया ।।

६. लांमी नाड़ री कुरजड़ी, व्याई बीकानेर ।
ईंडा दीना मेडतै, दूजौ जैसलमेर ।।

७. आंट करूं तौ खेजड़ियौ, माथै वैठ्यौ होलौ।
ई आडी रौ अर्थ नीं आवै, बाप दादौ गोलौ ।।

८. तळै गाजै ऊपर खींवै, आभौ झुक झुक जाय।
चात्रंग हो तौ अर्थ बतावौ, यौ चौमासौ नाय ।।

९. बांवी बाकी जळ भरी, ऊपर डारी आग ।
जवै बजाई बांसरी, निक्ळयौ काळौ नाग ।।

१०. तळै पांणी ऊपर आगी, विच में ठेलमठेला है ।
गळी गळी में गुड़गुड़ बोलै, यह भी अेक पहेला है ।।

११. नीचै समंदर भूल झिलोरा, ऊपर मैली आग ।
कान्ह बजाई वांसरी, निकस्यौ काळौ नाग ।।

१२. अेक अचम्भौ म्हैं सुण्यौ, आभै बन्धै पाग ।
पूरी हाथ पचास की, पंचा पावक जाग ।।

१३. बड़ौ सयांणौ दम देजाय, मुंह की मेरी मिट्टी ले जाय।
हर दम बोलै थुक्कम थुक्का, अे सखी साजन; ना सखी हुक्का ।।

१४. अेक गांव में बांस खड़्या, दूजै गांव में कूवौ ।
तीजै गांव में लाय लागी, चौथै गांवड़ै धूंवौ ।।

१५. अेवड़ छेवड़ जळ भरचौ, वीच खड़्चौ है ठूंठ ।
कीड़ी रा थण पावस्या, चूंघण लाग्यौ ऊंट ।।

विलोवणा संबंधी —

१. अम्वर में वछेरौ नाचै, मूरी म्हारै हाथ ।

२. अेडैछेड़ै ठीकरियां रौ वाड़ौ, विच में काठ रौ कवाड़ौ ।
घोड़ौ नाचै वाग में, लगांम म्हारै हाथ में ।

३. ऊपर खाती तळै कुम्हार, घींसा-घरड़ी करै चमार ।
४. कारीगर इक मती उपाई, खम्भा ऊपर छतरी छाई ।
भोर भयो जब दाजी बम्ब, नीचै छतरी ऊपर खम्भ !

नारियल संबंधी –

१. डूंगर मारयौ मिरगलो, लाया गाडी घाल ।
खायौ बांमण वांणिया, जस पावै संसार ।।
२. दाढ़ी वाळौ छोकरो, विकै बजार बजार ।
देवां रै माथै चढ़ै, ईंरो करौ विचार ।।
३. संठ पर संठ, संठ में माया ।
ईं पाळी रो अर्थ बतावो, नीं कळजुग क्यूं आया ?
४. पींजर माथै पींजर, पींजर नीचै माया ।
ईं पाळी रो अर्थ बताय, नीं मिनख जमारै क्यूं आया ?
५. भींत में भैरूंजी बोल्यौ, काठ सरीसी काया ।
ईं पाळो रो अर्थ बता, नीं मिनख क्यूं कैवाया ?
६. अेक जिनावर अरड़, जींरी पांख बोलै जरड़ ।
जींको मांस मजेदार, जैने खावै सै सिरदार ।।
७. दाढ़ी वाळौ छोकरो, विकै बजारां मांय ।
देवां रै चरणा चढ़ै, इणरो अरथ बताय ।।
८. कचोळै में कचोळौ, बेटी बाप सूं ई गोरौ ।।
९. विरख बसै, पंछी नहीं, दूध देत, नहीं गाय ।
तीन नैण, संकर नहीं, दीजै वस्तु बताय ।

ऐसी पहेलियां संस्कृत में हैं जरा मिलाइये –

१०. वृक्षाग्रवासी, न च पक्षिराज, स्त्रिनेत्र धारी, न च शूल पाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्ध योगी, जल च बिभ्रन्न धरो न च मेघः ।
११. दुग्धं स्रवंति न च कामधेनु, स्त्रिनेत्रधारी न च शूल पाणिः ।
नारि च नाभा न च राजकन्या, वृक्षाग्रवासी न च राजहंसः ।।

दीपक संबंधी

१. सारंग ले सारंग चली, कर सारंग री ओट ।
सामै मिळग्या जेठजी, करी घणौड़ी चोट ।
२. वेल पड़ी दरियाव में, फूल रियो डेढ़ाय ।
अेक अचम्भो म्हैं देख्यो, फूल वेल नै खाय ।
३. मेलां मांहि पुरुस पठायो, सो मेरे मन घणो सुहायो ।
ठणण ठणण ठणकार भयो, तब कायर नर कूद गयो ।
४. तेली कुंभार भेळा जीमै, पिनारो परोसगारी करै ।
५. तिल री तिलसरी, वन री वनसरी ।
जोहड़ री तळी, तीनूं चीजां कठै रळी ।

६ पग पांणी में सिर वास्दी में । ७ काळौ वाप कमल सौ वेटौ ।
८ तूं होतौ तौ म्हैं क्यूं जातौ ।
९ राजा रै अनोखी रांणी । रात्यूं पग सूं पीवै पांणी ।
१० वावौ सूतौ उरलै घर में, टांग पसारी परलै घर में ।

दीपक की वहुत सी पहेलियां मिलती हैं ।

चरखे संबंधी

१ रग्गौ चालै, वग्गौ चालै, चालै कमर कस,
ईं पाळी रौ अर्थ बतादै रिपिया देऊं दस ।
२ भूं भूं करतौ भंवरी हूं, कांनां मुदरा जोगी हूं ।
गळे जिनेऊं बांमण हूं, घूमघूमन्तौ भूण हूं ।
सासरै जवांई हूं, भैण रौ म्हैं भाई हूं ।
३ काकोजी म्हैं काकौ देख्यौ, कौ बेटाजी किसड़ौ देख्यौ ?
चांच विना म्हैं चुगतौ देख्यौ, पांख विना म्हैं उडतौ देख्यौ ।
४ तीन खड़ी चार पड़ी वतीसां री फेरी ।
कै तौ इणरौ अर्थ वताओ नीं तौ लारै आवौ मेरी ।

चाकी संबंधी

१ ईन्नै डूंगर उन्नै डूंगर, बिच में गावै झाली रांणी ।
ईं आडी रौ अर्थ वता, नीं तौ तेरौ वाप गूंगौ मां कांणी ॥
२ गोळ मोळ चकरड़ी, पीळै रंग पाई ।
गालां में गटीड़ा ऊठे, पाहड़ां सूं आई ।
३ अेक सींग री गाय, बींनै घालै जितरौ खाय ।
४ अेक नार रै दो वाळक, दोनूं अेकै रंग ।
अेक भाजै दूजौ सूवै, दोनूं अेकै संग ।
५ भूरती भैंस रौ सींग पकड़ियौ, करण लगी अरड़ाट ।
६ चातर वैठी चौवटै, छाती माथै भाठौ ।

राजस्थानी में साख संबंधी, हिसाव संबंधी और प्रश्नोत्तर वाली अनेक पहेलियां वड़ी संख्या में मिलती हैं । इनमें कई तत्व ऐसे मिलते हैं जो शिक्षितों के लिए भी शिक्षाप्रद हैं । इनके कुछ नमूने दिये जा रहे हैं ।

१ एक ऊंट पर वैठी युवती और उसके साथ वृद्ध पुरुष से रास्ते में पूछा — आप दोनों का क्या संवंध है ? — वृद्ध ने उत्तर दिया—
नाईका रै भाईका वात कहूं ये हेटी,
ईरी सासू म्हारी सासू आपस में मां वेटी । [श्वसुर वधू]
२ बोरड़ी रै चोर वांध्यौ, देख पिणिहारी रोई ।
के थारै सगौ लागै, के थारै सोई ।
नीं म्हारै सगौ लागै नीं लागै सोई ।

ईरै बाप री बैनोई म्हारै लागै नणदोई (बेटो)

३ चत्तर नार छः वड़ा वणाया ।
किंतरा सबरै पांती आया ।
बाप, पूत, साळो, वहनोई,
मांमो, भाणजो और न कोई ।

४ बरसा बरसी रात नै, भीजी सा वणराय ।
झाड़्यां पांणी चढ़ गयो, हाथी घोड़ा न्हाय ।
घड़ो न डूबै लोटची, पंछी प्यासा जाय ।

उत्तर– ओस पड़ी थी रात नै, भीजी सा वणराय ।
झाड़्यां छांट्यां जम गई, पसुआं पीठ भिजाय ।
घड़ी न डूबे लोटियो पंछी यूं प्यासा जाय ।

पहेलियों के सवाल

१. एक दिन दो किसान भायेला पालो वाढ़ण नै खेतां गिया । सिंझ्या तांई पालो (झाड़ियां) वाढ़ नै आपसरी में मिल्या जद आपस में एक दूजै सूं भिठोरां [ढेरां] रो हिसाब मांग्यो । पैलोड़ै भायलै कह्यो— " म्हनै थूं अेक भिठोरो दे देवै तो म्हारै कनै भी थारै बरोबर भिठोरा हूज्यावै । "

जद दूजोड़ै भायेलै कह्यो — " थूं म्हनै एक भिठोरो दे देवै तो म्हारै कनै थारै सूं दूणा भिठोरा हूज्यावै । " सो तो उवां किसाण भायेलां अेक दिन में कित्ता कित्ता भिठोरा करिया ? उथलो – (५–७)

२. अेक आदमी पनवाड़ी सूं रुपयै रा पांन मांग्या । पनवाड़ी तीन बीड़ा पांनां रा बांध परा पकड़ा दिया । दूसरै आदमी पनवाड़ी सूं भळै रुपयै रा पांन मांग्या; उणनै पांच बीड़ा पांनां रा झेलाय दिया । तीजोड़ै आदमी नै पनवाड़ी रुपयै रा सात बीड़ा पांनां रा बांध दीना । जद लोगां पूछ्यो — " भायेला ? अैयां-कैयां ? अेक ही रुपयै में फरक कैयां राख्यो ? "

पनवाड़ी बोल्यो — " फरक-सरक नही हैं, आखा बीड़ा में पांन बरोबर कढ़ैला ! " बताओ कित्ता । ?

उथलो– ३ बीड़ां में ३५ रै हिसाब सूं पांन १०५ कढ़्या ।
" ५ बीड़ां में २१ रै हिसाब सूं पांन १०५ कढ़्या ।
" ७ बीड़ां में १५ रै हिसाब सूं पांन १०५ कढ़्या ।

३. अेक मिनख नीम्बू ल्यावण बगीचै में गियो । आगै बाग रा चार बांमण आया । हरेक बारणै रै पोरायत पाछै आंवतै उण मिनख सूं आधा नीम्बू लेवण री बात राखी । पण उवै आदमी आधा नीम्बू देयनै अेक पाछो लेवण री सरत पर हूंकारो भर्यो । सैंग पौरैदार राजी व्है गया । जद वो आदमी बाग में बड़्यो । नीम्बू लेय कर पाछो आयो अर पैलड़ै बारणै आधा नीम्बू चुकाया तथा अेक नीम्बू उवां दियोड़ा मांय सूं आपरो पाछो काढ़ कर आगीनै चाल्यो । इणी भांत सैंग बारणां मायै आधा नीम्बू देतो गयो अर अेक नीम्बू पाछो [सरत मुजब] लेतो रियो तो बताओ उवै मिनख किता नीम्बू बचा लिया ? [उथलो, २ नीम्बू] इतना ही लाया था ।]

४. अेक आदमी रै घरां घणा पावणा आया । घर धणी उवां नै सोरा जीमा-जुठानै सुला

देवण री तजवीज करी । नौकर पांवणा सारू वेगा माचा (खाटें) लायौ । पण पूरा नीं ! जे दो-दो पांवणा साथै सोवै , ग्रेक मांचौ ऊवरै ग्रर ग्रेक ग्रेक पांवणौ न्यारौ सोवै तौ ग्रेक पांवणौ वधै ! वतावौ मांचा ग्रर पांवणा कित्ता ? (उथलौ—३ मांचा ४ पांवणा)

छन्द बद्ध पहेलियां —

१ पैलं था वो मरद , मरद सूं नार कहाया ।
पड़्या समंदर बीच , घाव बरछी रा खाया ।।
तत्ता पांणी न्हाय , पाप सब धोय गमाया ।
बारै निकळ्या जभी मरद का मरद कहाया ।। [मोठ, दाल और बड़ा]

२ वैसाखां पाछै लगै , जिकै पीछै साढ़ ।
वै थै गैल्यां में खड़्या , आई करती आड़ ।। [जेठ]

राजस्थानी में ऐसी पर्याप्त पहेलियां हैं जिनमें दुर्गादास , सालगराम , नांनूलाल आदि नाम व्यक्ति वाचक नहीं जातिवाचक रूप में प्रयुक्त होते हैं । जैसे—नांनौ सौ दुर्गादास, कपड़ा पैरै सौ पचास । –[प्याज] छोटौ सौ नांनूलाल, लांमी सी पूंछड़ी , भागग्यौ नांनूलाल पकड़ लाओ पूंछड़ी । –[सूई-धागा] पहेलियों का विषय केवल मनोरंजकता ही नहीं, बुद्धिकौशलता भी है । थोड़ी शब्द विशेषता देखिये – किसी दुकानदार के पास एक स्त्री जाकर कहती है – स्यांम वरण मुख ऊजळकेता ? [उड़द क्या भाव] उथलौ – रावण सीस मनोदर जेता [११ सेर के] पूछना –हनुमान पिता [पवन] कर लेऊं ? [साफ करके लूंगी] उथलौ – रांम पिता कर देऊं ।[दस सेर दूंगा] राजस्थानी में बहुत पहेलियां ऐसी हैं , जिनकी पृष्ठभूमि घर की वस्तुओं से निर्मित हुई हैं । जैसे– पहले थी म्हैं आळी , भोळी , जद ही मेरे हरी पटोळी । पछै हुई म्हैं जोध जवांन , माथौ मूंडर करदी रांड । पहले भोली-भाली और हरी भरी थी । फिर में बड़ी और जवान हुई तब मेरा सिर मूंड कर विधवा बना दिया । यह बाजरी के पौधे का मुंह बोलता वर्णन है । यहां गुरु चेले की प्रश्नोत्तर पहेलियां भी बड़ी गम्भीर एवं श्लेषात्मक हैं । गुरु –

१ हाथ छिलोड़ी कुळ रयी , भेली भाप न खाय ।
नारी चलै उंतावळी , चेला ग्रर्थ बताय ।।

यानि जहरीला फफोला दर्द कर रहा है , गुड़ की भेली भाप से नहीं गलती है , और स्त्री उत्तेजित होकर चलती है, चेला अर्थ बताओ । तब चेला तीनों बातों का एक साथ ही उत्तर दे देता है कि – फोड़ौ । यह वही प्रश्न है ।

२ गाडी खड़ी उजाड़ में , कांटा लागै पाय ।
गौरी सूखै सेज में , कहौ चेला किण दाय । (जोड़ी नहीं)

३ चोखौ वण्यौ न चूरमौ , वोली ग्रावै न दाय ।
श्रोता सुण रीझै नहीं , कहौ चेला किण दाय । (मिठास नहीं)

४. कोरी खावै खीचड़ी, जिनस वर्ण इक नांय।
राजी हुवै न पावणा, कहो चेला किण न्याय। (घृत नहीं)
५. जानक बोलै गाळियां, वहनड़ रही रिसाय।
अंधारो निटियौ नहीं, कहो चेला किण न्याय। (दिया नहीं)

कुछ प्रसिद्ध वस्तुओं के पहेलियों में विभिन्न प्रयोग –

१ अस्सी बेटी बीस जवांई, पांच मरद बिच एक लुगाई। [पंसेरी]
२ अेक नार पीहर से आई, पांच खसम दस देवर लाई। [पंसेरी]
३ आई उन्माद सूं, बैठी गोडा गोळ, पकड़ हाथ पैरा दियौ, उभी हुई पंपोळ। [चूड़ा]

इसे मराठी की निम्नलिखित पहेली से मिलाइये —

चक मक चांदणी, वाटोल दार, हलच घाल वापा, दुखतं फार।

यहां मिश्रण अर्थ की पहेलियां भी बहुत मिलती हैं। एक लौकिक आदर्श की सम्मिलित अर्थों वाली पहेली का नमूना देखिये — इसे पौराणिक पहेली भी कहा जा सकता है।

एक जणौ अैड़ौ तप्यौ, दूजौ तप्यौ न कोई।
अेक जणौ अैड़ौ कूद्यौ, दूजौ कूद्यौ न कोई।
अेक जणौ अैड़ौ बैठ्यौ, दूजौ न बैठ्यौ कोई।
अेक जणौ अैड़ौ ल्यायौ, दूजौ ल्यायौ न कोई।

[ध्रुव, हनुमान, गणेश, भागीरथ]

निरर्थक पहेलियां —

राजस्थानी में ऐसी बहुत सी पहेलियां होती हैं, जो निरर्थक ढंग से काम में लाई जाती हैं। ऐसी पहेलियों में पाद पूर्ति के लिए तुक का मिलाना आवश्यक समझा जाता है। इनमें पहेली पूछने का मतलब प्रश्नकर्त्ता, श्रोता से शब्दों द्वारा कोई कार्य करवाना चाहता है। इन कार्यों में काव्य और कौतूहलता का बाहुल्य रहता है। इनमें तुक के मिल जाने पर श्रोताओं के कानों को बड़ा आनन्द आता है। निरर्थक पहेलियों में प्राय: पशु-पक्षियों और प्राकृतिक वस्तुओं से कार्य पूर्ण करवा देने की हिदायत होती है। जैसे प्रश्न कर्त्ता कहता है– जोधपुर ऊजळी कर? तब श्रोता उत्तर देता है– डबड़ी में भूझळौ, जोधपुर ऊजळौ। पहले बताया जा चुका है कि पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। अत: ये अन्य श्रोताओं को भी बांछें खिला देती हैं। बच्चे तो ऐसे मौकों पर खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं।

कुछ उदाहरण—

हिरण धोरै लाना

तीर मारूं तक मारूं, चढ़ूं लीलकै घोड़ै
ऊंची सी फदाक मारूं, हिरण ल्याऊं धोरै

चींपड़ी का व्याव करवाना

आळियै में आळियौ आळियै में गौह
चींपड़ी री व्याव मंड्यौ गीत गावै गौह

मोरियै को हंसाना

धोरियौ धंसग्यौ, मोरियौ हंसग्यौ

कोठली को पगे चलाना

काळी कांमळ झगां मगां
चाल म्हारी कोठली पगां पगां

कोठली को दुहवाना

सासू बहू होठली, पकड़ दुही कोठली

रामजी को कलेवा करवाना

चन्नण चौकी मिसरी मेवा
उठौ रांमजी करौ कलेवा

मोरिये से गुवार दलवाना

आडी लकड़ी सजड़ किंवाड़
मोरियौ बैठौ दळै गुंवार

१ जोधपुर को आंटा करना (जोधपुर को टेढ़ा करना) डबड़ी में कांटौ, जोधपुर आंटौ। २ जयपुर को उज्जवल करवाना – गोपाळा रे गोपाळा, तेरे गोळी कित लागी, गिरचां छोड गुदी में लागी, टींटोड़ी उठ भागी। टींटोड़ी रा बारै ईंडा, बारै ई दरवाजा, दरवाजा में बुगलौ बैठ्यौ, बुगलै नै कुण मारै, मारै रे धी री जायौ, ठमकै लोई ठारै, काळौ ऊंट कंकेड़ै बांध्यौ, भूरियौ तेरी हियौ, दोफारै रै तावड़ै में जयपुर ऊजळ कियौ। ३ कोठली दुहाना–सासू बहू होठली, पकड़ दूही कोठली। ४ बिल्ली को जूतियें पहनाना–बिल्ली हाथै बळै, बिल्ली पगै बळै, बळती बळती नीम चढ़ै, नीम सूं पड़ी पट, जूतिया पैरचा फट। ५ बकरी से तिल कुटवाना – अेवड़ बैठ्यौ ओटै, बकरड़ी तिल खोटै। ६ कूए से बाटका निकलवाना – रावळी पंजावळी रावळौ कोस, निकळ म्हारा बाटका, पाबूजी री दोस। ७ कूए से मतीरा कुदवाना – आकां रै अकडोडिया, फोगां रै जीरौ, भादासर रै कूवटै सूं कूदग्यौ मतीरौ। ८ घड़ोई नचवाना – पड़ापड़ पोळं पापड़ी, पड़ापड़ पोळं खाजा, नाच रै घड़ोई थनै देखता आवै राजा। ९ तारों को पानी पिलाना – लक्कड़ हालै लक्कड़ डोलै, लक्कड़ लेवै बारा, कोट कांगरै पांणी आयौ पी पी नाठा तारा। १० तारों को राबड़ी पिलाना – छांन ऊपर छाबड़ी, तारा पीवै राबड़ी। ११ तारों को हुक्का पिलाना – छांन पर डोको, तारा पीवै होको। १२ नाहर (भेड़िया) से लादा मंगवाना – खेळचां लारै कादो, नार लावै लादो। १३ भोजे को भींत से निकालना – आंटी जेई भर मचकाई, निकळ भोजा भींत पराई। १४ चांद में से चकरी निकालना – आकड़ती तड़ातड़ बोली, बन्दुकां री घाई,

चांद मांकर चकरी काढूं मेरो नाम सिपाई। १५ टोरड़ी का विवाह करवाना — होको करै डुरड़ डुरड़, चिलम करै चतुराई, राजाजी रा मैल में टोरड़ी परणाई। १६ डाकण का डेरा दिखा देना — दो इलड़ी लड़ै, दो विलड़ी लड़ै, मैड़ी बैठ्या सांप चिड़ै, सांपां रै मूंडै सूई, वागर री भैंस्यां दूई। दूंवता दूंवता आया झाग, वे दीसै केळू रा काग, केळू रै कागां रै अेरी गेरो, वो दीसै डाकण रो डेरो।

उक्त आडी में कई आडियां हैं। जैसे सांप चिड़ाना, बागर की भैंसें दुहा देना, केलू के काग दिखा देना और डायन का डेरा बताना आदि सब निरर्थक पहेलियां हैं। ऐसी वहुत सी पहेलियां राजस्थानी भाषा में प्रचलित हैं। जिनका सांगोपांग वर्णन करना स्थानाभाव के कारण कठिन है।

यहां हम पहेलियों के प्रसंग को विसर्जित करते हुए पुनः कह देना चाहते हैं कि सारे विश्व की पहेलियां, मानव सभ्यता के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। कभी कभी स्थिति और देशकाल के अनुसार उनके रूप और प्रयोगों में अवश्य कुछ परिवर्तन हुए हैं। मगर उनकी मौलिक विशेषताएं ज्यों की त्यों हैं। विश्व के लोक साहित्य में पहेलियां अपना महत्व पूर्ण स्थान रखती हुई भी वे वाल-साहित्य या मनोरंजन की वस्तु मानी जाती हैं। अतः लोक गीत, लोक कथा और लोकोक्तियों आदि के शोध कार्य या विवेचन में आज ये वहुत पीछे हैं। पहेली की इस उपेक्षा वृत्ति को मिटाकर हमें इसकी प्राचीन परम्परा की मान्यता को प्रमाणित करना चाहिये।

लोक प्रवाद — हमने राजस्थानी पहेलियों के अध्याय में लोक प्रवाद भी रखे हैं और लोकोक्ति के कुछ अन्य अंग भी। यहां हम पहले प्रवाद की चर्चा करेंगे और उसके कुछ पर्याय स्वरूप शव्द लिखेंगे। शव्द कोश में इनके अनेक अर्थ मिलते हैं ? जैसे— प्रवाद— बोलना, व्यक्त करना, लोगों में प्रचलित वात, जनश्रुति, किंवदंती, वातचीत, वार्तालाप, चुनौति आदि आम जनता अपनी वोल चाल के समय लोकोक्तियों, नीति की वातों और पद पंक्तियों को काम में लेकर अपने अभीष्ट विषय को सुन्दर एवं प्रमाणित वनाती आई हैं। राजस्थानी भाषा में ऐसे अधिकतर पद्य सप्रसंग होते हैं। उन्हीं पद्यों को हम प्रवाद रूप में मानते हैं। प्रवाद लोक साहित्य का एक सरस अंग है। इसमें विविध विपयों की मनोरंजक सामग्री होती है। प्रसंग वाले प्रवाद वड़े लोकप्रिय एवं मधुर होते हैं। समय और स्थान के कारण लोकस्वभावानुसार इनके रूप तथा पाठों में परिवर्तन भी पाये जाते हैं। राजस्थान में प्रवादों का विषयोदधि अथाह एवं अपार है।

प्रवाद अनेक प्रकार के मिलते हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, हास्य-रसात्मक, उद्वोधनात्मक तथा नीति संवंधी वड़े ही सरस एवं चमत्कार पूर्ण प्रसंग मिलते हैं। श्री मनोहर शर्मा ने अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'वरदा' में इस

[प्रवाद] मौखिक साहित्य के सात शतक तो प्रकाशित करवा दिये हैं। डा. सहल ने भी मरुभारती पत्रिका में और राजस्थानी वीर नामक पत्र में कई ऐतिहासिक और पौराणिक प्रवाद संग्रह करके प्रकाशित करवाये हैं। इसी विषय पर आपकी स्वतंत्र पुस्तक भी है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने भी राजस्थानी लोक-प्रवाद विषय की एक पुस्तक लिखी है। आशा है अब यह विषय यहां अधिक समय तक अंधकार में नहीं रहेगा।

प्रवाद प्राचीन वाक्य हैं। यह छोटे और सुमधुर होते है। अतः याद रख कर प्रभावित करने की वस्तु है। प्रत्येक बात की प्रमाण पुष्टि के लिए प्रवाद अमूर्त गवाह का काम देते हैं। इनमें हर समय मानव हित कामना का संचार होता हैं। यह अनुभव एवं ज्ञान का अनुमान निम्नलिखित उदाहरणों में मिलेगा —

१. **पौराणिक प्रवाद**— कुम्भकरण ने युद्ध से पूर्व अपने अग्रज [रावण] को सीता के लौटाने की बात कही। तब वापिस उत्तर मिला—

> सुण कुम्भा रावण कहै, आय भरांणा अंक।
> पावां पड़ियां ना रहै, लाखां वातां लंक॥

कैसा सैद्धांतिक वाक्य है कि होनी है सो तो होकर ही रहेगी। फिर स्व-सिद्धांत का त्याग क्यों? आज भी हमें उक्त प्रवाद यथा समय दृढ़ता का पाठ पढ़ाता है।

२. **ऐतिहासिक प्रवाद** — प्राचीन समय में एक बार वारहठ वीरदान जी नाम के एक कवि, जालोर गढ़ाधीश नवाब कमाल खां के पास गये। इस हिन्दू कवि के मिलन पर नवाब ने कुट्टण शब्द का प्रयोग किया, जो उस समय हिन्दू के लिए निरादृत शब्द था। इस पर कवि ने उसको समादृत करके निम्न लिखित कवित्त कह सुनाया—

> कुट्टण तेरा वाप, जिकै लाहोरी लुट्टी।
> कुट्टण तेरा वाप, जिकै सिरोही कुट्टी।
> कुट्टण तेरा वाप, जिकै वायड़गढ़ बोया।
> कुट्टण तेरा वाप, जिकै घूड़ मा धबोया।
> कुटिया प्रसन्न खागां किता, जूंझै अर सांकै धरा।
> मौ कुट्टण नै कर कमल खां, तूं कुट्टण किणिया गरा।

यह प्रवाद आज भी हमें जवान की करामात वता रहा है।

इसी प्रकार रज्जब जी के सिर पर विवाह का सेवरा [मोड़] देखकर दादूदयाल जी ने चेतावनी दी—

> रज्जव तें गज्जव करया, माथै बांध्यो मोड़।
> आयौ थो हर भजण नैं, करी नरक नैं ठौड़॥

यह हित की वात सुनकर रज्जव जी ने सारा काम छोड़ दिया।

३. हास्य रसात्मक प्रवाद – एक दिन किसी घर के एकाकी जीवन वाले ठाकुर के यहां एक मेहमान आ उतरे। प्रातः का समय था, ठाकुर ने मेहमान को घर विठा दिया और स्वयं पानी का घड़ा लाने को वाहर निकला। ऐसा निकला कि शाम क्या रात भर घर नहीं आया। मेहमान तो दोपहर तक रोटी का इन्तजार करके किसी दूसरे के घर जा ठहरा, मगर उसी दिन से यह प्रवाद चल पड़ा—

बुग छांणी वैठाय कर, जंवुक चभखी जांण।
राख घसक मनुवार री, खिसख गयौ खुम्मांण।

सियार के सिर पर कभी कभी बुग नामक कीट उड़कर बैठ जाता है, तब वह उससे पीछा छुड़ाने के लिए अपने मुंह में सूखे गोवर का उपला लेकर तालाब में घुस जाता है और धीरे धीरे अपने सारे शरीर को पानी में डुबा कर उस कीट से पीछा छुड़ा लेता है। सियार इस तरह से डुबकी लगा कर वच निकलता है।

४. उद्‌वोधनात्मक प्रवाद – पुखता पुरुषों ने कई बातें वहुत बुरी बताई हैं। उनका सदैव ध्यान रखना ही उत्तम है।

वां णयै री नाट बुरी, रांघड़ केरी आंट बुरी।
माटी री दाट बुरी कुवै री पाट बुरी,
टूस्योड़ी खाट बुरी, चावळां री कांट बुरी।
सांची वात कूं, सिवरूं देवी सारदा, काळू गांव में रूं।

इनसे बचकर रहना ही उत्तम है।

५. नीति संबंधी प्रवाद—

कांई हुवै आघां कियां, हेत विहूणा हत्थ।
नैंण सलूणा ना मिळै तौ, वाळ अलूणी वत्थ॥

गांव के एक ठाकुर और बारहठजी में गहरी मित्रता थी, दोनों आपस में एक दूसरे को वहुत चाहते थे। एक जगह खाते, एक जगह रहते और साथ ही यात्रा मुहर्त में जाया आया करते थे। यदि कोई एक इधर-उधर होता तो दूसरा उसका घर वार संभाला करता था। ठाकुर के लगानादि कामों को वारहठ पूरा करवाता तो वारहठ के खेती के कामों में ठाकुर हाथ वंटाता।

इतने पर भी एक वार दोनों में लड़ाई हो गई। राजस्थानी कहावत 'वडी आंख फूटणने घणौ हेत टूटण नै' के अनुसार उनकी मित्रता टूट गई। ठाकुर ने वारहठ को अपने गांव से निकाल दिया और प्रतिज्ञा करली कि इस वारहठ का कभी मुंह नहीं देखूंगा। वारहठ गांव छोड़कर चला गया, ठाकुर इससे वड़ा खुश हुआ!

एक वार ठाकुर के कुंवर को सांप ने काट खाया। कुंवर का कोमल मुख तत्काल मुरझा गया। वह रोता और विल-विलाता हुआ वेहोश हो गया। तव ठाकुर को याद आया कि उसका पुराना दोस्त वारहठ सांप का मंत्र जानता है! वह सांप के जहर को तुरन्त उतार दिया करता है। मगर उसको कैसे वुलावें?

साजन डोरी प्रेम की, मत खींचौ तणकाय,
टूटयां पाछै सांधसौ, गांठ बीच रह जाय।

आखिर लोगों के कहने से बारहठजी को बुलवाया गया। बारहठजी ने आकर झाड़ा [मंत्र] दिया; सांप का जहर उतर गया। कुंवर होश में आकर हंसने-खेलने लगा। तब ठाकुर बहुत खुश हुआ। उसने बारहठजी से जी खोल कर मिलने की आशा प्रकट की। लेकिन ठाकुर मिले तो बारहठजी का मुंह दीख जाये। कैसे करे ? आखिर एक उपाय निकाला गया। एक बड़े कपड़े की कनात [परदा] लगाकर उसके अन्दर दो बड़े-बड़े छेद करवाए गये। उसमें से दोनों हाथ निकाल कर बारहठजी से सीना मिलाकर मिलने के लिए ठाकुर तैयार हुए। पर बारहठजी ने यह स्वांग देखा तो वे मिलने से बिल्कुल इन्कार हो गये। उन्होंने कहा—कांई हुवै आघां कियां, हेत विहूणा हत्थ ! नैण सलूणा ना मिळै तौ, बाळ अलूणी बत्थ। इस पर ठाकुर ने कनात तोड़ डाली और बारहठजी से दिल खोल कर मिले।

राजस्थानी में इस तरह के नीति-नियम वाले प्रवादों की बहुतायत है। लोक-प्रवाद भी अनेक मातोदर की महिमा है। यह जनता जननी की कोख को उज्जवल करने वाले हीरे हैं। इनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई घटना अवश्य रहती है। कठिन समस्यायें, उच्चानुभाव एवं जीवन संसृति के टेढ़े प्रश्न, जब तीखे, सूक्ष्म और आकर्षक वाक्यों द्वारा प्रचलित होते हैं, तब प्रवाद - प्रकाश फैलता है। यही व्याख्या प्रवाद कहलाती हैं। प्रवाद और पहेलियां दोनों लोकोक्ति के ही रूप हैं परन्तु राजस्थानी में कहावतों के कुछ पद्यबद्ध अन्य प्रकार भी प्रचलित हैं। उन्हें हम अन्य शीर्षक में लिखेंगे।

अन्य – १. अणमेळ घेसळा नै कोकड़—इसमें अनमेल बातों के टोटके होते हैं। इनके पहले चरण में गति होती है, पर दूसरे में नहीं। इसकी अनमेल और निरर्थक बातों से विस्मय की वृद्धि होती है। अन्तिम चरण की पंगु गति छंद की सुन्दरता को नष्ट करके कड़ी प्रवृत्ति वाली प्रतिक्रिया पैदा कर देती है। उदाहरणार्थ –

१ भिड़क भैंस पींपळ चढ़ी, गंडक तुड़ाई नाथ।
चमक डूम नीचै पड़चौ, ढेढ़ रौ टूट्यौ हाथ, जरड़ वट्ट साथल में सूं
२ गुवाड़ बीचाळै पींपळी, म्हैं जाण्यौ वड बोर।
जेई उठार देखूं तौ होळी आडा दिन तीन।
३ ऊंट करचा मींगणा, पड़पड़ बाजी ताली।
लाय पड़ौसण मूसळ, डोरा घालां राली।
४ गुवाड़ बीचाळै पींपळी, म्हैं जांण्यौ वड बोर
जेई भवां वाई तौ, घणा झड़िया आंम
लुगायां कांदा लेल्यौ अे, चिणा री दाळ सा [आक]

इनमें आश्चर्य के साथ हास्य भी आ गया है। राजस्थान में इनका प्रयोग

लोकमजलिसों में होता है।

२. अणमेल रूढ़ियां —

१ आंख आवण, घर लावण, भैंण सोक री नांव।
नाई ठाकर, भाट राजा, चारूं नांव कुनांव॥
२ जगतण को भगतण कहै, कवै चोर नै स्याह।
सांची नै कूड़ी कवै, तीनूं राह-कुराह॥

३. फेर कांई चावणा—राजस्थानी की कुछ उक्तियों में सुखकर वस्तु की योजना अधिक रहती है। इनमें मनुष्य की आनन्द-दायक घड़ियों की दशा दिखाई जाती है।

ठाकर हुवै बौ जांण समझै अक्खरां, सिरोही तरवार, वहै सिर बक्करां।
पांतां सांमी पांत, क पैल पुरुसणा, अेता दे करतार फेर कांई चावणा।

एक चारण परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे भगवान! ठाकुर जो मिले, वह बहुत सी बातों का जानकार हो [यानि कविता समझ सके] सिरोही की तलवार बकरों के सिरों पर चलती रहे। जब थाल परोसने का समय आये तो सब से प्रथम मुझे ही मिले। इतना सा मुझे तू प्रदान करदे तो फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए।

४. **अनोखे ओखाणे** — (क) इनमें अनोखापन भरा रहता है और साथ में हास्य व्यंग की पुट भी दिखाई देती है। इसमें एक तुच्छ वस्तु से अनेक कार्य पूरे करवाने की आशा रहती है। अतः अनोखापन आ जाता है।

१ अेक गूदड़ौ जणा पचास, सैंग करै ओढ़ण री आस।
आप आपरी सिगळा तांणी, खातां खांण न पीतां पांणी॥
२ अेक भेड़ सातां री सीर, नित उठ पीव रंधावै खीर।
प्यारा मित्रां नै बखसै लांणी, खातां खांण न पीतां पांणी॥

ऐसे अनेक ओखाणे राजस्थान में प्रचलित हैं।

(ख) **थोथी चिड़ी कपूरी नांव** — किसी कहावत को चरितार्थ करने वाले प्रसंग की कल्पना करके उसके स्पष्टीकरण के लिए पद्य की रचना की जाती है और उसके अन्त में वह कहावत देदी जाती है।

(अ) अेक गीहूं मांय सैं वींधी, रात्यूं नाह करावै सीधौ।
सांझ संवारै नूतै गांव, थोथी चिड़ी कपूरी नांव।
(आ) अेक तिल मांह सू कांणौ, रात्यूं नाह चलायौ घांणौ।
ले ले कुलड़ा उलट्यौ गांव, थोथी चिड़ी कपूरी नांव।
(इ) पाव खांड अर जणा पचास, किण किण री पूरीजै आस।
ठाकर मांडै बै-वै ठांव, थोथी चिड़ी कपूरी नांव।

(ई) श्रेक वळद पीठ सूं खांडौ, रात्यूं नाह लदावै टांडौ।
घरां बांधणनै नीं ठांव, थोथी चिड़ी कपूरी नांव ।।

डा. सहल ने ऐसे अनेक पद्यों को अधूरा पूरा नाम देकर संग्रहित किया है। इन पद्यों का आधार कोई कहावत होती है। एक ही कहावत को आधा मानकर विविध प्रसंगों की उद्भावना भी इन पद्यों में देखी जाती है। जो बड़ी रोचक एवं सरस होती है। इस प्रकार इनमें समस्यापूर्ति का सा आनन्द आता है। ऐसे अनेक ओखाणे राजस्थान में प्रसिद्ध हैं। थोड़े और देखिये —

१ आयौ जद बोली नहीं, पिव चाल्यौ कर रोस।
श्राप कमाया कांमड़ा, दई नै दीजै दोस ।।
२ बैरी ल्यायौ पांवणौ, करचौ कुटम पर रोस।
श्राप कमाया कांमड़ा, दई नै दीजै दोस ।।
३ काजीजी की पालड़ी, कांदा लीनी खोस।
श्राप कमाया कांमड़ा, दई नै दीजै दोस ।।
४ बांदर जात श्रचपळी, कीली लीनी खोस।
श्राप कमाया कांमड़ा, दई नै दीजै दोस ।।

दूसरी प्रकार :

१ बावौ गयौ नौ दिन, नौ आया श्रेक दिन।
लेखौ करयौ मन परचायौ, बावौ कित गयौ न श्रायौ ।।
२ पिव पासै सूतां थकां हेत नहीं लवलेस।
जैसा कंथा घर भला, तैसा भला विदेस ।।
३ साठीकौ मिळियौ सखी, विरहण बाळै वेस।
जैसा कंथा घर रह्या, तैसा गया विदेस ।।
४ कबहूं न हंसकर कर गहै, रिस कर गहै न केस।
जैसा कंथा घर रह्या, तैसा ही परदेस ।।

भावी– १ जलम घड़ी श्रर मरण घड़ी, टाळ सकै ना कोय।
श्रणहोणी होवै नहीं, होणी होय सौ होय ।।
२ हरड़ै भरड़ै श्रांवळा, चौथी नीम गिलोय।
कूट छांणकर मेल ले, होणी होय सौ होय ।।
३ कवीरौ कैवै कमाल नै, तूं चाल्यौ घर खोय।
श्रण होणी होवै नहीं, होणी होय सौ होय ।।
४ सौ घोड़ा सौ करहला, पूत निपूती जोय।
मेहा तौ बरसत भला, होणी होय सौ होय ।।
५ अेक पर म्हूं अेकलौ, अेक पर थे दोय।
सूनी उजाड़ां श्रा वणी, होणी होय सौ होय ।।
६ थूं तौ जांणै मेलियौ, सांप ऊपरां पाय।

अण होणी होवै नहीं, होणी होय सो होय ।।
७ लाख जतन अर क्रोड़ बुध, कर देखौ किण कोय ।
अण होणी होवै नहीं, होणी होय सो होय ।।
८ पांचां मीत पचीसां ठाकर, सौवां सग्गौ ई सोई ।
इतरा खातर मती बिगाड़ौ, होणी होय सो होई ।।

मन – १ बाळो ठाकर सेवियौ, अधिक वढ़ावण अन्न ।
सो सेवा निरफळ गई, हुई सो जांणै मन्न ।।
२ कर घाल्यौ लख कांमळी, आय विलूमी तन्न ।
जळ वहतौ थळ है नहीं, हुई सो जांणै मन्न ।।
३ पर नारी के प्रेम में, ताकत घणी सतन्न ।
थोड़ै विनाज धन गयौ, हुई सो जांणै मन्न ।।
४ भायां सूं दावौ भिड़चौ, साळा खायौ धन्न ।
घर में नार कुभारजा, हुई सो जांणै मन्न ।।

हंसी – १ नणद भोजाई इसी लड़ी, सासू जाय कूवै में पड़ी ।
सुसरै जायर खाई फांसी, घर री छीज लोक री हांसी ।।
२ नाथै रा तिल नाथौ ही तोलारो, घर री निजर घर रो थुथकारो ।
मांमै री व्याह, मां परोसगारी, जीमै वेटा रात अंधारी ।।

कूए भांग पड़ी – १ रांम नांम रै लेण री, सवकै आंट अड़ी ।
किण किण नै समझाइये, कूए भांग पड़ी ।।
२ अविद्या मूळ अटपटी, घर घर मांय अड़ी ।
किण किण नै समझाइये, कुए भांग पड़ी ।।
३ कुण सुणै किणनै कहूं, अैसी आंण पड़ी ।
किण किण नै समझाइये, कुए भांग पड़ी ।।

जीव समझावणी – १ लूखी सूखी खायकर, ठंडो पांणी पीव ।
देख पराई चोपड़ी, ना ललचावै जीव ।।
२ भोळो घर भूंडो घणो, प्यारो घर रो पीव ।
देख पराई चोपड़ी, ना तरसावै जीव ।।

निरर्थक वस्तुएं – १ ठाकर सूं घर छूटगो, भांडां लीनी भोग ।
तेली सूं खळ ऊतरी, हुई वळीतै जोग ।।
२ ठाकर उतरचौ गांव सूं, भीलां भरज्यौ भोग ।
तेली सूं खळ ऊतरी, हुई वळीतै जोग ।।

उपयुक्त – १ जांचै जोखै देखै परवांण, सूनी सेखी खाख में छांण ।
वोखा ऊंदर सळ्या धांन, जेहड़ा गुरु तेहड़ा जजमांन ।।

विना मालिक – १ नहीं नगीनो नगर में, नहीं नगर में सीर ।
ज्यांका मरग्या वादस्या, रुळता फिरै वजीर ।।
२ आ अे थांनी घर करां, पड़ै दुनी में सीर ।

तेरा मरग्या बादस्या, मेरा मरग्या वजीर ।।

अन्य – १ बूढ़ा गिण्या न वाळकां, तड़की गिण्यौ न सांझ ।
जण जण रौ मन राखतां, वैस्या रह गई वांझ ।।

२ पुरख बिचारौ के करै, जे घर नार कुनार ।
वौ सींमै दो आंगळी, वा फाड़ै गज चार ।।

३ घणै दिनां घर प्रीतम आयौ, आछौ चीर पटोळौ लायौ ।
लाभी रांड न पूछी सैर, काळौ मूंडौ लीला पैर ।।

५. गहगट्ट – मनुष्य सुखों के लिए सदैव लालायित रहता है। जब कभी उसकी मूर्छित या उदास दशा होती है तो उसे कई सुख सामग्रियों के नाम लेकर सचेत किया जाता है। राजस्थान में ऐसे बहुत से गहगट्ट [छन्द] मिलते हैं। इनमें दो व्यक्तियों की उक्तियां होती हैं। एक व्यक्ति प्रश्न करता है, क्या ऐसा हो जाय तो गहगट्ट मचे ? [यानि पूर्ण सुख प्राप्त हो जाय] दूसरा व्यक्ति ऐसे अनेक प्रश्नों को इन्कार करता रहता है, जब तक कि उसकी मनपसन्द की चीज का नाम न आ जाय। उदाहरणार्थ –

१. एक अमल [अफीम] खाने वाला ठाकुर रास्ते चल रहा था। अफीम खाने का समय हो गया, पर पास अमल नहीं। अतः मार्ग में पड़कर गहगट्ट गहगट्ट करने लग गया। एक अन्य बटोही उस रास्ते आया, उसने ठाकुर की गहगट्ट पर प्रश्न करने शुरू किये :–

हाल पुरांणी हळ नयौ, जूड़ौ बण्यौ सुघट्ट ।
ललकारियां रळका करै, जद माचै गहगट्ट ।।

ठाकर बोला – 'नहीं सा, नहीं सा !' इस तरह से ठाकुर ने बटोही के कई प्रश्नों पर नहीं का जवाब दिया। आखिर बटोही ने फिर कहा –

हरियौ फूल गुलाब रौ, डोडौ बण्यौ सुघट्ट ।
घाल कचोळै दळमळै, जद माचै गहगट्ट ।।

ठाकुर बोला– 'हां सा, हां !' बटोही ने ठाकुर को अमल खिला कर चलता किया।

संसार की प्राचीन पहेलियों की बातें करते समय हम ग्रीक की एक पहेली का उल्लेख करना चाहते हैं। बहुत प्राचीन काल से थेवस नगर के किनारे एक पहाड़ की चोटी पर भयंकर रूप-रंग की स्पनिक्स रहती थी। उसका सिर औरत का, धड़ सिंह की, पूंछ सर्प की और पंख पंखेरुओं जैसे थे। यह दुष्ट, पहाड़ से शहर जाने वाली सड़क की तरफ ताकती रहती और प्रत्येक यात्री से निम्नलिखित पहेली पूछती – 'वह कौनसा जीव है जो सुबह चार पैरों से, दोपहर को दो पैरों से और संध्या समय तीन पैरों से चलता है।' – इसका अर्थ न बताने पर वह यात्रियों को मारकर खा जाती। यह हमारी आज की पहेली के अत्यन्त निकट है। इसका उत्तर मनुष्य है, जो बाल्यकाल में घुटनों एवं हाथों के बल, जवानी में दो पैरों से, और बुढ़ापे में दो पैरों और एक लकड़ी, तीन के सहारे चलता है।



बाल लोक साहित्य

राजस्थान में बाल-लोक साहित्य का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इस में कथा एवं गीतों से, व्यापक, खेल संबंधी, मनोरंजन संबंधी, भुलावा-बढ़ावा और वीरता आदि की अनेक तुकबन्दियां या छंद होते हैं। निमंत्रण, न्योरे और मुदित करने वाले वाक्य तो बाल-साहित्य में भरपूर हैं। इन्हें वाणी-विलास या क्रीड़ा वांगमय भी कहा जा सकता है। ये मानसिक श्रम एवं गातृ श्रम के साथ संयुक्त हैं। इस वांगमय के क्रीड़ित वाक्य, कथा, सूत्र और गीत-गान बच्चों के चरित्र निर्माण में बड़े सहायक हैं। ये उनकी जीवन यात्रा के मार्ग दर्शक रूप में अत्यंत उपयोगी रत्न एवं शिक्षा नीति के उज्जवल सितारे हैं। अतः हम यहां बाल-लोक साहित्य को निम्न लिखित तीन भागों में बांट कर निरूपण करेंगे।

१. खेलों में वाणी विलास, २. क्रम संवृद्ध बाल कथाएं और बाल गीत, ३. भुलावा-बढ़ावा और स्फुट काव्य।

खेलों में वाणी-विलास — बाल सुलभ प्रवृत्तियों में खेल, शारीरिक एवं मानसिक विकास का सरलतम साधन है, विश्व के सर्व शिक्षा-शास्त्री बालक को शिक्षा-दीक्षा वृद्धि हेतु खेलों का उपयोग समुचित बताते हैं। उछलते-कूदते हुए हंसमुख बालकों को जिसने देखा है, उसे पता है कि खेल क्या वस्तु-विधान है। यों तो मल्ल-युद्ध, कबड्डी, हॉकी, गेंद-बल्ला, टेनिस, फुटबॉल, दौड़ना, तैरना, वृक्षों पर चढ़ना, गुल्ली-डंडा आदि अनेक प्रकार के खेल हैं, मगर मैदानीय राजस्थानी लोक खेलों में राई-राई, लूणिया-घाटी, सत्ता-ताळी, हड़दड़ौ, चिबदड़ी, काठकठूली, गड्डा, चोर कूंडियौ, उत्तौ-घुत्तौ जैसे प्रादेशिक खेल भी बड़े मनोरंजक एवं रमणीय हैं। इन सब में वाणी-विलास के बोल बड़े सुन्दर होते हैं। इनसे मनोरंजन और व्यायाम, दोनों साथ साथ होते हैं। तास, चौपड़, चरभर, कैरमबोर्ड, तिग्गी आदि कई खेल घर के अन्दर खेलने के हैं। इनसे मात्र मनोरंजन होता है, व्यायाम नहीं। अतः ये उतने लाभदायक नहीं।

चंचल मन को एकाग्र करने के लिए खेल जैसी अनूठी प्रिय प्रणाली में शारीरिक खेलों का बड़ा महत्व है !

बालक दिन भर खेलों की ही इच्छा लिए रहते हैं, कितनी भूख लगी हो, कितना ही आवश्यक कार्य हो, बालक खेल को नहीं छोड़ेगा । माता-पिता पुकारते हुए थक जाते हैं, मगर बालक आने का नाम तक नहीं लेते । वे अपने अछूते मन पर दुनियादारी के खोटे धंधे लादने के आदी नहीं होते । वे खेलों में ही खुश रहते हैं । खेलने से उनका स्वभाव उत्साह से भर जाता है । वे फुर्तीले बन जाते हैं । आजकल स्कूलों में भी खेलने का पूरा प्रबंध रहता है ! कई अच्छे खिलाड़ी तो केवल खिलाड़ीपन के नाते ही अपने शिक्षकों के स्नेह भाजन बन जाते है ।

राजस्थानी लोक-खेल अपठित लोगों की वस्तु होने के कारण पुस्तकों में नहीं मिलते, केवल खेले जाते हैं । वाणी विलास के प्रयोग तो इनकी आत्मा है । ये बच्चों की भोली-भाली प्रकृति के अनुसार ही काव्य पंक्तियां होती हैं, जो खेल के साथ बाल-साहित्य की भव्य निधियां हैं । इनमें बालभाव ही नहीं, उनका सम्पूर्ण हृदय अवतरित हुआ होता है । यहां पहले हम बालकों के खेलों का विवरण देकर उनके काव्य वाक्य प्रस्तुत करेंगे और फिर बालिकाओं के ।

बालकों के खेल, प्रकार और वाणी —

क. दड़ी [कपड़े से बनी गेंद] के खेल— १. मारदड़ी २. चोर कूंडियौ ३. चिबदड़ी ४. हड़ दड़ी ५. ओड़ी-ओड़ी [जिल पाना] ६. उत्ती-घुत्ती ।

ख. मार के खेल— १. कोरड़ा मार २. खल्ला खूंटी ३. राई-राई ४. जंजीर ५. चूंघ-चुंगाळी ६. चोर सिपाई ७. सेर बकरियौ ८. लाला लिगतर ।

ग. लुकने-छिपने वाले खेल— १. आंधौ घोटौ २. आंख मींचणी ३. चम्पौ ४. ग्याता गिणना ५. हैस-पैंस ।

घ. हार-जीत के अन्य खेल— १. लूणिया घाटी २. हड़बळी ३. टेपा घोड़ी ४. फुदकण ५. लंगड़ी ६. टिप टिपणियौ ७. बोड़ियौ कूवौ ८. घुच्ची डंडो ९. हेली १०. काळी कोयलड़ी ११. कबड्डी [तीन प्रकार की] १२. सूरज कुंडाळौ १३. हूंस- स १४. कांय-कांय १५. गोई डंडौ १६. कूरका १७. खांड गळो १८. चील हाडी १९. छायां छकड़ी २०. चंगा २१. ओवया २२. ओवरी २३. सरण-वरण री कांकरी २४. मकड़ी २५. लोह कीळंगौ ।

बालकों के कतिपय खेलों की विधियां —

१ **मारदड़ी**— इस खेल को 'मालदड़ी' भी कहते हैं । मतलब; यह खेल मिष्ठ क्रीड़ा के नाम से संबोधित किया जाता है । वास्तव में खेल है भी मीठा ! जैसी इसके संबंध में एक वाणी प्रसिद्ध है — 'मारदड़ी रौ मीठौ ख्याल, लाग्यां पीछै होज्या न्याल !' इस सूक्ति में कहां तक सत्यता है, उसे क्रीड़क ही जान सकते हैं । इसमें कपड़े की गेंद के अतिरिक्त किसी और साधन की आवश्यकता नहीं ।

खेल के प्रारंभ में किसी एक क्रीड़क के द्वारा गेंद आकाश में उछाल दी जाती है। जो उसे हस्तगत कर लेता है, वही अपने अति निकट वाले सह क्रीड़क के यथाशक्ति उसकी मारता है। गेंद की मार से बचने के लिए सभी खिलाड़ी इधर-उधर भागते हैं, उछलते हैं और बैठते हैं।

२. **उत्तोघुत्तो :–** यह भी एक गेंद का खेल है। पिदिये के अतिरिक्त सभी के पास एक एक गेडिया होता है। गेडिया आगे से आंकड़ेदार होता है, जिससे गेंद के दोटे लगाये जाते हैं। खेल शुरू करने से प्रथम सारे क्रीड़क पूजते हैं। जिसमें डांई पड़ जाती है, वह आगे पिद जाता है। उसे खेलने वाले सारे लड़के पिदाते हैं। किसी क्रीड़क के गेडिये द्वारा दोटा दी हुई गेंद पिदिया यदि चिब [बोच] लेता है तो दोटा देने वाले को उसकी जगह पिदना पड़ता है। पहले पिदने वाला अब उसकी जगह आ जाता है। पहले पहल सारे क्रीड़क अपने पैरों से पालें बनाकर सावधानी से उनमें खड़े हो जाते हैं। पिदिया उनके तन पर गेंद की मारकर किसी को पिदिया बनाना चाहता है और वे अपने शरीर से गेंद को टालने के लिए मजबूत गेडिये की सहायता लेते हैं। अगर किसी के उस गेंद की लग जाती है तो वही पिद जाता है और पहले वाले पिदिये का उसके पाले पर अधिकार हो जाता है। यह बहुत अच्छा खेल है, इसमें प्रत्येक क्रीड़क को अपनी मुक्ति की आवश्यकता बनी रहती है।

३ **हूंस - हूंस** — यह दौड़ने वाला खेल है। खिलाड़ियों को इसमें मात्र भागना ही पड़ता है। इसमें किसी प्रकार के साधन की आवश्यकता नहीं होती। खेल शुरू करने से पूर्व क्रीड़क पूजते हैं, उनमें से एक चोर हो जाता है। फिर किसी खिलाड़ी के द्वारा इस प्रकार प्रश्न किया जाता है – 'बोल हूंस' चोर कहता है 'हूंस' तब सभी खिलाड़ी एक साथ किसी की ओर संकेत करके कहते हैं– 'उपाड़ल्या उबेरी मूंछ' कहकर चोर से बचने के लिए भाग जाते हैं। जिसकी मूंछ उपाड़ने के लिए कहा जाता है, चोर उसे छूने के लिए भागता है। जिस किसी को वह प्रथम बार छू लेता है वही चोर हो जाता है। तब सर्व क्रीड़कों को सूचित करने के लिए कि चोर बना लिया है, कोई एक लड़का तेज स्वर में बोलता है – 'टिडी लोट-टिडी लोट' इसे सुनकर इधर - उधर के सारे क्रीड़क खेल स्थल पर दौड़ आते हैं। फिर खेल खेलने के लिए वही पूर्व प्रारंभिकता अपनानी पड़ती है।

४. **लूणिया घाटी :–** यह समतल भूमि पर धूलि का एक विशेषाकार बनाकर खेला जाता है। इसमें एक गोल-बड़ा घेरा बनाया जाता है और इस घेरे के अंदर एक छोटा घेरा बनाया जाता है। फिर भीतरीय घेरे के चार कोठे बना लिए जाते हैं। खेल शुरू करने से पूर्व सारे खिलाड़ी पूजते हैं। पूजने के पश्चात्

जो चोर हो जाता है, वह क्यारियों के बीच में धूल-कूढ़ा के पास खड़ा हो जाता है। सारे खिलाड़ी घेरे के भीतर ही भागते हुए धूलि कूढ़ा से नमक (धूल) लेना चाहते हैं, मगर चोर उनको पकड़ने की चेष्टा करता है। परन्तु जो चोर से बच-कर कूढ़े से धूलि अपनी मुट्ठी में लेकर यमुना (एक निशान) पर से कूद जाता है, वह विजयी होता है। इस बीच में चोर छू लेता है तो वह मर जाता है। धूलि ले जाता हुआ यमुना पार करने में असफल हो जाता है सो भी मर जाता है। जितने भी मरते हैं उनको खेल के अंत में चोर सहित सब विजित क्रीड़कों को चढ़ाई देनी पड़ती है। प्रत्येक मृत को अपनी चढ़ाई देने के लिए चुनने का अधि-कार रहता है। चढ़ाई क्यारियों में घूमकर दी जाती है। चढ़ाई दे देने के बाद खेल का एक डावा [डाक] पूरा हो जाता है। द्वितीय खेलारंभ पूजने से ही होता है।

५. सरण बरण री कांकरी — धूल की एक बड़ी दुम्मी बनाकर, उस पर पालथी मारकर एक लड़का बैठ जाता है। पीछे उसकी कमर पकड़कर दूसरा क्रीड़क उल्टा सो जाता है। तीसरा उसके पैर पकड़कर उल्टा सो जाता है। इस तरह सब लड़के पीछे वाले लड़के के क्रम से पैर पकड़ उल्टे पृथ्वी पर सोते जाते हैं। डांई वाला लड़का उन सब के चारों ओर घूमकर कुड्ढे पर बैठे हुए लड़के से कहता है — 'सरण-वरण री कांकरी, सरणाटा करती आय, राजाजी रै बाग में कांई जिनावर जाय?' तब आगे बैठा हुआ लड़का कहता है 'कुण हुसी?' 'भीवली कोटवाळ।' 'कांई कांई मांगै?' 'काकड़िया मतीरिया।' 'काचा है।' 'पाका लेस्यूं।' सोते हुए सब लड़कों के मस्तकों को मतीरे की भांति बजाता है और पीछे वाले लड़के को पाका कहकर खींचता है। इस तरह मतीरे तोड़ने जैसा अभियन करता रहता है।

६ हड़दड़ो— हड़दड़े का खेल आरंभ करने से पूर्व बालक भीड़ी बंटकर दो दलों में विभिक्त हो जाते हैं। दोनों दलों की संख्या सदैव समान होती है। खेल के मैदान में बच्चे प्रथम करीब डेढ़ मीटर के अन्तर पर धूल के दो दूमे [कुढ्ढे] तीन डेसी मीटर की ऊंचाई के लगभग बना लेते हैं। इसके बाद उन धूल के दुम्मों पर दो पत्थर रखकर दोनों पर एक लंबी लाठी (बांस की लकड़ी) चढ़ाई जाती है। इस तरह हड़दड़ा तैयार करके उसके दोनों ओर अवस्थानुसार पांच-छः मीटर की दूरी तक लंबे डग भरकर पाणे (पाले) मिण (नाप) लिए जाते हैं। फिर दोनों दलों का एक एक खिलाड़ी पालों पर खेलने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। पालों से सवेग गेंद को लाठी पर फेंकी जाती है। गेंद के लगने से लाठी भूमि पर गिर जाती है। तब जिस पाले से गेंद फेंकी गई थी, उसके सामने के पाले का प्रस्तुत खिलाड़ी मृत माना जाता है और उसके स्थान पर उसके दल

का दूसरा प्रस्तुत हो जाता है। गेंद को चिब (वोच) लेने पर भी सामने का प्रस्तुत खिलाड़ी (जो गेंद फेंकता है) मृत हो जाता है। किन्तु एक ठप्पे की गेंद बोच लेने पर वह मृत होता है। दो तथा दो से अधिक ठप्पों की गेंद बोचने पर वह नहीं मरता। यदि गेंद फेंकने वाले के ही पाले में गेंद तीन ठप्पे खाने जाय, तो वह स्वयं मर जाता है।

जब दोनों दलों में से किसी एक दल के समस्त क्रीड़क मर जाते हैं, तब विजयी दल उन्हें पिदाते हैं। पिदने वाला दल हड़दड़े से बहुत दूर चला जाता है। विजयी दल का प्रत्येक क्रीड़क गेंद के टोरे [दोटे] लगाकर पिदाता है। जिस पिदाने वाले की गेंद, पिदने वाले में से किसी के द्वारा बोचली जाती है, तो वह बैठ जाता है अन्यथा वह लगातार पिदाता रहता है। जब तक पिदाने वाले सब बैठते नहीं, पिदाना बराबर चालू रहता है। टोरा ऊकने से ही बैठना होता है। सभी पिदाने वालों के बैठ जाने पर खेल का एक डाक अवसित हो जाता है। फिर दूसरा डाक इसी प्रकार से प्रारंभ किया जाता है।

टोरे लगाते समय का वांणी विलास :-

पैली पैली पत्तियौ, लाभू रै जायौ छत्तियौ
दो दारी, बात हुई खारी, पिदियै भेड़ मारी
तीन तारग, ले ले भाडेरां री मारग
चार चुरंग, लट लाल सुरंग
पांचली - कूंचली फाड़ में ब्याई, ले हुचरिया घरां में आई
छवां छाकी घेरौ है, पिदिये नै आधी रात रौ फेरौ है
साता खोटी क्यू आई, पिदियौ रोवै ज्यूं आई
आठा, नाळी रा गेहूं काठा, मांय कांकरा भाटा
पूरा नौ नांण, पिदिये रै घरै मांचौ न वांण
दसूड़ी दड़ियां रौ छावौ, घोड़ी वेच गधेड़ी ल्यावौ, ऊपर पिदियै नै चढ़ावौ
ग्यारस भोळी कच्ची है, बारै टोरां सच्ची है
तेरूड़ी तळाई है, चवदै म्हारा भाई है
पन्दरियां रौ पांन पीऊं, सोळियै री जांन जाऊं
सत्तर-मत्तर रा गाडा आया, पिदिया म्हारा पाडा ल्याया
अठ्ठारै रौ अेड़ गेड़, पिदियौ म्हारै घर री ढेढ़
उगणीसां रौ अड़ौ गड़ौ, पिदियै माथै जाय पड़ौ
सुवर भीड़ी रखी है, बीसां टोरां पक्की है

अंतिम टोरे पर – धरम धायौ, पिदियै नै सौ बरस आडौ आयौ।

इस तरह से विजयी दल वाले टोरे लगाते हुए बोलते हैं और पिदने वाले जोश में भरकर उनका टोरा चुकाते हैं। अतः यह हड़दड़े का खेल विमद विनोद तथा शक्ति प्रदायक साधनों में श्रेष्ठकर है।

बालकों के खेलों में अन्य वाणी विलास —

क. उत्तीघुत्ती – ईरिया खीरिया, काकड़िया मतीरिया। थू! मेरै घुतै में दाळ पांणी।
ख. राई-राई – राई राई-राई। रतन तळाई; मइयौ गूंज्यौ, तेल तळीज्यौ!
कींनै घमकाई? गौरूड़ै [गौरी शंकर] नै घमकाई।
ग. लाला लिगतर – लाला लिगतर दचूंक ल्यूं? पाछौ घिर गुद्दी में दचूं।
घ. हड़बळी – हड़बळी री हरियौ चोर, चावै चिणा उडावै मोर।
ड़. खोड़ियौ खाती – खोड़ियौ खाती गऊ चरावै, ले ले लाठी मारण आवै।
च. कांन कतरियौ – १. कोडी अंगी चंगी, कोडी माळियै टंगी।
२. ताकड़ी में तिल कोनीं, मेरै जैसौ मल्ल कोनीं।
३. चाळणी में जौ, मेरा भाई नौ।
४. कोठी ऊपर पीळौ पांन, म्हैं चढूं मांमै री जांन।
५. घोळती जवार, टकै री मण च्यार।
६. कांन कतरियौ, भूंभां भरियौ।

खेल शुरू करते समय के वाणी बोल —

खालड़ै री रोटी पोई, मांय घाल्यौ तेल।
तेल मूसा पीयग्या, खेल बमंडी खेल॥

खेल समाप्त करते समय के वाणी-बोल –

खेल खिडचौ, मैळ मंडचौ। आप आपरै घरां जाओ, कांदा रोटी खाओ।
दोवड़ी री पांणी पीयौ, फट सौ जाओ॥

कोई नटखट बच्चा बीच में ही बोल उठता है – पट मर जाओ। इस पर सब उसे पीटने दौड़ते हुए अपने अपने घर भाग जाते हैं। खेल समाप्त करते समय किसी एक लड़के में डांई (हार) रह जाती है, तब उसको डांई उतारने के लिए कहते हैं —

पग नीचै कूंची, तेरी डांई ऊंची।

वह भी बोलता है – कूवै ऊपर कूकड़ी, मेरी डांई ऊतरी।

बालिकाओं के खेल प्रकार और वाणी —

(क) बैठा खेल – १. गुड्डे २. गुड्डी ३. झोक दूहा ४. कौड़ियों का खेल।
(ख) घेरिया बनाकर खेल – १. खीर-खीर २. सात समंदर ३. तिल मकड़ी।
(ग) प्रश्नोत्तर के खेल – १. धूप-छिया, २. टिपटिपणियौ, ३. सरण-वरण री कांकरी, ४. लूणिया घाटी, ५. बूढ़ी माई, ६. आंघौ घोटौ, ७. काठ कठुली, ८. ऊकड़ी कूकड़ी-दूधिया धार।
(घ) खींचने और चढ़ने वाले खेल – १. नार - बकरियौ, २. राई - राई, ३. सरण-वरण री कांकरी, ४. चील झपट्टौ, ५. उत्तर भीखा मेरी बारी।
(ड़) भंवाळी खाने [घूमने] वाले खेल – १. गाणी - माणी गोटियौ, २. तिलड़ी।

(च) कूदने वाले खेल – १. भैंसा टुम्मी, २. पंखा कूदणी, ३ कच्ची-पक्की, ४. रस्सीकूदना।

(छ) श्वांस टूटने तथा दौड़ने वाले खेल – १. सत्ता ताळी, २. खोड़ियौ खाती, ३. गंगा-जमना, ४. अमियांजी अमियांजी, ५. चिरमी ठोलौ, ६. कांन कतरियौ।

[कुछ खेलों को बालक और बालिकाएं दोनों अपने-अपने ढंग से खेलते हैं। कई खेल दो-दो, तीन-तीन, प्रकारों में भी आते हैं। इसलिए उनके नाम दुहरा दिये गये हैं।]

बालिकाओं के कुछ खेलों की शैलियां —

१. बूढ़ी माई — यह एक हास्य खेल है। प्रथम एक लड़की बुढ़िया बन जाती है। वह धूल का एक बड़ा कुढ़ा बनाकर उसमें हाथ फेरने लगती है। तब दूसरी लड़कियां वृत्ताकार में खड़ी होकर उससे प्रश्न करती हैं और वह उत्तर देती है। उत्तर बड़े विनोद दायक होते हैं। 'बुढ़िया बुढ़िया के घोटै ?' 'भांग !' 'भांग रौ के करसी ?' 'पीस्यूं' 'पीकर के करसी ?' 'गूंगो होस्यूं।' 'गूंगी होकर के करसी ?' सूई ढूंढ़स्यूं।' 'सुई रौ के करसी ?' 'कोथळियौ सींवस्यूं !' कोथळियै रौ के करसी ?' 'रिपिया घालस्यूं।' 'रिपियां रौ के करसी ?' 'गाय लेस्यूं !' 'गाय रौ के करसी ?' 'दूध दूस्यूं !' 'दूध रौ के करसी ?' 'पीस्यूं !' इस अंतिम उत्तर पर सब लड़कियां एक साथ कहती हैं— 'दूध पांती रौ मूतियौ ही पी, मूतियौ ही पी !' इस पर बुढ़िया खीझकर उनके पीछे दौड़ती है। जो लड़की उसके हाथ आ जाती है। तब वही अगले डाक में बुढ़िया बनाई जाती है। यह क्रम संवृद्ध खेल कथा है।

२. तिलड़ी — यह एक युगल नृत्य खेल है। इस में दो लड़कियां अपने हाथों के पंजे दृढ़ता पूर्वक एक दूसरी से मिलाकर पीछे झुकती हुई घूमती हैं और कहती जाती हैं —

तेरै पग तिलड़ी, मेरै पग बिछिया।
फोड़ूं तेरी तिलड़ी, बजाऊं मेरा बिछिया॥

उक्त वाक्य बोलती हुई जब तक थकती नहीं, पीछे झुकी हुई घूमती रहती है।

३. मकड़ी— एक बच्ची आंख मूंद कर बैठ जाती है। दूसरी लड़कियां उसकी पीठ थपथपाती हुई कहती हैं – 'चढ़-चढ़ मकड़ी, पताळ घड़ी लकड़ी। उरलै कुवै रौ पांणी पादूं, परलै कुवै रौ भूत लगादूं। सुखलै री मां रौ तैयौ खुवादूं।'

४. चिरमी ठोला—इसमें खेलने वाली सभी क्रीड़काएं किसी आंगन पर एकत्रित होकर बैठ जाती हैं। उनमें से कोई एक क्रीड़का अपने को चोर बना लेती है। एक क्रीड़का अपने हाथों से चोर क्रीड़का की आंखें मूंद लेती है। फिर

खेलने वाली लड़कियों में से ही कोई एक चोर क्रीड़का के सिर में ठोला लगा देती है। और इसके बाद उसकी आंखों पर से हाथ हटा लिए जाते हैं। इसके बाद चोर बालिका से प्रश्न किया जाता है – 'मोठां मांयलौ घुण, चिरमी ठोलै कुण ?' याने किसने तुम्हारे सिर पर ठोला मारा ? इस पर वह चोर क्रीड़का अपने अनुमान से किसी एक लड़की की ओर संकेत कर देती है। यदि उसका अनुमान सही निकल जाता है तो संकेतित लड़की चोर बन जाती है, नहीं तो वही चोर बनी रहती है। पुन: खेल शुरू करने के लिए प्रारंभिकता अपनानी पड़ती है।

५. सत्ता ताळी — इस खेल को चालू करने से पहले सभी क्रीड़काएं पूजती हैं। जो क्रीड़का चोर हो जाती है, यह सभी क्रीड़काओं के पीछे चोर [किसी एक को] बनाने के लिए दौड़ती है। जिस किसी को वह पकड़ लेती है, वही चोर बन जाती है। यदि चोर क्रीड़का, किसी को बैठने पर छुवे तो वह स्पष्ट चोर नहीं बनती। बैठी हुई क्रीड़का को यदि चोर छू ले और वह बिना शुद्ध के छुवे खड़ी हो जाये तो वह चोर बन जाती है। खड़ी हुई क्रीड़का शुद्ध कहलाती है।

६. आंधौ भैंसौ— इस खेल को शुरू करने से पहले सारी क्रीड़काएं पूजती हैं। चोर हो जाने वाली लड़की के नैत्रों पर पट्टी बांध दी जाती है। पट्टी बांधने के बाद पट्टी बांधने वाली लड़की द्वारा धीरे से अलग ढकेल दी जाती है। फिर सर्व क्रीड़काएं उस चोर क्रीड़का के सिर पर थप्पड़ लगाती हैं। भाग्यवश थप्पड़ लगाने वाली किसी क्रीड़का के चोर का हाथ लग जाता है। उसे चोर बनाकर दूसरा डाक खेला जाता है। आंधा भैंसा और आंधा घोटा बराबर के ही खेल हैं।

७. उतर भीखा — इस खेल में एक क्रीड़का अपने विपरीत दूसरी क्रीड़का को पीठ पर उठा लेती है। फिर नीचे वाली क्रीड़का से प्रश्न करती है — 'भीखै पर कुण ?' नीचे वाली जवाब देती है — 'भीखौ' तब नीचे वाली कहती है : 'उतर भीखा मेरी बारी ?' इस पर ऊपर वाली क्रीड़का उतर कर नीचे वाली को अपनी पीठ पर उलटी उठा लेती है। इस तरह लगातार प्रश्नोपरांत नीचे ऊपर होती हुई खेलती जाती हैं।

८. घांणी मांणी गोटियौ — यह एक एकाकी नृत्य खेल है। इसमें खेलने वाला अपने आप भुंवाली लेता है और कहता जाता है— 'घांणी-मांणी गोटियौ, बाजरी रौ रोटियौ।' चक्कर आने से गिर पड़ता है और हंसता है।

९. गड्डे — सात तक गड्डे [गलगिचिये या कंकर] लेकर लड़कियां खेलने बैठती हैं। वे बारी बारी से उन गड्डों को अपने हाथ से भूमि पर उछालकर, एक गड्डा हाथ में रख लेती हैं। बाद में वह गड्डा ऊपर उछालकर उसके नीचे पड़ने

से पूर्व जमीन पर पड़े हुए गड्डों को अपन हाथ में सूंत लेती है और ऊपर उछाले हुए गड्डे को भी उन [हाथ वाले] गड्डों को चिवती जाती है। वह न तो पास वाले गड्डों को हिलने देती है और न ऊपर वाले गड्डे को नीचे गिरने देती है। इस तरह से पहले एक-एक गड्डा सूंतती है, फिर दो-दो और इसी तरह से तीन-तीन; चार-दो, पांच-एक करके छ: गड्डों तक सूंत लेती है। वे हारमोनियम के सरगम से लगाती हुई उतार चढ़ाव के साथ गड्डे खेलती हैं।

गड्डों से कई प्रकार के खेल खेले जाते हैं। जैसे :— छींकी, सत्ता, अट्ठा, आडळी-सीधळी, पांच गड्डा, सात गड्डा, नौ गड्डा, ग्यारै गड्डा, तीन गड्डा।

तीन गड्डों की वाणी — अणची रे अणची, फूल पणंची, मोरियै री चांच्यां, गई म्हारो पांच्यां।'

पांच गड्डों के प्रकार—अेकोला, दौला, तिनौला, चौला, करेंची, कुत्तौ, झूंपड़ी, विच्छू, रावड़ी, कांच।

गड्डे खेलने प्रारंभ करते समय का वाणी विलास —

आजू रे आजू, वावन बाजू। तरकत तेला, चार करेला। पांचवै री पूंची, छठी बाई छींकी। सातवौं सीता फळ, आठवौं गंगाजळ। नौ घर नायां रा, दस घर भायां रा। ग्यारै कळा काचरी, बारै बूंटी राज। तेरवी तळाई है, चौवदई भोळाई है। पन्दरवै रौ पांन खाऊं, सोळवै री जांन जाऊं। सतर मतर ग्यांनड़ी, अट्ठारै गाडी धांन री। उगणीसां रौ अड़ौगड़ौ, बीसां माथै जाय पड़ौ। इक्कीसां रौ ओटौ है, बाईसां रौ बोटौ है। तेईसां री तिलोड़ी, चोईसां रा चावळिया। पच्चीसां रा पापड़िया, छाईसां रौ थूथवौ।

१०. अमियांजी अमियांजी—इस खेल में सब लड़कियां एक दूसरी से हाथ मिला कर घेरा बना लेती हैं। उस घेरे में एक लड़की मछली बनकर खड़ी हो जाती है। घेरे की क्रीड़काएं घूमती हुई मछली से पूछती हैं — 'सात समंदर गोपी चंदर, बोल म्हारी मछळी कितरौ पांणी ?' तब मछली घूमती हुई अपने पैर के हाथ लगाकर कहती है — 'इतरौ पांणी' फिर उससे वही प्रश्न किया जाता है। तब वह अपनी कमर पर हाथ लगाकर 'इतरौ पांणी' कह देती है। तीसरी बार पूछने पर वह अपने सिर पर हाथ रखकर सिर से ऊपर तक का पानी बता देती है। इस अंतिम उत्तर पर सभी क्रीड़काएं यह वाक्य—'मछळी डूबगी, मछळी डूबगी' कह कर दौड़ पड़ती हैं। मछली भी उनके पीछे भागती है। आगे भागने वाली लड़कियों में से कोई भी एक लड़की उसके हाथ आ जाती है तो अगले डाक में वही मछली बनाई जाती है।

उक्त खेल का दूसरा वाणी प्रकार — अमी दादी-अमी दादी, गजरौ टूटचौ। कांसूं टूटचौ ? घाघरै रौ घेर लाग्यौ, साड़ी रौ फटकारौ लाग्यौ

जांसूं टूट्यौ ।

खेल का तीसरा वाणी प्रकार — अमी दादी–अमी दादी खेल खिलाओ। क्यूं बच्चियों ? किधर गई थी ? नानेरे ! वहां क्या खाया ? दही रोटियां ! हमारे तांई क्या लाई ? तब वे कोई खराब चीज बताती हैं ; तब अमी दादी उन सबके पीछे दौड़ती है। जिस लड़की को वह छू लेती है, उसीमें अगले डाक के लिए डांई [हार] पड़ जाती है।

बालिकाओं के खेलों में अन्य वाणी विलास —

[क] काळी भाटी कड़कड़ियौ —

काळी भाटी कड़कड़ियौ, हाथ में पपैयौ
राजा सूता महल में, ऊठौ ऊठौ भोळानाथ
जांन आई नैड़ी नैड़ी, आवादयौ जी आवादयौ
बीवी नै परणावणदयौ, बीवी जायौ बेटौ
नांव कढ़ायौ जेठौ, जेठै मांग्या दांणा
तीनूं छोरा कांणा, जका घणा स्यांणा ।

[ख] गुड्डी गुड्डों के खेल में —

गुड्डी बळै, गुड्डौ रोवै, मेवला झुर रे ! झुर !

[ग] आल —

इतणी वडी क्या ? आल अपणी गुड़िया संभाळ, अच्छी तरह से ।

[घ] बेठा खेल बन्द करते समय —

पैली बोलै, गधौ छोलै । दूजै बोलै, मांमै री हाट खोलै ।।
तीजै बोलै, खांड खोपरा तोलै । पछै बोलै, आटौ घी ओलै ।।

इस तरह के वाक्य कहकर चुपचाप सब अपने अपने घरों को रवाना होती हैं। लेकिन बच्चियां ही तो ठहरीं ! दरवाजे से निकलती हुई फिर अड़ जाती हैं और कहती हैं – ' पैलौ पापी, दूजौ धरमी, तीजौ तेली अर चौथौ चांद अर पांचवौ, छठौ, सातवौ राजा, कहती हुई भाग जाती हैं।

[ड़] लड़कियों के साथ कोई लड़का खेलने जाता है, तब —

छोरचां सायै छोरौ खेलै, बावैजी नै कैवण दे ; आधौ नाक कटावण दे।

[च] लड़के भी लड़कियों को गड्डे खेलते हुए देख कर कहते हैं –

गड्डा खेलै काळ पड़ै, छींकी खेलै छांट पड़ै !

ये आपसी प्रतिस्पर्द्धा की बातें हैं। खिलाड़ी बालक-बालिकाएं कतार से आते जाते हैं, नीचे ऊंचे चढ़ते उतरते हैं तथा खेलों में हारते-जीतते भी हैं। तब वे क्रम से निम्नलिखित बाल काव्य वाणी उच्चरित करते हैं —

१. मेरै लारै मेरी भीड़ी, सोने री कतार है।

२. नीचलां नै कीड़ा खावै, ऊपरलां नै जांन जिमावै।

३. म्हारै भीड़ी नै खांड खोपरा, थारै भीड़ी नै गुड़ रा भोरा।

बालक खेल स्थान पर खाने के लिए बीज, बेर एवं मूंगफली, चिटकी जैसी कोई चीज लाते हैं। एक दूसरे से आपस में मांगते हैं और न देने पर अपनी काव्य वाणी में इन्कार भी करते हैं:

म्हैं ल्यायो मांग-तांग, तू ले गधै री टांग।

मात्र वाणी विलास के बाल खेल—

अ. पांन बीड़ी सिगरेट, बाबू गाड़ी आई लेट
गाड़ी मारी सीटी, दो मरग्या टीटी
टीटी दियो तार, दो मरग्या जमींदार
जमींदार मरचा ठीक, पण दो मरग्या खटीक
खटीकां खोदी खाई, दो मरग्या सफा नाई
नायां करी सूंवार, दो मरग्या लुहार
लुहारां घड़ी पाती, दो मरग्या खाती
खात्यां छोल्या छोडा, दो मरग्या मोडा
मोडां वणाई पूंगी, दो मरगी रूंगी
रूंगी करचा खारिया, दो मरग्या गिवारिया

ब. आंटी-टूंटी खेरड़ी, खेरड़ी खाई वराड़
वराड़ में नीकळचो, कुबदी किराड़
कुबदी किराड़, फोड़चा ढोल
मांय निकळचो, गुरणेसियो गोल
गुरणेसियै गोल, गिडी खेली
मांय निकळचो, खाजूड़ो तेली
खाजूड़ो तेली, करियो झोड़
जका में कढ़चो मनसो गौड़
मनसै गौड़ वाही मोगरी
मांय निकळचो पुरखो चौधरी
पुरखो चौधरी करी चतराई
जिण में ब्याई भेड बिलाई
पण बचियां री धोळी पूंछ
वा दीसै मोडै री मूंछ

यह बालकों का पहेली वाणी विलास है, जो उक्त प्रहेलिका प्रकरण में मोडै की मूंछ दिखाने की तुक में संक्षिप्त ढंग से लिखा गया है। खेलों और उनके वाणी विलास से बड़ा लाभ यह है कि इनसे बालकों में उदारता, सहनशीलता एवं बांकेपन के गुण आते हैं। ये गुण सामाजिक, नैतिक तथा राजनैतिक प्रगति के लिए अत्यावश्यक हैं। उक्त गुणों वाले नेताओं, कार्य कर्ताओं और सैनिकों से

देश अभ्युदय के शिखर पर चढ़ता है। खेलों से बालकों की उदात्त भावनाएं विकसित होती हैं और उनके संकुचित विचार नष्ट होते हैं।

राजस्थान के मालाणी प्रान्त में गांवं चिड़िया के वृद्ध कहानी कार अखजी वानरजी ने लड़कियों का एक नाच खेल बताया है। उसके काव्य वाक्य हैं—

फूलां बाई री फड़की ल्यो।
हीरां वाई री हार ल्यौ।
तोगां री तलवार ल्यो।

अर्थ—सती भटियाणी हीरां वाई के सौभाग्य रूपी हार को हृदय पर धारण करो। वीरवर तोगा की तलवार रूपी वीरता लेकर तितलियों के समान आनन्दोल्लास से नाचलो। [अनोखी आन, प्रस्तावना]

क्रम संवृद्ध बाल लोक कथाएं और गीत — क्रम संवृद्ध कहानी में विशेष गति, क्रम और जिज्ञासात्मक विलक्षणता रहती हैं। जो बाल-सुलभ मनोवृत्ति के अनुकूल मनोवैज्ञानिक शिक्षा सामग्री का स्वरूप होती है। ऐसी कथाएं राजस्थान में बहुत पाई जाती हैं। वे संध्या समय बूढ़ी नानी दादी बालकों का मन बहलाने के लिए अपने मुखारविन्द से सदैव निःसृत करती रहती हैं। मैं वे ही कुछ कथाएं उदाहरणार्थ नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं।

१. अेक बिल्ली सैर रै गेलै माथै आयर बैठगी। थोड़ी ताळ पछै बठै गुड़ रौ गाडौ आयौ, गाडीवांन मारग में बिल्ली बैठी देखी अर कयौ— 'बिल्लड़ी परियां मर, बळद चींथ नाखैला।' बिल्ली बोली — 'म्हैं तौ हूं राजा री बिल्ली, सदा चाबूं सक्कर तिल्ली, म्हारौ डावौ कांन भरा दे।' गाडीवांन बोल्यौ—नाखौ रे रांड रै कांन में अेक गुड़ री डळी। बिल्ली अेक कांन भराय कर उठै ही बैठगी। थोड़ी ताळ नै अेक सक्कर रौ गाडौ भळै आयौ। गाडीवांन बोल्यौ— 'बिलड़ी मरसी के? अळगी मरै नीं, बळद चिगथ नाखसी।' बिल्ली कयौ — म्हैं हूं राजा री बिल्ली, खाऊं सदा सक्कर तिल्ली, मेरौ जींवणौ कांन भराय दे।' गाडीवांन कयौ — 'नाखौ रे रांड रै कांन में अेक चूंटी सक्कर।' बिल्ली दूजौ कांन भळै भरा लियौ। अर बठै ही जमी बैठी रयी। थोड़ी ताळ नै तेल रौ गाडौ आयौ। गाडीवांन बोल्यौ—'बिलड़ी क्यूं मौत मांगै। बळद कीचरड़ौ काढ़ नाकसी नीं?' बिल्ली बोली— 'म्हैं तौ राजा री बिल्ली' खाऊं सदा सक्कर तिल्ली, मेरा दोनूं कांन भराय देवौ।' गाडीवांन कयौ — नाखौ रे रांड रै कांनड़ा में तेल री ल्याळ।' बिल्ली दोनूं कांन काठा भराय कर ल्याई अर आपरा बच्चियां नै कयौ — 'खाओ बेटा धाप धाप।'

२. मोर की बात [मयूरों के बोलने का तथ्य बताना] दीतार खनै घोड़ौ बांध्यौ। घोड़ै करी लीद, जका कुम्हार ले गियौ। उवै घड़्या बासण, तळाव

री पाळ सुकाया। गायां फोड़ दिया। गायां बाम्हण क्यूं फोड़्या ? गुवाळो चरावै नीं। गुवाळो चरावो क्यूं नीं ? बाई बाटी नीं देवै। बाई बाटी क्यूं नीं देवो ? बीनणी आटो नीं पीसै। आटो क्यूं नीं पीसै ? चाको माथै पांवणा बैठा है। पांवणा चाकी क्यूं बैठा हो ? बरसा बरसै है। बरसा क्यूं बरसो हो ? बीजळ खिवै। बीजळ क्यूं खींवो ? इन्दर घररावै। इन्दर क्यूं घररावो ? मोरिया बोलै। मोरिया क्यूं बोलो ? बोलांला जी बोलांला ; म्हांरै दादो सा रौ देस है। इस कहानी में क्रम संवृद्धता टूटती नहीं, सीधी तीर की तरह अपने लक्ष्य की ओर चली जाती है। कई कहानियां पीछे लौटती हैं और सक्रम होते हुए भी उद्देश्य हीन सी रहती हैं पर यह तो सोद्देश्य एवं सफल होकर चलती है।

३. एक आश्चर्यमयी कहानी— एक लड़का अपनी मौसी के लिए जंगल से लकड़ी लाने जाता है। वहां उसको शिव पार्वती द्वारा वरदान मिलता है और वह 'सिव म्हाराज री चिप्पम चिपा' कहकर सब को चिपका देता है। इस चमत्कारिक कार्य के लिए मां-बाप से आदर पाता है।

इसमें पर्याप्त विनोद भावना व्याप्त है। कथा पूर्णरूपेण सक्रम एवं सफल है। आकर्षक एवं आश्चर्यमय भी।

एक आदमी का कमेड़ी के साथ ब्याह – एक आदमी ने कमेड़ी से विवाह किया। उसने कमेड़ी को घरवालों से अलग मालिये में बैठा दिया। एक बार उसके घर पर किसी का विवाह होना निश्चित हुआ। घर की औरतें दिन को वैवाहिक कार्य करती। कमेड़ी अपनी पांती के वे सभी कार्य रात को कर दिया करती थी। उसका पति बरात में गया तब पीछे से वह प्यास के मारे समुद्र पर चली गई। वहां उसको शिव-पार्वती मिले और उसे सुन्दर स्त्री बनादी।

इस कथा में योनि परिवर्तन है। लोक कथाओं में असंख्य मूल अभिप्रायों में से योनि परिवर्तन नामक मूल अभिप्राय अत्यन्त विस्तृत, व्यापक और महत्व-पूर्ण है। लोक-कथाओं में इस अभिप्राय के अनेक रूप उपलब्ध रहते हैं। यह कार्य अधिक जगहों पर शिव पार्वतीजी की किसी घटना द्वारा पूर्ण होता है। रास्ते चलते दम्पति में से पार्वतीजी किसी घटना को देखकर रूठ जाती है और भोले महादेव को वह कार्य करना पड़ता है।

जो भी हो, लोक-कथाओं में यह 'योनि परिवर्तन' अत्यन्त प्रचलित एवं परम लुभावना, मनोरंजन का साधन है। लोक कथाओं में ऐसे मनोरंजक और आश्चर्यजनक अभिप्रायों का अनेक प्रकार से उपयोग होता है। कहीं कहीं व्यंग्य भी प्रस्तुत हो आता है। इसमें पशु-पक्षियों के स्वभाव की भी झलक आ जाती है।

बाललोक साहित्य के जड़ और चेतन सभी चराचर जगत में मानवता प्रतिष्ठित मिलेगी। शेर, भालू, चूहे, चिड़िया, पर्वत, झरने, पेड़, पृथ्वी

सब बोलने एवं अनुभूति रखने वाले होते हैं। नीचे एक ऐसी पद्य-कथा लिख रहा हूँ, जो बच्चों में खूब प्रचलित है।

५. चिड़िया कौए की प्रथम कहानी— एक चिड़िया को कहीं से मोती मिल गया। उसको किसी कौए ने झपट कर छीन लिया और खेजड़े पर जा बैठा, चिड़िया ने खेजड़े से कहा — 'खेजड़ा खेजड़ा काग उडा' खेजड़े ने इन्कार कर दिया और आगे सभी लोग एक ही उत्तर देते रहे। तब चिड़िया कहती है —

खेजड़ो काग उडावै नीं, खाती खेजड़ वाढ़ै नीं, राजा खाती डंडै नीं, रांणी राजा सूं रूठै नीं, मूसौ कपड़ा काटै नीं, बिल्ली मूसौ मारै नीं, कुत्तौ बिल्ली रोसै नीं, डांग कुत्तौ मारै नी, बिसनर डांग बाळै नीं, समदर बिसनर बुझावै नीं, हाथी समदर झिकोळै नीं, चिड़िया रोवती रैवै नीं।

तब चिड़िया चींटी के पास गई। चींटी ने चिड़िया का कहना मान लिया और कहानी पीछे चल पड़ी। मोती मिल गया।

पूर्व कथित अंशों की पुनरावृत्ति बालकों को जिज्ञासा, प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार की कहानियों का कोई पात्र अपनी किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयास करता है। पशु-पक्षियों, मनुष्य, जड़ अथवा चेतन पदार्थों से भी सहायता चाहता है। फिर प्रार्थना की असफलता, बदला लेने का भाव एवं आखिर में किसी छोटे कीड़े का तैयार हो जाना ही कहानी को पीछे मोड़ता है। क्रम संवृद्धता टूटती जाती है और प्रत्येक जीव अथवा पदार्थ भय के कारण उपरोक्त उस एक पात्र के काम को करने के लिए तैयार हो जाता है। इस कहानी से यह शिक्षा मिलती है कि किसी जीव को छोटा मत समझो। चींटी जैसा क्षुद्र जीव हाथी जैसे शक्ति सम्पन्न प्राणी को मार गिराता है। यह बात घमंडी आदमियों की व्यर्थता सिद्ध करने लिए तीखा व्यंग है।

६. चिड़िया और कौए की द्वितीय कहानी—एक चिड़िया और एक कौआ बहिन भाई बने। साझे में खेती की और सुख से रहने लगे। चिड़िया कौवे को काम करने खेत बुलाती तब वह खुद यह कहकर टाल देता कि—

आऊं अे आऊं, आमलिया गटकाऊं, दो काचा पाका तन्नै ही ल्याऊं। खेत का सारा कार्य चिड़िया कर लेती है। अन्न बंटवारे के समय मूर्ख कौआ अपने आप थोथे फूस का ढेर ले लेता है और अन्न चिड़िया को मिल जाता है।

इस में एक भोली बहिन को धोखा देने वाले नायक की हठ धर्मी का प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरी ओर सीधे आदमियों का भगवान साथी होता है, यह भी दिखाई देता है। इससे बच्चे खूब बहलते हैं।

७. हंसाने सुलाने की लघु छंद कथा— अेक तारौ। धरमी तारौ। बाड़ कुदारौ। बाड़ म्हनै कांटौ दियौ। कांटौ म्हैं चूल्है में रेड्यौ। चूल्है म्हनै बाटी दीनी। बाटी म्हैं कुमार नै दीनी।

कुमार म्हनै करवौ दीनौ। करवौ म्हैं कूवै में सेरचौ। कूवै म्हनै पांणी दीनौ। पांणी म्हैं मोरां नै पायौ। मोर म्हनै पांख दीनी। पांख म्हैं मांमै नै दीनी। मामौ म्हनै घोड़ौ दीनौ। तीन पगां सूं खोड़ौ दीनौ। ढरीक मामा ढरीक! इटियौ-चिटियौ बाई रौ, पोमचियौ भुरजाई रौ। काळौ घोड़ौ काकै रौ, फूल वछेरा बावै रा, गोरी गाय माऊ री। घी रौ लोधौ माऊ रौ, म्हे ही म्हारी माऊ रा।

यह कथा बच्चों को हंसाने या सुलाने के लिए है। इसका कलेवर बड़ा स्निग्ध तथा सन्तोषजनक है। ये सब संध्या समय कहने की बाल बातें हैं। ऐसी लघु कथाएं बच्चों के आनंद का आडम्बरहीन साधन हैं। ग्रामीण जनता में इनकी परम्पराएं सदियों से चली आ रही हैं। बालकों की पीढ़ी में ये घर किये रहती हैं। इनमें कई न्याय-प्रीति और राजा-बादशाहों की कहानियां भी होती हैं। राजस्थानी में बालकों का दिल रंजन करने वाली, हंसाने-खिलाने वाली पर्याप्त कौतूहल पूर्ण कहानियां हैं। नीचे एक नाम के फेर की कहानी लिखता हूं, जो पूर्ण क्रम संवृद्ध है।

८. **एक घोड़े के सवार की कहानी**—एक आदमी घोड़े पर चढ़कर बादशाह से मिलने जा रहा था। रास्ते में बुढ़िया ने उससे लंका की बात पूछी। उसने उसकी झोंपड़ी जलाकर लंका प्रत्यक्ष दिखादी। इसी तरह दूसरी औरत ने अपने बच्चे को चुप करने के लिए कान काटने को कहा। सवार ने कान भी काट लिए। खाजे वालों का खाजा खा गया। दोयटों वाले के दो टिक्कड़ उठा लिए। मुंह लाल करने के लिए किसी के मुंह से मुंह रगड़ लिया। गूजरी का मटका फोड़ दिया और मिये की दाढ़ी खोस ली। बनिये के तेल का घड़ा फोड़कर आगे चला। सब लोगों ने कहा— 'चाल राजा कनै'— राजा के पास गये। नाम फेर के कारण सवार के सब कसूर माफ कर दिये गये।

कहानी में बात का फेर बताया गया है। इसे सत्यश्लेष या वक्रोक्ति कहें तो कुछ अनुचित नहीं होगा। लोक साहित्य में अलौकिक बातें तो होंगी ही। उसके पात्र अद्वितीय कार्य करें तो भी कोई विस्मय नहीं है। शिवजी पार्वती की प्रार्थना पर कमंडलु से पानी छिड़ककर मृत मानव को जीवित कर देते हैं। राजकुमार सात समुद्र पार कर धन सम्पति के साथ राजकुमारी से व्याह कर लाता है। कामरूप देश की जादूगरनियां किसी प्रेमी को मेंढ़ा बनाकर पास रख लेती हैं। प्रेत महल उठा लाता है। ये सभी बेजोड़ बातें लोक साहित्य में सूर्यवत् हैं। उनमें कोई छोटे बड़े का भय नहीं रहता। सच्ची बातों में घोड़े का सवार बादशाह से तनिक नहीं घबराता है। आगे एक बुढ़िया भी राजा भोज और माघ पंडित को अपने पेचीदे प्रत्युत्तरों से छका देती है। हार मान लेने पर रास्ता बताती है।

९. **राजा भोज और एक बुढ़िया की कथा**— एक समय राजा भोज और माघ

पंडित रास्त भूल गये। गेहूं के खेत में बैठी बुढ़िया के पास जाकर बोले — रांम रांम। बुढ़िया बोली — रांम रांम मारग कठै जावैला मां सा ! मारग अठै ई रैसी वीरां, ऊपर चालणियां जासी डोकरो बोली — थे कुण हौ ? म्हे तौ राहगीर हां। राहगीर तौ दो। एक सूरज, दूजौ चांद। साच बताऔ थे कुण हो वीरां ?' म्हे हां बटाऊ – बटाऊ तो दो ! एक धन, दूजौ जोबन। सांच बोलौ थे कुण हौ ? भोज कह्यौ – म्हे तौ राजा हां माजी। डोकरी बोली — राजा तौ बेटा दो ही है – एक देव राजा, दूजौ यमराज – थे कुण हौ ? म्हे धीरजवांन। धीरजवांन ही दो है – एक धरती, दूजी धण। थे कुण हौ ? म्हे तौ साधू हां। साधू तौ दो ही है, श्रेक सनीचर, दूजौ संतोख ! थे किसा साधू हौ वनड़ां ? म्हे तौ परदेसी हां मां ! परदेसी तौ जीव अर पांन दो ही है। थे कुण हौ बेटां ? म्हे गरीब हां।–बकरी अर बेटी, गरीब तौ दो ही है ! म्हे हां चतर ! चतर अेक तौ अन्न, दूजौ पांणी, सांच बताऔ थे कुण हौ ? म्हे तौ दोनूं हार्‌योड़ा हां ! हार्‌योड़ा ही दो हुवै। श्रेक तौ लैणायत, दूजो बेटी रौ बाप ! थे कुण हौ ? जब भोज ने कहा हम माता कुछ भी नहीं हैं। डोकरी ने दोनों को सही नाम लेकर उज्जैन नगरी का रास्ता बताया।

इस कथा में अनुभवी बुढ़िया से माघ पंडित और विद्वान राजा भोज की वाक पटुता में होड़ लगी है। ऐसी कहानियों को सुनने से बच्चों की वाक् शक्ति का विकास होता है। सवाल जवावों की प्रवृत्तियां क्षुद्र जीवों में भी दिखाई देती हैं तो मनुष्यों में तो स्वाभाविक ही है। देखिये –

१०. **एक चूहे की कहानी**— एक चूहा खेलने गया। अन्य चूहों ने कहा–तुम्हारा पूंछ बड़ा है, अतः नहीं खेलायेंगे। बेचारा चूहा बढ़ई के पास से पूंछ कटवाकर आया, फिर भी उन्होंने नहीं खिलाया। तब चूहा वापिस खाती के घर गया और बोला कि मेरा पूंछ दे, का तेरा छोडा ले भाजूं। खाती ने कहा — पूंछ तो नहीं है, छोडा ले जावो। चूहा लकड़ी की छाल उठा लाया। फिर वह किसी औरत को रसोई बनाने के लिए देकर एक रोटी ले आया। रोटी एक कुम्हार को दी और वही उपरोक्त वाक्य दुहराकर एक हंडिया प्राप्त की। हंडिया के बदले में एक पाडी ली और उसके एवज में एक लड़की ले आया। फिर क्या था। चूहों से कहा — अब मैं तुम्हारे साथ खेलने की गर्ज नहीं रखता हूं। आत्माभिमान तो प्रत्येक प्राणी का स्वभाव ही है। इसका पता उनकी त्योंरियों से लगता है।

११. **एक चतुर चूहे की दूसरी कहानी** — एक चूहे ने टोपी बनवाने के लिए दुकानदार से कपड़ा मांगा। इन्कार करने पर चूहे ने कहा —

कचेड़ी ले जासूं थप्पड़ मरवासूं, नीं मांनसी तौ कैद करवा देसूं।

इस पर दूकानदार ने टोपी के लिए कपड़ा दे दिया । फिर दर्जी के पास सिल-वाने के लिए गया । दर्जी के इन्कार करने पर भी वही बात कहकर टोपी बन-वाली । उसे लेकर राजा के महल में गया, राजा ने टोपी छीनली । तब चूहे ने कहा राजा के पास तो टोपी नहीं है । राजा ने टोपी वापस देदी । चूहा अपनी चतुराई पर खुश हुआ ।

प्राणियों में कई चंचल जीव हुआ करते हैं । वे सदा इधर उधर फुदकते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । अतः ऐसी स्फूर्तिदायक कहानियां अनुपयुक्त नहीं जान पड़ती हैं । चतुराई की ऐसी कहानियां हितोपदेश में बहुत हैं । मानव भी ऐसे कार्यों में पीछे नहीं हैं ।

१२. एक पाखण्डी स्त्री की क्रम संवृद्ध कहानी — एक आदमी परदेश जाने के लिए तैयार हुआ। उसकी औरत अपने पति को बनाते हुए कहती है—मैं अकेली घर पर कैसै रहूंगी ? इस पर उसके पति ने एक चरखा खरीद दिया और कहा : साल भर कातते रहना । इसके बाद पति कमाने चला गया, औरत घर पर मौज करती रही । कातने का नाम तक नहीं लिया । साल, डेढ़ साल के बाद उसका पति लौट कर घर आया और सूत कातने का ब्यौरा मांगा । तब उसकी स्त्री ने कहा —

अेकम तौ म्हारी पैंली अेवयूं, क्यूंकर चरखौ कातूं ओ राज ।
दूज नैं, दूज तौ म्हारी भावां बीज, क्यूंकर चरखौ कातूं ओ राज ।

इस तरह से तीज, चौथ, पांचम, छठ, और अमावस्या पून्यूं तक, कातने के लिए पति पूछता गया, औरत जवाब देती गई ।

पुरुष अपनी स्त्री का ढोंग पहले ही पहचान गया था । उसकी समझी हुई बात सच हुई । वह परदेश से आकर चरखा कातने के विषय में प्रश्न पूछता है । तब स्त्री के वाक्य वाक्य में बात बनती है । राजस्थानी कथक का कहना है कि वेजै में तांणौ तणै ज्यूं पग पग माथै बात वणै — । औरतें तो शब्द शब्द में बातें बना देती हैं । उसकी बातों की धारा बड़ी सरस, स्वाभाविक तथा हृदयग्राही होती है । उनमें परम्पराओं, विश्वासों और आकांक्षाओं की चमक रहती है । इनके आरम्भ में मंगलाचरण बड़े मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं । ये मंग-लाचरण भी क्रम - संवृद्ध होते हैं । बांवली का कांटा साढ़े सोलै हाथ हो सकता है । उसमें गांव आ जाते हैं । उन गांवों में और तो कोई नहीं पर तीन कुम्हार आकर बसते हैं । इस तरह कहानी के नाटकीय प्रारम्भ से सुनने वाले आकृष्ट हो जाते हैं । और कहानी सुनने के लिए उतावली के साथ इन्तजार करने लगते हैं । ऐसे मंगलाचरण प्रायः बच्चों की कहानियों में आते हैं । कहीं गूढ़ बड़दाव भी आरम्भ में दिये जाते हैं ।

१३ — कथा का क्रम संवृद्ध मंगलाचरण

वात की वात, बात की कुरापात।
बांवळी रौ कांटौ साढ़े सोळै हाथ।
ज्यां में वस्या तीन गांव, दो ऊजड़ अेक वसै कोनीं।
ज्यां में वस्या तीन कुमार, दो मरग्या एक जीवै कोनीं।
जकां घड़ी तीन हांडी, दो खोखरी अेक बाजै कोनीं।
ज्यां में रांध्या तीन चावळ, दो काचा अेक सीज्यौ कोनीं।
ज्यां सूं नूंत्या तीन वांमण, दो वरतीला अेक जीमै कोनीं।
जकां नै दीनी तीन गायां, दो वांम अेक व्यावै कोनीं।
जकां रा वटचा तीन रिपिया, दो खोटा अेक वाजै कोनीं।
जका दिया सुनार नै, उणनै रात नै रातीनौ दिन नै सूझै कोनीं।

ये मंगलाचरण जन-पद में, कहानी के विज्ञापन का काम करते हैं। सिनेमा के [Trailer] की तरह एक लघु कथा बन जाती है। वह गद्यमय होते हुए भी पद्य का मिठास प्रदान करती हैं। मंगलाचरण की भांति उपसंहार भी पेश किये जाते हैं। कथा के पात्र सुख शांति से बस जाते हैं, तब कथक श्रोताओं को भी रसा-बसा कर देता है। कहता है —

इत्ती बात, इत्ती चींत, ना सुणी तौ कांनां आडी भींत।
गोगै रांणै घोड़ौ दीनौ, घोड़ौ हुग्यौ हुस, ग्यौ भींत में घुस।
पूरी हुई बात, गधै मारी लात, फूटगी परात।
गधै के मेरै पूंछ कोनी, सुणणियां रै मूंछ कोनीं।

सुनने वाले वालक ही तो ठहरे। मूंछ कहां से हो? मूंछ आने पर बूढ़ी दादियां न तो कहानी सुनायेंगी और न सुनने की फुर्सत ही रहेगी।

ऐसा ही एक दादी के मुंह बोला औपचारिक उपसंहार सुनिये—

ओड कहांणी, मूंगा रांणी।
मूंग पुरांणा, सुणणियां रै सासरै रा नाई वांमण सैंग कांणा।

इस पर वच्चे हंसने लग जाते हैं। दादी जान जाती है कि बच्चे सब खुश हो गये तब वह कहती है —

म्हागी कहांणी, दाय न आंणी
भर नारेळ में, पाछी लांणी

पर बच्चों को तो मब पसंद है। उन्हें कल फिर सुनना है, वापिस कैसे दें?

इन कथाओं के कहने सुनने का क्षेत्र ही अलग है। अनोखे चित्र, हृदयों को आन्दोलित करने वाली घटनायें और नाना भांति के नायक, सुख प्राप्ति के नित-नये स्रोत हैं। अन्य पदार्थों के साथ जड़ पदार्थ भी जीवित होकर दौड़ने लगते हैं। बालकों की हास्य-प्रवृत्ति इन्हीं से हरीभरी रहती है। यहां सामाजिक,

धार्मिक और काल्पनिक बाल कथाएं भी सदियों से खिलती आई हैं। बाल लोक पर इन लोक कथाओं का अच्छा अपनत्व है। बाल जन-पद पर पूर्ण ऋण हैं। ये लोगों के साथ दूर दूर तक यात्रायें भी कर लेती हैं। जहां कहीं जाकर के सम्पर्क बढ़ाकर पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लेती हैं। फिर वहीं बस जाती हैं। पर उनकी अपनी संस्कृतियों का अन्तरावलंबन कदापि नष्ट नहीं होता। मैंने उपरोक्त बाल-लोक कथाओं को बंगाली, बुन्देली, उड़िया और मालवी के लोक-साहित्य में भी रमते देखा है।

बाल गीत – खेल कथाओं के बाद बालकों के गीत आते हैं, जो स्थानीय त्योहारों में बालक बालिकाएं अलग अलग अपने ढंग से गाते हैं। दीवाली के अवसर पर बच्चे मतीरे का एक हिड्डा [दीप घर] बनाते हैं और उसमें एक दीपक जला कर अन्य घरों से तेल लाते हैं। ऐसे लड़कों द्वारा गाये जाने वाले गीतों को लोवड़ी या हरणी कहते हैं। थोड़ा नमूना देखें।

हरणी हरणी तू क्यूं दूबळी अे, चाल म्हारै देस।
काठा गवां री गूगरी रे, घोळी तिली रौ तेल ॥

लड़कियां भी गौरी पूजन के दिनों में मिट्टी के एक कलश में दीपक रखकर संध्या को अन्य घरों से पैसे प्राप्त करती हैं। इस कलश को घुड़ला कहते हैं। यह नाम ऐतिहासिक है और इसके कई गीत मिलते हैं। यहां मैं पहले घुड़ले की कुछ पंक्तियां लिखकर फिर लड़कियों के अन्य गीतों के नाम मात्र लिखूंगा और उनके बाद बालिकाओं के चार गीतोदाहरण प्रस्तुत करूंगा, सो दृष्टव्य हैं।

घुड़लौ – घुड़लौ घूमै छै जी घूमै छै
घुड़लै रै बांध्यौ सूत
घुड़लौ घूमै छै जी घूमै छै।

नाम – १ मोरिया तनें किसड़ै गढ़ रौ मारग वालौ लागै रे, धन मोरिया
२ काळी अे कोयलड़ी तूं वन में कीकर रहती अे।
३ चांद चढ़यौ गिगनार किरत्यां ढळ रई हैं जी ढळ रई हैं।
४ मनै क्यूं दीनी परदेस
५ उड-उड रै सूवा लाखीणा
६ अम्मा अे खेलणदयौ दिन चार
७ सासरियै मत मेली मोरी माय
८ म्हारा बावौसा अो राज, वारै कुण वोलै
९ नदी किनारै रूंखड़ौ
१० वनौ म्हारौ असल गिंवार, वनी म्हारी चतरसा जी, चतरसा

वना, वनी और घोड़ी आदि के कतिपय वैवाहिक गीत भी बाल गीत ही हैं। इनमें वर-वधू को किशोर किशोरी के रूप में देखा जाता है और वात्सल्य

भाव का ही आधिक्य होता है। अतएव ये गीत बाल-साहित्य से संबंधित माने जाते हैं।

कुवांरी बालिकाओं के गीत –

१. काळा पल्लां री पौमचौ, अे काळा बादळ जाय जी
ओ कुण वीरौ बाग लगावै, आ कुण सींचण आय जी
सिवजी वीरौ बाग लगावै, राजू सींचण आय जी
आ राजू चाली सासरै, म्हारौ बाग सूख्यौ जाय जी
अेकर तौ म्हारी बाई नै मेलौ, बाग सूख्यौ जाय जी
बाई आई चौवटै, म्हारौ बाग झिलोरा खाय जी

२. वीरा डागळिये चढ़ जोवूं रे, जे कोई आवै ळळकतौ
वीरा पूनम री सी चाल रे, मगनो आवै मुळकतौ
वीरा ऊभी गाळ न आई रे, कांटा भाजै केर रा
वीरा सीधी सड़कां आई रे, फूल बखेरचा बारणै
वीरा थाकौ है तौ बैठी रे, ठंडी छांय खजूर री
वीरा तिसियौ है तौ पीई रे, जळ कोरै माट कुमार रै
वीरा भूखौ है तौ जीमी रे, चावळ रांधूं ऊजळा
वीरा घी घालूं गायां रौ रे, दहीज भूरी भ्रोट रौ
वीरा वेगौ वेगौ जीमी रे, सासू नणद लड़ोकड़ी
वीरा मनै देवै गाळचां रे, तनै तीखौ ओळमौ
वीरा लाल पाड़ौसण बूझै रे, वीरौ कांईं कांईं ल्यायौ
वीरा सोळा फूलां री साड़ी रे, बारै बालां रौ घाघरौ
वीरा और कसूंमा आंगी रे, ऊपर चुड़लौ दांत रौ
वीरा जोधांणै री जोड़ी रे, ऊपर लूंबौ पाट रौ
वीरा इतरा थोक गिणाया रे, ल्यायौ न अेकज कांचळी

३. कूटूं कूटूं ऊंखळती री कोर, रंग मेंहदी राचणी रे लाल
भेऊं भेऊं वाटकड़ी रै मांय, रंग मेंहदी रांणी रे लाल
रळाऊं रळाऊं हिरण्यां रै दूध, लगाऊं लगाऊं जुगू वीरै रै हाथ
जुगू वीरौ सासरियै सिधाय, सासरियै में साळयां बूझै बात
नांनड़िया बनैई थांरा कण रंग्या हाथ
रंग्या रंग्या भंवरी बाई हाथ ?
भंवरी बाई नै चुड़लौ चिराय, रंग मेंहदी राचणी रे लाल

४. तारौ रांणी ऊग्यौ है, चांदौ रांणौ सिखर गयौ
और लोग सूत्या है, तीरथ वीरौ गांव गयौ
वीरै री बहन परदेसण है, वीरौ बाई नै ल्यावण गयौ
बाई रै हाथां पगां मेंहदी है, चुड़लौ चीरचौ नीं गयौ

३. बालकों को भुलावा-बढ़ावा—समस्त विश्व में बालकों की नींद के लिए कुछ

बहलाने वाली लोरियां और काव्य वाक्य हैं। मगर राजस्थान में ये लोरियां या काव्यपंक्तियां बड़ी मधुर एवं मनोबल देने वाली होती हैं। इनमें नीति, वीरता, दान और आश्चर्यदायक शिक्षा की बेजोड़ कला है। आदर्श ज्ञान के मंत्र हैं, जिससे बच्चों का विकास होता है। बच्चे अपनी जिन्दगी में निर्भय होकर रहते हैं। रोते हुए बालकों को चुप करने के लिए उनकी हथेली में अपनी अंगुली फेरती हुई मां सहस्वर सुनाती है—

(क) गार-गोर, पंच ढोर। भैंस ब्याई, पाडी ल्याई। दूध पीयौ, खीर पकाई। सगळै घर रा जीम्या। बावौ जीम्यौ, माऊ जीमी। भाई जीम्या, बैन जीमी। ऊबरी सूबरी भूरियै कुत्ते नैं घाली। भैंस गमगी है— ओ पग, ओ पोठौ, ओ छिगास! कण ही देखी है तौ बताया रे। आ लाधी आ लाधी बडांळै ढेर में।

हाथ से पहुंचे, पहुंचे से अकूंणी, अकूंणी से काख [बगल] के नीचे गुदगुदी करके बालकों को हंसाया जाता है। इसमें न तो नींद के लिए प्रलोभन है और न कोई देवी देवता के लिए गान। यह तो बच्चों के बहलाने का एक लाड-प्यार का जादू है। ऐसा एक वाक्य समूह बालक को पैरों पर बैठा कर हिंडाते हुए बोला जाता है। जिससे टाबर हिंडे खाते हुए हंसते हैं।

(ख) गीर-गडी रै भाई गीर गडी, सासू छोटी बहू बडी॥

टाबर से काम लेने के समय भी ऐसी एक बहलाने वाली पंक्ति है।

(ग) कींरी मां घूघरिया पैरै, कींरी मां छिछरिया पैरै।

अर्थात् किसकी माता घूघरे धारण करेगी और किसकी माता छिछरिये [फटे पुराने कपड़े] पहनेगी। काम करेगी उसकी माता घूघरे पहनेगी, नहीं तो फटे कपड़े ही पहनेगी। बालकों से कार्य करवा लेने का कैसा मनोवैज्ञानिक मंत्र है? ऐसा वात्सल्य का वाक्य समूह और देखें—

(घ) घम्मड़ बीलोवणौ खाटी छाय, मिनिया पीग्या मीठी छाय, ओमलै री सासू न्हाटी जाय।

बच्चे के दोनों हाथ पकड़ कर मट्ठा बिलोने का भाव प्रदर्शित किया जाता है। हजामत के समय का भी नमूना देखिये —

(ङ) मोडी मथरी तनै कण कतरी, बावै पकड़ी, म्हारी माऊ कतरी।

(च) मांमै रा टोगड़िया चरा लावै के? 'हां'। नार गादड़ां सूं कोनीं डरै के? 'नीं'।

आंखों पर फूंक मारकर आखें बंद करवा देना और कहना— 'डरग्यौ नीं' बाल साहित्य में ऐसे ऐसे अनेक सजीव चित्रों की झांकियां मिलती हैं।

राजस्थान में माताएं बालकों को दूध पिलाती हुई लोरियां देती हैं। अत: बालक मां के स्तनों से तो पय-पान करता है और मुंह से प्यार के मधुर वाक्य सुनता रहता है। माताएं दुलराती हुई कहती हैं —

लोरी लोरी लाल नैं, मदन गोपाल नै

गोप्यां रै कांन नै , लंका रै हड़मांन नै
आळै-भोळै स्यांम नै ; अजोध्या रै रांम नै
म्हारौ लालौ सोवै , सोनै री माळा पोवै
म्हारौ गीगो जागै , सोनै री माळा पागै
सोई रै बाळा अेक घड़ी , तनै जिमावूं सीरौ पुड़ी
सीरौ - पुड़ी सिरावण रा , दोवटिया दोक़ारै रा
लोरी लोरी लूंगां री , बाप चतर मां डूमां री
लोरी लालां लपरी , डूमां री टूटी टपरी

ऐसी विविध लोरियों का मातृ लोक में बड़ा प्रचलन है । यहां पालने में सोते हुए बच्चों को भी भक्ति, नीति तथा शक्ति शिक्षा की बहुत सी लोरियां सुनाई जाती हैं। जो सूरदासजी के वात्सल्य [बाल] साहित्य की भांति राजस्थानी बाल-लोक साहित्य की सर्वोत्तम सिद्धियां हैं । इस मातृ लोक साहित्य का बालकों के चरित्र निर्माण में बड़ा भारी योग रहता है ।

अब आपको हम बालक के पाठशालीय जीवन की प्राचीन तथा नवीन झांकी का अवलोकन करवाना चाहते हैं। जो पुराने मदरसों एवं नूतन चौक - चांदणियों के माध्यम से प्रचलित हैं। इनके वाणी विलास मानव काव्य रूपी भवन की नींव के पत्थर सादृश्य हैं ।

मानव जीवन में सदैव उल्लास का सागर लहरता रहता है। चंचल तथा नटखट बालक-मानस भी, उसकी उमंगित तरंगों में तैरने का स्वाभाविक प्रयास करता है। जीवन के पहले प्रहर में स्कूलीय वातावरण उसको बड़ा कठिन लगता है । ठीक ही है :

पूतां नै पोसाळ , सासरौ धीवड़ियां नै ।
दोरौ लागै घणौ , पैलड़ी ई घड़ियां में ।।

मासूम बालकों के लिए पाठशाला का प्राचीन व्यवहार , अनुरंजनात्म - कता से बिल्कुल विपरित था । पुराने मदरसे वास्तव में बाल भय के कारण थे । क्योंकि वे चटसालें तो 'चोटी करै चम चम , विद्या आवै घम घम' की नीति को अपनाये हुए थीं । ऐसे स्थानों में बाल संमोद-संवर्द्धन के लिए कला और सौन्दर्य की अभय-पराग का छिड़काव करना इन्हीं शताब्दियों में अनिवार्य समझा गया । फलस्वरूप गुरुओं की पाठशालाओं में चौक चांनणी नाम का बाल-पर्व मनाया जाने लगा ।

मनुष्य के अन्दर बड़ी सुन्दर कलात्मक अनुभूतियां होती हैं । वे विश्व के समस्त देशों में अपने ढंग से सृजन-शृंगार के रूप में सुवास पाती हैं। राजस्थान भी ऐसी कलानुभूतियों में पूर्ण प्रवीण है , यहां अनेक कलात्मक झांकियों के दर्शन होते हैं । इन पुरानी पाठशालाओं की ये चौक चांदणियां भी अपना विशेष महत्व

रखती हैं। शेखावाटी और बीकानेर की ओर यह उत्सव बड़े उत्साह के रूप में मनाया जाता है। लेखक ने श्री डूंगरगढ़ जैसे पड़ौसी शहर में इसे खूब देखा है। इसकी पुनीत झांकियां पौराणिक लोकोत्सव गणेश चतुर्थी [भादवा सुदी ४] के दिन से एक पक्ष पूर्व ही तैयार होने लगती है। मदरसों के महाराज [गुरु] समाज द्वारा बड़े आमोद-प्रमोद के साथ इस प्रथा को प्रोत्साहन देते हैं। यह एक कलात्मक अभिव्यक्ति है और सैकड़ों वर्षों से शहरी जीवन के साथ घुलमिल कर आनन्द का कारण बनी हुई है।

चौक चांदणी भादवा की चौथ के सप्ताह भर पहले से प्रत्येक दिन नये रूप द्वारा निकाली जाती है। इसके दैनिक जुलूस बड़े दर्शनीय होते हैं। इनका निष्कासन काष्ठ के विशेष प्रकार के गाडुलों पर होता है। पहले वासर ये दो बांसों की, दूसरे दिन चार बांसों की, तीसरे दिवस छः बांसों की और फिर उत्तरोतर वृद्धि को प्राप्त करती हुई महत्वपूर्ण सजावट के साथ निकाली जाती हैं। बांसों पर टूल [लाल वस्त्र] की किनारी और उनके ऊपरी किनारों पर ध्वजा तथा संस्था के अपने नाम वाले साइन बोर्ड लगाये जाते हैं। नगाड़े बजाते चलते जाते हैं और साथ बालक गाते रहते हैं। बड़े बच्चे प्रथम पंक्ति प्रारम्भ करते हैं, छोटे उनके पीछे गान का अनुकरण करते चलते हैं। युग्म पक्ष से डंके की बड़ी सुन्दरता के साथ भिड़ंत होती है। मुख्य त्यौहार के दिन तो ये झांकियां अत्यन्त सुन्दर चित्रों, फूलों, फहरियों, झालरों, मालाओं, त्रिद्वारिकाओं तथा पताकाओं के अनूठे शृंगार के साथ सजाई जाती हैं। इनकी सवारियों के साथ हजारों व्यक्तियों की भीड़ रहती है, जिनमें बच्चों की संख्या अधिक होती है। बच्चे नये कपड़े पहने, मेवे से भरे छोटे थैले गले में लटकाए, हाथों में रंगीन डंके लिए, उछलते-कूदते हुए अपनी अपनी चौक-चांदणी के साथ चलते हैं। कभी कभी बड़े हर्षोल्लास के साथ वे – 'चौक चांदणी भादुड़ौ, करदै भाई लाडूड़ौ' आदि बोल भी याद दिलाने हेतु गाने लग जाते है। 'लाडूड़ा में पांन सुपारी' लाडूओं के साथ पान सुपारी भी मांगते हैं।

सभी चौक चांदणियां अपने अपने सज्जकों के हाथों से सज कर नगरों की फेरियां फिरने लगती हैं। फिर अपने अपने स्थान पर मिल जाती हैं। वहां से ये गुरु-सवारियां [चौ. चा.] श्रेणीबद्ध होकर अपने आगे पीछे रक्षक साकार रूपवान परियां-प्रेत, यम, गण, रावण, हनुमांन, सेठ-सेठांणी, बन्दर, नाहर और नकलची, ढाईसेरा आदि के अनेक सुसज्जित चित्ताकर्षक मनोहर स्वांग साथ लेकर चलती हैं।

ये चौक चांदणियां महाजनी विषय को पढ़ाई कराने वाली परंपरित गुरुओं की पाठशालाओं की ओर से मान-दक्षिणा प्राप्त करने वाली परिपाटियां हैं।

इनमें पढ़ने वाले छात्रों को साथ लेकर गुरु [महाराज] लोग उनके घर जाते हैं और वहां गा-बजाकर ११ या २१ तथा ५१ तक रुपये प्राप्त करते हैं। धनी-मानियों के घर ये झांकियां सर्व प्रथम जाती हैं। वे लोग बच्चों को लड्डू आदि भी वांटते हैं। बालक यहां एक दूसरे के साभिमान तिलक करते हैं। इस मौके पर कुछ बाल गान भी होते हैं:

१. गोरी पुत्र गणेस मनाऊं, साल गिरह गणपति रा गाऊं
भादू सुदी चौथ बुधवार, जलम लियौ गणपति दातार
२. सुरसत माता नै जग जांणी, हंस चढ़ी उडावै वांणी
३. सुरसत माता भांगै भरणी, विद्या दे मां परमेस्वरणी
४. सुरसत माता तुम्हें मनाता, दे विद्या तेरा गुण गाता
५. सुरसत माता तूं जग वांणी, तेरे लखगया चौदह चार
ऊभी आऊं विद्या भार

विद्या याचना के उक्त गीतों के सिवाय कुछ वाणी विलास पंक्तियां, शिक्षा श्लोक, व्याकरण के स्वर व्यंजन और पहाड़ों के विषय में प्राचीन समय से चलते आये हैं। जैसे:

सीधो वरणो, समा मनाया।
तरतर चतरक, दही सा दो सो वाटा।
दसूं सवादा खाऊं, ददुओ नै नीस वरण।

आदि वाक्य तो प्राचीन शिक्षा प्रणाली का श्रीगणेश माना जाता था। इस पद्धति में सर्व अक्षरों की काव्यमय छटा और अलंकारयुक्त वर्ण-विन्यास पाया जाता है। जिसका नमूना प्रस्तुत है:

प्राचीन वर्णमाला

क वर्ग—	कको कोडरो	क	स्पर्श
	खखो खाजूलो	ख	
	गगा गोरी गाय अे	ग	
	घघा घाट पलांणै जाय	घ	
	रिड़ियो रांमण दूमणो	ङ	
च वर्ग—	चांम चिड़ै री चोप अे	च	
	छछचा विद्या पोटळी	छ	
	जज्जा जेवर बांणियो	ज	
	झझाजीरी सारीखी	झ	
	नन्दियो खांडो चन्दरमा	ञ	
ट वर्ग—	टैया पोळी वाटकड़ी	ट	
	ठठा ठेवर गाडूलो	ठ	

	डडा डवर गाठ अ	ड	
	ढढ़ा सूणो पूंछड़ो	ढ	
	रांणो सांणो सेवलो	ण	
त वर्ग—	तता तावै तेवली	त	
	थथियो थावर	थ	
	ददियो दीवट	द	
	धधियो धाणक	ध	
	ननियो पलाय री	न	
प वर्ग—	पपा पगली जोड़े जा	प	
	फफा फूंदो फागड़दो	फ	
	बबारी में चंनणो	ब	
	भावजी कटार मल	भ	
	मामैजी री मोटको	म	
य र ल व–	यायो जादो पेट री	य	अंतस्थ
	राई वाळो रांकलो	र	
	लला घोड़ी लात वावै	ल	
	वया वैंगण वासतै	व	
श ष स ह–	शीश खोटा मरोड़िया	श	ऊष्म
	खखा [षषा] खूंणा चौरिया	ष	
	सार सेर दंतो	स	
	हावळो हिडावळो	ह	
	लृया लातक लोपणिया	लृ	
	खिरिया खाटक मोर अे	क्ष	
	गळै घताऊं डोर अे	ज्ञ	
	माथै बांधू चोर अे		

बारह-खड़ी रा बारै कक्का —

कंवळै	–	क	कन्या	–	का
इग्यूं	–	कि	पिच्छूं	–	की
लोड़ै	–	कु	वडै	–	कू
इकमत	–	के	दूमतां	–	कै
कानां किड़मत	–	को	दो दो मातर कन्या	–	कौ
मसतक मिंडी रै	–	कंको	आगळ मिंडी रै	–	क:का

पहाड़ों के प्रश्न — किसै पाढ़ै तीनूं भाई एकसा ?

उत्तर — ३७ अेकां में तीनूं भाई अेकसा

[तियां १११, छकां २२२, नमां ३३३]

सवाल— सौ मण री लकड़ी, ऊपर बैठौ मकड़ौ।
रत्ती रत्ती खाय तौ कित्ता दिन लगाय।

पहाड़ों में काव्य की तुकें भी देखिये—

डोढ़े का पहाड़ा— अेक डोढ़ी डोढ़ी, घरां जायर पोढ़ी।
घरां आई नींद अे, बी डोढ़ा तीन अे।

ढय्यै का पहाड़ा— अेक ढायौ ढायौ, कूकड़ नें पोढ़ायौ।
कूकड़ मारी चांच अे, बी ढाया पांच अे।

बच्चों के शाला संबंधी अपने किलोल वाक्य —

सोन चीड़ी अे सोन चिड़ी, सौ सौ घोड़ा लेय पड़ी
अेक घोड़ौ अपरम्पार, बीमे बैठौ छुरी पलार
छुरी पलार रै काळी टोपी, काळा है किसनजी
गौरा है मुकनजी, डंकौ वायौ रांमजी
जीत पड़्या हड़मांनजी; हड़मानजी रै पाये लागूं
हाथ जोड़ विद्या मांगूं, अेक विद्या खोटी
गुरुजी पकड़ी चोटी, चोटी करै चम चम
विद्या आवै घम घम

स्नेहमय स्फुट काव्य—यह बाल काव्य वाक्य बड़ों की ओर से छोटों को सुनाये जाने वाले हैं। इनमें अपने प्रियजनों के लिए आशीर्वादात्मक वाक्य-विलास होते हैं। नवागत वधुएं, पीहर से आते-जाते समय, होली-दीपावली, स्नान-पूजा और शीश गुंथवाकर अपनी सासू, दादेरी सासू और जेठाणी आदि के चरण स्पर्श करती हैं। इसे राजस्थान में पगे लागणी कहते हैं। पगे लागणी के समय वे बुढ़ियां बहू की पीठ पर थापी लगाती हुई, जो शुभाशीर्वचन बोलती हैं, वे बाल साहित्य-शृंखला की सुन्दरतम कड़ियां हैं।

सीळी हो, सपूती हो। बूढ़ सुवागण हो, अमर सुवाग रहो। खीचड़ौ छड़ौ अर पूत जणौ। पीळी पाटी राज करौ। औलाद रा खूखेड़ा वसौ। क्रौड़ दिवाळी राज करौ। चूड़ौ चूनड़ी अवछळ रहौ। अमर री नार वणौ। दूधां न्हावौ, पुतरां फळौ।

बालकों के अच्छा कार्य करने पर अथवा वार-त्यौहार प्रणाम करने के समय वृद्धजनों की ओर से दिये जाने वाले आशीर्वचन वाक्य भी बड़े विमल होते हैं। वे भी देखिये :

बडौ बूढ़ौ हुवौ। आढ़ौ बूढ़ौ डोकरौ वणौ। कड़वै नीम ज्यूं वधौ। अन्न धन विलसौ अर कार में पिलसौ।

बाल्योचित सहज अभिव्यक्ति के अनुरूप स्वयं-स्फूर्त काव्यात्मक गेय पंक्तियों का सृजन 'रांम भणत' में भी हुआ करता है। राजस्थान के विभिन्न इलाकों में

विभिन्न प्रकार की भणतें गाई जाती हैं। ये भणतें मुख्यतया खेत को काटने के दौरान में प्रचलित हैं। राजस्थान के गांवों में यह रिवाज है कि सारे गांव के लोगों को खेत काटने के लिए निमंत्रित किया जाता है और उसी सामूहिक श्रम के अवसर पर भणतें गाई जातो हैं। चूंकि भणतों की रचना प्रमुखतया स्वयं-स्फूर्त होती हैं अतः उनका रचना - सौष्ठव बाल्य-सुलभता लिये हुए होती है। बीकानेर क्षेत्र में रामधनिया एवं सिवधनिया जैसे संबोधनों के साथ कुछ विशिष्ट भणतें प्रचलित हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

तन्नै क्यांरो सांसो लाग्यो छोरा, सिवधिनयां !
थारै दो दो भैंस्या दूजै छोरा, सिवधनियां !
थारै वळदां लारै गाडी छोरा, सिवधनिया !
थारै घर गायां री घीणो छोरा, सिवधनियां !
थारै सांडां ऊंटा टोळो छोरा, सिवधनियां !
तन्नै डूंगरगढ़ परणास्यूं छोरा, सिवधनियां !
थारै दो दो वहुवां लास्यूं छोरा, सिवधनियां !
तन्नै क्यांरो सांसो लाग्यो छोरा, सिवधनियां !



८

लोकानुरंजन

लोक वार्ता की समग्रता को आत्मसात करने की दृष्टि से गद्य-पद्येतर लोक कलाओं का अवलोकन करना उचित होगा। क्योंकि लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति के कलात्मक माध्यम चाहे कितने ही भिन्न क्यों न हों, उनके सृजनात्मक एवं सौन्दर्यात्मक तत्व हर प्रकार से 'एक समानता' को अवश्य ग्रहण किये रहते हैं। अत: लोक साहित्य के विवेचन के साथ ही उन लोक-कलाओं की पृष्ठभूमि देना भी आवश्यक है जो सामान्य जन की सामूहिक अभिव्यक्ति के रूप में जन्म लेती हैं और सामाजिक सौन्दर्य के मान दंडों अथवा मूल्यों को स्थापित करती हैं। किन्तु साथ ही साथ यह लोकाभिव्यक्ति मानवीय नैपुण्य और वैशिष्ट्य की ओर भी अग्रसर होने लगती है अर्थात समाज के कुछ विशिष्ट समुदाय लोक कला के सृजनात्मक तत्वों को अचेतनरूप से ही स्वीकृत करते हुए लोकाभिव्यंजना को नवीन रूप प्रदान करने लगते हैं।

सामान्यतया लोक कलाओं का उद्भव 'सामूहिक अचेतन' में होता है और समाज के सभी सदस्य सृजन की प्रक्रिया के न केवल अंग ही होते हैं अपितु उसमें सक्रिय रूप से भाग भी लेते हैं। वस्तुत: लोक कला का अस्तित्व इस तथ्य को स्वीकार करने पर ही समझ में आ सकता है कि लोक कला के साथ ही साथ एक आभिजात्य या विशिष्ट कला का भी अस्तित्व रहता है। अर्थात दो विशिष्ट कलात्मक प्रवृत्तियों के होने पर ही लोक एवं शास्त्रीय सौन्दर्यानुभूतियों का सृजन संभव है। यह स्थिति आदिम समाज में हमें प्राप्त नहीं होती। इसलिये हम आदिम समाज की कलात्मक उपलब्धि को लोक कला से पृथक करके देखते हैं।

लोक कला के क्षेत्र में इस परिवर्तित अवस्था के कारण एक नवीन डायमेन्शन उत्पन्न हो जाता है। यहां लोक कला का सृजनात्मक बिन्दु सामाजिक उद्वेग एवं सामूहिक क्रिया से हट कर एक श्रेणी या विशिष्ट समुदाय की परम्परा बन जाता है। अर्थात समाज का ही एक अंग-विशेष, पूर्ण समाज को आनंदित

या उसकी सौन्दर्य जिज्ञासा को अनुरंजित करने की दृष्टि से कला के संप्रेषण के क्षेत्र में उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में कलात्मक मनोविनोद और सौन्दर्यानुभूति के स्वतंत्र रचयिताओं का क्रम भी विकसित हो जाता है। यही कारण है कि हम लोक कलाओं के क्षेत्र में उन सब अनुभूतियों को भी मिला कर चलते हैं जो चाहे 'सर्व - सामान्य समाज' की उपलब्धि न भी हो, किन्तु जो उनकी मनोवस्था को उल्लसित करने की स्थिति में रहती हो।

राजस्थान की सामान्य जनापेक्षी कलाओं के सृजन को भलीभांति समझने के लिए लोक संगीत, लोक नृत्य एवं लोक नाट्यों पर विचार करना आवश्यक है। यह निर्विवाद सत्य है कि संगीत, नृत्य और नाटक ऐसी कलात्मक उपलब्धियां हैं जिनके लिए थोड़ा बहुत अभ्यास एक आवश्यक शर्त है अर्थात् इन कलाओं को आत्मसात करने एवं उनके माध्यम से लोकानुभूति को अभिव्यक्त करने में प्रतिभा एवं प्रयत्नसाध्य अभिरुचि का आधार आवश्यक है। लोक कलाओं के इसी पक्ष को स्वतंत्र रूप से देखने का प्रयास करते हैं तो पता चलता है कि यहां कलाकार एवं समाज दो भिन्न स्थानों पर उपस्थित हैं। अर्थात् एक मानवीय-दल, अपनी विशिष्ट योग्यता एवं परम्परा को आत्मसात किये हुए समाज के अनुरंजन हेतु किसी कलात्मक कार्य को संपन्न कर रहा है। इस कलात्मक कार्य के लिए संपूर्ण समाज एक साथ सर्जक के रूप में प्राप्त नहीं होता। अत: स्पष्ट है कि लोक कला की इन उपलब्धियों को भिन्न माप-दंड के आधार पर ही परखना पड़ेगा और उन उपलब्धियों से भिन्न करके भी देखना पड़ेगा जिनका सृजन संपूर्ण समाज अपनी विशिष्ट उद्वेगावस्था या क्रिया-कलापों में किया करता है। इसी सूक्ष्म विभेद की परिकल्पना पर लोकानुरंजन की स्थापना होती है।

राजस्थान में लोक संगीत के क्षेत्र में गायन एवं वाद्य-वादन की दृष्टि से हमें अनेक जातियों का अस्तित्व प्राप्त होता है। ये पेशेवर गायक जातियां परम्परा से लोकानुरंजन की दृष्टि से परिवारों एवं उच्च वर्ग की जातियों के पर्वो-उत्सवों को हर्षोल्लास से मनाने के लिए पहुंचती हैं। इन जातियों में हिंदू ढोली, मुसलमान ढोली, मिरासी, ढाढ़ी, लंगे, मांगणियार, जागे, कामड़, हुड़कल आदि जातियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। निश्चय है कि इन जातियों ने सामान्य लोक संगीत की विशिष्टताओं को आत्मसात करके, अपने अपने प्रकार से कुछ उन्नततम स्थिति में उन्हें अदा करना सीखा, उनमें सौन्दर्य की अभिवृद्धि की। किंतु उनका यह प्रयास उन्हें लोक संगीत की स्थिति से ऊपर नहीं ले जा सका क्योंकि हर समय उन पर इस बात का अचेतन नियंत्रण अवश्य रहा कि उनकी कलात्मक प्रक्रिया में सामान्यतम समाज के सदस्यों को अनुरंजित होना है और उन्हीं की सौन्दर्यानुभूति को जगाने का प्रयास उन्हें करना है। इन

जातियों ने उन्हीं गीतों को अंगीकार किया जो समाज में लोक विश्वास ऐतिहासिक परम्परा या क्रियात्मक अनुष्ठान से संबंधित थे और लोकानुभूति के क्षेत्र में थे। इस प्रक्रिया के कारण इन गायक जातियों ने अनेक गीतों को अपनी परंपरा में जीवित भी रख लिया।

लोक संगीत के इस लोकानुरंजन के पक्ष ने राजस्थान में संगीत वाद्यों की एक अभूतपूर्व परंपरा को भी सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की है। अनेक सुन्दरतम वाद्य आज भी विशिष्ट गायक जातियों के पास अपने सजीव रूप में संरक्षित है। लंगों की सारंगी, सुरणाइया लंगोंका मुरला, रेगिस्तान के जत्तों का सतारा, गूजरों के भोपों का जंतर, भीलों के भोपों का रावणहत्था, मांगणियारों का कामाइचा आदि ऐसे ही महत्वपूर्ण वाद्य हैं।

इसी प्रकार लोक नृत्य के क्षेत्र की स्थिति को भी दो विशिष्ट रूपों में देखना संभव है। जन-सामान्य के नृत्य एवं पेशेवर या अभिरुचि से किये जाने वाले विशिष्ट लोक नृत्य। लोकानुरंजन अथवा लोकानुष्ठान के लिए किये जाने वाले नृत्यों में अभ्यास एवं कुशलता का संयोग निश्चय रूप से रहता है। ऐसे नृत्यों में हम राजस्थान के तेरा ताळी, रण-नृत्य, पांच-पदा एवं कच्छी घोड़ी को मुख्यतया ले सकते हैं। ये नृत्य विशिष्ट जातियों द्वारा ही किये जाते हैं और इनका मुख्य प्रयोजन धार्मिक रंजन अथवा सामाजिक अनुरंजन ही रहता है।

तेरा ताळी नृत्य कामड़ नामक जाति किया करती है। इस जाति की मुख्य बस्ती राजस्थान के मारवाड़, मेवाड़ एवं बीकानेर क्षेत्र में है। इस नृत्य में कुशल महिलाओं का विशेष योगदान रहता है। एक या अधिक महिलाएं अपने बाहुओं एवं पांवों के विभिन्न स्थानों पर मंजीरों को बांध लेती हैं और दोनों हाथ में एक लंबी रस्सी से बंधे हुए मंजीरों से आघात किया करती हैं। यह नृत्य बैठकर किया जाता है। आलखती-पालखती के रूप में बैठे हुए दाहिने पांव को आगे कर दिया जाता है जिस पर नौ, दस, बारह या उससे कुछ अधिक मंजीरे एक शृंखला रूप में बांध दिये जाते हैं। इसी प्रकार कंधों के पीछे व दोनों बाहुओं पर भी दो दो मंजीरे बांध लिये जाते हैं। फिर हाथ की लंबी रस्सी पर बंधे हुए मंजीरों से लयात्मक रूप से आघात का क्रम प्रारंभ किया जाता है। बैठे हुए किये जाने वाले इस नृत्य में हाथों के संचालन के द्वारा कुछ विशिष्ट विषयों की अभिव्यंजना भी की जाती है। यथा दही बिलौने एवं मक्खन निकालने की क्रिया और धान को साफ करना आदि प्रमुख है। इस नृत्य के साथ पुरुषों द्वारा चौतारा, ढोलक व ताल का वादन किया जाता है और हरजस, वाणी, हेली और भजन जैसी चीजों को गाया जाता है।

रण नृत्य गोडवाड़ के क्षेत्र की एक विशेषता है जिसे मुख्यतया सरगरे

जाति के लोग किया करते हैं। इस नृत्य में दो व्यक्ति तलवारों के साथ युद्धात्मक क्रिया का अनुसरण करते हैं। बरगू, बांकिया, ढोल, और थाली जैसे वाद्य साथ रहते हैं। यह नृत्य पुरुषों द्वारा ही किया जाता है।

डूंगरपुर - बांसवाड़ा क्षेत्र में जोगियों द्वारा पांचपदा नामक पांच वाद्यों के साथ नृत्य करने का एक प्रकार प्रचलित है। यह जाति विवाह आदि मांगलिक उत्सवों पर नृत्य करने के लिए जाया करती है। जुलूस के साथ वाद्य बजाते और नाचते हुए जाने के लिए इन्हें विशिष्ट रूप से आमंत्रित किया जाता है। ढोलक वादक मुख्यतया नृत्य करता है। नृत्यकार ढोलक बजाते हुए अपने शरीर को संचालित करते हुए दुहरा होकर जमीन पर पड़े रूमाल और छोटे सिक्कों को अपने मुंह में उठा लेता है। पद - संचालन व वादन बराबर चलता रहता है।

राजस्थान के मध्य भाग में [विशेष कर कुचामण के निकट] कच्छी घोड़ी के नृत्य किये जाते हैं। इस नृत्य में बांसों की खपच्चियों से घोड़े का ढांचा बनाया जाता है जिसे पुरुष अपनी कमर पर पहिन लेता है। अंग संचालन द्वारा घोड़े पर बैठे सवार का आभास मिलता है। तलवारों के युद्ध का सुन्दर अभिव्यंजन इनमें होता है। दो, चार, छः या आठ की संख्या में भी घोड़ों का यह अनुकरणात्मक नृत्य किया जाता है।

इस नृत्य के अलावा जसनाथियों का अग्नि नृत्य निश्चय ही एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। जसनाथी संप्रदाय के भक्त मंत्रोच्चार से गीत व हल्की हिप्नोटिक प्रभाव वाली विलम्बित लय के नगारे वादन के साथ जलते हुए अंगारों पर नृत्य करते हैं। सुलगते हुए इन अंगारों पर चलना या नृत्य करना अवश्य ही विस्मयजनक क्रिया है। जिसे तर्क बुद्धि से समझा जाना कठिन है। किन्तु यह नृत्य होता है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

लोक नृत्यों के इन विशिष्ट प्रकारों के अलावा गैर, गींदड़, घूमर, झूमर आदि नृत्य जन सामान्य में प्रचलित हैं, लेकिन इन नृत्यों में सभी लोग भाग लेते हैं और विशिष्ट कुशलता को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती।

लोकानुरंजन की तीसरी महत्वपूर्ण कलात्मक उपलब्धि लोक नाट्य की रचना है। राजस्थान में खयाल, माच, तुर्राकलंगी, रासधारी, रामलीला, रासलीला, भवाई एवं रम्मत कुछ विशिष्ट नाट्य प्रकार हैं। इन नाट्य प्रकारों को तीन विभिन्न भेदों के रूप में देख सकते हैं। प्रथम भेद में हम खयाल, माच, तुर्राकलंगी को ले सकते हैं। इन नाट्य रूपों में विभिन्न धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों का समावेश रहता है। दूसरे भेद में रासलीला एवं रामलीला को ले सकते हैं जिनका विषय मुख्यतया कृष्ण चरित्र या राम चरित्र रहता है। तीसरे प्रकार में हम भवाई एवं रावळों की रम्मत को ले सकते

हैं। वस्तुत: भवाई एवं रावळ ऐसी जातियां हैं जो पेशेवर रूप से विशिष्ट जातियों के मनोरंजनार्थ ही नाटकों का प्रदर्शन किया करती हैं। यों भवाई स्वयं को विभिन्न जातियों से संबंधित बताते हैं और विभिन्न जातियों में ही उनके कार्यक्रम आयोजित होते हैं। यथा जाटों के भवाई अपने को जाटों की यजमानी तक ही सीमित रखते हैं। रावळ जाति चारणों के अनुरंजनार्थ ही अपनी रम्मत का आयोजन करती है। यह जाति अपने नाटकों को तभी करती है जब दर्शकों में एक न एक चारण निश्चित रूप से हो।

इन सभी नाट्य रूपों में प्रमुख बात यह है कि कथोपकथनों को गेय रूप में व्यक्त किया जाता है। संपूर्ण नाटक गीतों की भावपूर्ण कड़ियों में विभक्त होता है। इस नाट्य-अभिव्यक्ति को हम विदेशीय 'ओपरा' के समकक्ष मान सकते हैं। इन नाटकों में नगारे वादन का अन्यतम स्थान होता है और सभी पात्र अपने गायक [कथोपकथन] के पश्चात नृत्य द्वारा कला का प्रदर्शन करते हैं। अभिनय की दृष्टि से इन नाटकों में अतिशयोक्त अभिव्यक्ति ही प्रमुख होती है। शास्त्रीय एवं आधुनिक नाटकों में अभिनय को अभिनेता का ही अंश माना जाता है अर्थात् दर्शक अभिनेता में 'अभिनेता' को भूलकर उसको वास्तविक पात्र के रूप में ही समझने का प्रयास करता है। अभिनेता की सफलता इसी बात में रहती है कि वह पात्र की मानसिक, वाचिक और शारीरिक अवस्था को ज्यों का त्यों व्यक्त कर सके; किन्तु लोक नाट्यों में अभिनय का यह पक्ष अत्यंत गौण होता है। हर समय दर्शक यह धारणा लेकर बैठता है कि एक अभिनेता-विशेष, किसी का अनुकरणात्मक अभिनय कर रहा है। अपने अभिनय से दर्शकों को प्रभावित करने की दृष्टि से उसके सभी हावभाव व अंगों के संचालन में एक 'एक्सेगरेटेड' अभिव्यक्ति का आ जाना सहज है। फिर इन नाटकों में गेय-रूप की प्रमुखता भी अभिनय की शैली को परिवर्तित कर देती है। इन सभी नाट्य प्रकारों में रंगमंच की अपनी अपनी मान्यतायें हैं और उसी के अनुरूप नाट्याभिनय को अदा किया जाता है। तुर्रा-कलंगी इस दृष्टि से एक अत्यंत महत्व-पूर्ण प्रयोग है। इस नाटक में रंगमंच दो भागों में विभक्त होता है। एक भाग को जमीन से डेढ़-दो फीट ऊंचा रखा जाता है और उसके पीछे आठ नौ फीट ऊंचा एक मचान रहता है। इस प्रकार दो मंजिल के रंगमंच का आभास हमें प्राप्त होता है। दूसरी ओर रावळों की रम्मत में मंच के लिए ऊंची सतह का प्रयोग ही नहीं किया जाता। सामान्य भूमि को ही मंच स्थल के रूप में बरता जाता है और दर्शक मंच के चारों ओर बैठते हैं।

नाट्याभिनय की अनुरंजनात्मक कला में भांड जाति का वर्णन भी महत्वपूर्ण है। यह जाति विभिन्न स्वांग को लाने में सिद्धहस्त होती है। वेश के धारण और

वेष के अनुकूल ही व्यवहार करने के कारण अनेक बार यह अत्यंत मुश्किल हो जाता है कि उसकी भांडाई को समझा जा सके। यह जाति अपने अभिनय की सफलता के लिए विभिन्न जातियों के आचार व्यवहार भाषात्मक लोच और शारीरिक स्वभावों का अत्यंत सहजतम रूप में अनुकरण किया करती है। साथ ही साथ भांड विभिन्न कार्यों की नकल करने में भी कुशल होते हैं। भांडों के स्वांग एवं नकल में एक पात्राभिनय ही मुख्य होता है।

नाट्य कला की इन लोकानुरंजनात्मक प्रवृत्तियों के साथ राजस्थान की कठपुतली कला को भी समझना समुचित होगा। कठपुतली के खेल 'भाट' नाम से संबोधित एक जाति विशेष करती है। यह जाति भी मारवाड़ के कुचामण क्षेत्र के आसपास बसी हुई है। यह लोग लकड़ी को छीलकर सुन्दर मुखाकृतियों का निर्माण करते हैं। यह मुखाकृति केवल गले तक निर्मित होती है और उसके बाद कठपुतली को पूर्ण झग्गे की वेशभूषा से अलंकृत कर दिया जाता है। अंगों की मांसलता के लिए रूई या कपड़ों के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है। हाथों को भी रूई से निर्मित किया जाता है। इन कठपुतलियों में पांवों का निर्माण नहीं किया जाता। कठपुतली के अभिनय की आवश्यकतानुसार उस पर धागों को बांधा जाता है। मुख्यतया धागे गर्दन के पीछे, सिर के ऊपर एवं दोनों हाथों पर बांधे जाते है। इन चार धागों से शरीर के मुख्य संचालनों को संभाला जाता है। लेकिन जिन विशिष्ट पुतलियों को अन्य संचालनों की जरूरत होती है तो उसकी आवश्यकता के अनुसार धागों को बांधा जाता है। यथा नर्तकी एक ऐसी ही पुतली है जिसकी ग्रीवा के निर्माण एवं धागों के बंधाव में अन्तर होगा। इसी प्रकार गेंद उछालने वाली पुतली में भी यही अन्तर दृष्टिगत होगा। कठपुतली की नाट्य कला में धागों की संचालन क्रिया ही मुख्य समस्या समझनी चाहिये क्योंकि उन्हीं के माध्यम से भावाभिव्यंजना का रूप निखरता है।

राजस्थान में कठपुतली के द्वारा मुख्यतया राव अमर सिंह राठौड़ का खेल ही दिखाया जाता है जो एक ऐतिहासिक पात्र एवं घटना पर आधारित है। अन्य किसी खेल के नहीं होने के कारण यह अंदाज लगाना ऐतिहासिक खोज का विषय है कि इसके पूर्व कठपुतली के खेल का रूप क्या था? अमर सिंह औरंगजेब का समकालीन है, अर्थात् निकट ऐतिहासिक काल तक ही यह कला पहुंच पाती है। भाटों की किंवदंती के अनुसार यह जानने को मिलता है कि मुगल दरबार में कागज की कुट्टी से बनी पुतलियों के खेल होते थे और एक बार भाटों व मुगल कठपुतली का खेल करने वालों के बीच यह शर्त रही कि जिसकी पुतली रात्रि भर कुए के जल में जीवित रह जायेगी, वही कठपुतली के खेल को अदा कर सकेगा। इस शर्त के पीछे एक विश्वास था कि कठपुतली अपने खेल

में एक सजीव एवं प्राणवान निष्ठा है और वह पानी में गल नहीं सकती। किन्तु वास्तविकता के समक्ष विश्वास को पराजित होना पड़ा और कागज की कुट्टी की पुतलियां पानी में विलीन हो गईं और भाटों को लकड़ी की पुतली ज्यों की त्यों बनी रही। उसके पश्चात भाटों के पास ही यह कला रह सकी। अपनी कला को उन्नत बनाने की दृष्टि से उन्होंने मुगल कलाकारों को अपना गुरु भी स्वीकार किया और वंशानुपरम्परा से उनके परिवार को आज भी राजस्थान की कठपुतली वाले कमाई का कुछ अंश भेंट करते हैं।

कठपुतली का नाट्याभिनय मनुष्य के कार्य कलापों के अनुकरण पर निर्भर है। और कला की दृष्टि से अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है। छोटी सी कठपुतली में मानवीय आकार - प्रकार एवं उसके यांत्रिक संचलन में शारीरिक क्रियाओं के आरोपण को दर्शक अपने मन की आंखों अथवा कल्पना से पूर्ण करके देखने का प्रयास करता है। दर्शक की कल्पना के सम्मिश्रण एवं सहानुभूति के कारण पुतली में लालित्य और सांकेतिकता का प्रभाव अत्यधिक परिपुष्ट हो जाता है।

लोकानुरंजन के क्षेत्र में राजस्थान के नटों एवं मदारियों का स्मरण करना भी अनिवार्य है। नट मुख्यतया शारीरिक दृष्टि से अत्यंत विकट एवं विस्मयपूर्ण खेलों के द्वारा समाज का मनोरंजन करते हैं। नटों के खेलों में पुरुष एवं स्त्री दोनों ही भाग लेते हैं। अभी तक राजस्थान में नट जाति के लोग एक स्थान पर या गांव के रूप में बसे नहीं हैं। अपने परिवार एवं डेरों के साथ निरन्तर घूमते रहते हैं। नटों के प्रसिद्ध खेलों में रस्सी पर चलना, ऊंचे व लंबे बांस पर विभिन्न प्रकार की कलाबाजियां दिखाना, झूले के खेल, एवं भूमि पर उछाल आदि दिखाना है। नटों के समान ही एक ' बादो ' नामक जाति और भी होती है जो मुख्यतया ऊंची व लंबी कुदानों में माहिर होते हैं। इन जातियों में भी यजमानी का क्रम चलता है। मदारी अपने खेल पालतू पशुओं के माध्यम से करते हैं। मुख्य रूप से बन्दर व भालू इनके प्रिय जानवर हैं। इसी क्रम में ग्रामीण जादूगरों के दल को भी लिया जा सकता है। किन्तु इनकी पृथक कोई जाति नहीं होती। नट, मदारी, जोगी एवं अन्य खेल दिखाने वाली जातियां ही उनका प्रयोग किया करती हैं।

लोकानुरंजन संबंधी लोक कलाओं में चित्रों एवं मूर्तियों का भी अन्यतम स्थान है। चित्र कलात्मक उपलब्धियों में मुख्यतया हाथ पर मेंहदी से चित्रित पेटर्न्स, दीवारों पर विभिन्न आकृतियां एवं आंगन पर मांडणे महत्वपूर्ण हैं। चित्र कला के ये रूप जन सामान्य महिलाओं की कलात्मक ख्याति है। और अपने सृजनात्मक तत्व में सामूहिकता का भाव बोध लिए हुए होती हैं। किन्तु रेखा

व रंगों के इसी क्रम में एक विशिष्ट जाति ने लोक चित्र कला की परम्परा को भी विशिष्ट रूप प्रदान किया है। राजस्थान में यह जाति 'चितारों' के नाम से जानी जाती है। धार्मिक अनुष्ठानों एवं उत्सव के अवसरों पर ये चित्रकार विभिन्न चित्र दीवारों या कागजों पर बनाया करते हैं। दीवारों पर बने चित्रों में हाथी, घोड़ा, वनस्पति एवं अन्य ज्यामितिक पेटर्न्स हुआ करते हैं। फ्लेट रंगों का उपयोग करना इनका एक अत्यंत मनोहर प्रकार है। इसी क्रम में पट [वस्त्र] को चित्रित करने की पद्धति भी इसी जाति में प्राप्त होती है। शाहपुरा [भीलवाड़े के निकट] में देवनारायण एवं पाबूजी की पड़ का चित्रण किया जाता है। वीस - पच्चीस फुट लंबे एवं ढाई फीट चौड़े पट पर उपरोक्त दोनों कथाओं की विभिन्न घटनाओं को अंकित किया जाता है। चित्रों की रेखांकन पद्धति में यथार्थ के स्थान पर एक विशेष अनुपातिक विरूपात्मकता होती है। और सभी चित्रों का संतुलन संपूर्ण पट - चित्र की एकता में प्राप्त होता है। लाल, हरा, पीला, काला, कत्थई, एवं नीला रंग प्रयुक्त किया जाता है। सभी रंग विभिन्न रंगीन मिट्टियों से प्राप्त होते हैं। नीले रंग के लिए देशी नील को काम में लेते हैं। फ्लेट रंगों का ही प्रयोग होता है।

इन पट-चित्रों को देवनारायण एवं पाबूजी के भोपे अपनी लोक गाथा को गाते समय उपयोग में लेते हैं। इन वृहद लोक गाथाओं का गेय एवं वादन पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अन्यत्र लिखा जा चुका है कि देवनारायण [अथवा बगड़ावत] की पड़ के साथ जंतर नामक वाद्य एवं पाबूजी की पड़ के साथ रावण हत्था जैसा वाद्य काम में आता है। इन पट चित्रों के अलावा रामचरित एवं माताजी की पड़ें भी प्रचलित हैं किन्तु इनके साथ लोक गाथाओं का प्रचलन नहीं हैं।

विषय की दृष्टि से मूर्तियों के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम मूर्तियां तो लोक देवी देवता की प्रतीकात्मक आकृतियों सहित प्राप्त होती हैं एवं दूसरी मूर्तियां बालकों के खिलौनों अथवा गृह सज्जा के रूप में प्राप्त होती हैं। मूर्तियों के निर्माण के लिए मिट्टी, विभिन्न धातु, पाषाण, लकड़ी एवं वस्त्र आदि का प्रयोग किया जाता है। यह सभी कलात्मक कार्य भी विशिष्ट जातियां संपन्न करती हैं और समाज के सामान्यजन उन्हें अपने विश्वास अथवा रंजन के लिए प्रयोग में लाते हैं। इन सभी लोक कलात्मक वस्तुओं के विस्तृत अध्ययन से लोक साहित्य को समझने में निश्चय ही बहुत मदद मिलती है। मुख्यतया लोक कला के सृजनात्मक पक्ष की गहराई में जाने के लिए तो यह प्रयत्न निश्चय ही नये मानदंड एवं मूल्यों पर विचार करने के लिए विवश कर देते हैं।

१

लोक प्रचलित कुछ तथ्य

राजस्थान के जन जीवन में प्रसिद्धि प्राप्त संत, महापुरुष, वीर, शक्तियां एवं सतियों के विषय में कुछ सूचनायें अत्यंत आवश्यक हैं। इसलिये विहंगम दृष्टि से इन विषयों पर एक चर्चा यहां प्रस्तुत की जा रही है। इस चर्चा का मुख्य आधार प्रचलित विश्वास एवं जनश्रुतियां ही हैं। किन्तु इनके अभाव में लोक जीवन की सर्वांगीणता को समझ पाना संभवतया अत्यंत कठिन कार्य है।

राजस्थान के सिद्ध पुरुष नाथ एवं संत — शिव को आदि नाथ कहा जाता है। इसलिए कि वे नाथ पंथ के प्रथम प्रवर्तक हैं। मत्स्येन्द्र [मछेन्द्र] और गौरक्षक [गोरख] भी इनकी शिष्य परंपरा में हुए हैं। गोरख मत्स्येन्द्र नाथ के मुख्य शिष्य थे। इन्हीं [गोरख] के प्रभाव से भारत में नाथ पंथ का आविर्भाव हुआ है। इस मत की लोक महिमा बड़ी प्रचलित है। इनके अनेक आसन और तकिये [स्थान] आज भी अपनी चमत्कारिक आबादी के चिन्ह हैं। इनमें [नाथों में] शिव और गोरख को गुरु मानकर जोगी लोग भी सम्मिलित हैं, जो यहां बड़े आदरणीय समझे जाते हैं।

गोरखनाथ के जीवन संबंधी कई धारणाएं चलती हैं। उनमें अनेक लोक कथाएं उनके वरदान की भी प्रचलित हैं। जैसे—राजा भरथरी को जोग देना, पूर्ण भक्त के कटे शरीर के टुकड़ों को कुए से निकालकर जीवित करना। पाबूजी की मृत्यु के बाद उनके भतीजे झरड़ा को अपनी शिष्य परंपरा में लेकर उनके बडेरों के बैरी जिंदराज खिच्ची के बाबत बदले में मरवाना आदि आदि वरदान प्रसिद्ध हैं। गोगा और सुलतान भी गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में माने जाते हैं। कबीर पर तो गुरु गोरख की पूर्ण कृपा ही रही है। गोरखनाथ के इन्हीं अमर चमत्कारों से साधारण जनता सदैव प्रेरणा प्राप्त करती आई है। राज - स्थान में इनके नाम से अनगिनत पद गाये जाते हैं।

गोरखनाथ की ऐसी समर्थपूर्ण कहानियों से संत चरित्र की महत्ता प्रकट

होती है। इनके पीछे जलंदरनाथ, कन्हीपाव, चोरंगीनाथ, बालनाथ, दूंध-लीमाळ, गरीवनाथ आदि नाथों की बातें भी बड़ी रुचिकर हैं। भरथरी और गोपीचंद की यौगिक कथाएं तो जोगी लोग हमारे प्रान्त में घर घर घूमकर सुनाते हैं। यहां नाथ और सिद्ध संप्रदाय की तरह रामस्नेही और दादूपंथी आदि साधुओं के भी कई संप्रदाय स्थापित हैं।

गोरखनाथ ने जिन लोगों को अपने दर्शन दिये उन शिष्यों में यहां जसनाथ नाम के सिद्धाचार्य यौगिक चमत्कारों में बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने जसनाथी नाम पर अपना एक अलग संप्रदाय चलाया है। राजस्थान में जसनाथ जी की वहुत सी गद्दियां और बाड़ियां स्थापित हैं। उनमें कतरियासर बमलू, मालासर, लिखमादेसर, पारेवड़ो, साधासर, कालड़ी, हंसेरा, पूनरासर, छाजूसर आदि वहुत मशहूर हैं। इन्ही गोरखनाथ के दर्शन पाकर जांभोजी नाम के एक सिद्ध पुरुष ने विश्नोई संप्रदाय की स्थापना की है। गोरखनाथजी के उपदेश से प्रभावित होकर एक कुख्यात डाकू भी साधू बन गया और और उसने अपना निरंजनी नाम का पंथ चलाया है। जनता में इन सभी संप्रदायों के संतों की अलौकिक वातें मिलती हैं। जसनाथजी और जांभोजी के चमत्कारिक कार्यों की खोज श्री सूर्यशंकर पारीक ने की है। ये वाणियां और भजन अपनी लोक भाषा [राजस्थानी] में निर्मित होने के कारण सर्व साधारण के लिए समझने योग्य होती हैं। निश्चय ही कुछ निर्गुण पद और उलटबांसियां नाथ पंथी हैं ये पद गूढ़ भावाभिव्यक्ति के लिए हैं, जो वाचक, गायक और श्रोताओं के लिए सरल नहीं कहे जा सकते।

सम्मानीय वीर – लोक वीरों की बातें जन-साधारण में बहुत प्रेरणादायक होती हैं। इन लोक-कथाओं में कर्तव्य पालन, प्रतिज्ञा पालन, आत्म त्याग, उदारता, सत-परायणता, स्वामी-भक्ति और शौर्य-वीर्य आदि गुणों की ज्योति जगमगाती है। कुछ लोक वीरों के चरित्रों में जन-सामान्य प्रकाशित जगदेव-पंवार की अद्वितीय दानवीरता को लेते हैं। इस लोक वीर के विशद वृत्त ने अनेक लोगों को दृढ़ प्रतिज्ञ एवं सत्य साहस का पुनीत पाठ पढ़ाया है। ऐसा एक सुलतान नाम का राजकुमार भी अपने सत्य पर निश्चल खड़ा रहा सुना जाता है। इस पर असंख्य विपत्तियों के पहाड़ टूटे पर इस धीर वीर ने अपने सत्य को नहीं छोड़ा। लोक सामान्य में इसकी बातें वड़े उत्साह के साथ सुनी सुनाई जाती हैं। जोगी जाति के लोग सुलतान के चरित्र के साथ उनकी धर्म पत्नी निहालदे के काव्य गीत गाकर उनकी पूर्ण जीवन कथा प्रकट करते हैं। इस तरह से लोक प्रशंसित व्यक्तियों में तेजा धोळा [सांपों के देवता] का नाम भी बड़ा मशहूर है। उनकी कथा इस प्रकार है – तेजा धोळा [जाट] अपनी मां की आज्ञा से खेत जोतने गया।

उसकी भौजाई भाता [छाक] लेकर देर से खेत पहुंची। इस पर तेजा ने देरी की शिकायत की। तब भौजाई ने तेजा को ताना दिया कि तुम अपनी औरत से भाता जल्दी क्यों नहीं मंगवा लेते, जो अपने बाप के घर उक्त कार्य कर रही है। इस बात पर तेजा हल छोड़कर अपनी स्त्री को लिवाने ससुराल पनेर [किशनगढ़] पहुंचा। वहां उसकी सास ने उसे न पहचानकर अपने घर में नहीं घुसने दिया। तब तेजा वहां के बाग में जाकर ठहर गया। मालूम पड़ने पर तेजा को ससुराल वालों ने घर आने के लिए बहुत मनाया। मगर वह स्वाभिमानी व्यक्ति हरगिज नहीं माना। उस समय डाकू वहां की गायों को चुराकर ले जा रहे थे। तेजाजी ने बड़ी वीरता के साथ डाकुओं से लड़ाई लड़कर गायें छुड़ाई। पर इस युद्ध में उसके शरीर पर इतने घाव लगे कि कहीं भी खाली स्थान नहीं बच रहा। इस हालत में एक सर्प ने उसकी जीभ पर काट खाया और उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई। स्त्री उसके पीछे सती हो गई। उसी परंपरा में आज तक धोले जाटों की औरतें पति मरने के बाद नाता [पुनर्विवाह] नहीं करती हैं। ये गांव खड़-नाळ [नागौर] के निवासी थे। हल चलाते समय आज भी हाळी कृषक तेजा-नामक लोक गीत को बड़ी मधुर ध्वनि से गाते हैं। गीत बड़ा विस्तृत एवं कारुणिक है। तेजा की मां कहती है —

आज धोरां में घररायौ रे कंवर तेजाजी
भूरौड़ा वादळ में चिमकै बीजळी
आळस निवारौ रे वेटा जाट रा
थारै रे साइणा खेतां बावड़िया
साथीड़ां री वायौड़ी रे जुवार कंवर तेजाजी
थारौड़ा बायौड़ा मोती नीपजै

इन लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त वीरों में अमरसिंह राठौड़, वीर तोगा और वीरांगनाओं में पद्मावती, हाडी रानी और भटियांणीजी आदि सिरमौड़ हैं। डूंगजी-जवारजी, बलजी-भूरजी, खाटू के श्यामजी का नाम भी अग्रणी गिना जाता है। दूसरे प्रकार के लोक सम्माननीय व्यक्ति वे हैं, जो अपने अनुपोत्तम चरित्र के कारण देव रूप में पूजे जाते हैं। ऐसे लोक मान्य देवताओं में नागा [ताखाजी], गूजरों के देवजी और उनके साथी माकड़जी मारवाड़ में अत्यधिक प्रतिष्ठित हैं। देवजी के मंदिरों में उनके भोपे भरपूर गुण-गान करते हैं। देवजी का ऐतिहासिक वृतान्त उनके बगड़ावत नामक जन-काव्य में मिलता है। चितौड़ की तरफ ये देवनारायण के रूप में वरदान सिद्ध माने जाते हैं। आजकल शेखावाटी में मालासी और राजस्थान में हरिरामजी भी ऐसी लोक प्रसिद्धि के लिए संकड़ देवता के रूप में प्रकटे हैं। खुड़द में [जोधपुर] इन्द्र बाई की

मान्यता है ।

राजस्थान में इन लोक देवताओं को किसी पौराणिक व्यक्तित्व की तुलना में अवतार तक मान लिया जाता है । भारतीय जनता को प्रवृति के अनुसार हम जिन लोगों में विशिष्ट गुण देखते हैं तो पौराणिक उपाख्यानों के आधार पर उनके पूर्व जन्म की कहानी तैयार कर लेते हैं । उदाहरणार्थ पाबूजी राठौड़ को यहां लक्ष्मण का अवतार माना जाता है । श्री कृष्ण के भाई बलराम और गोगाजी चौहान यहां दोनों शेषावतारी कहलाते हैं । पूर्वी राजस्थान में 'मावजी' नाम के लोक-देवता विष्णु कल्कि अवतार और श्री रामदेवजी तंवर श्री कृष्ण के अवतार प्रसिद्ध हुए हैं । लोक मान्यताओं में रामदेवजी तंवर यहां चमत्कारिक और वरदायक देवताओं में रामशाह बाबा के नाम से सर्वत्र विख्यात हैं । ये कोढ़ियों के कलंक [दोष] झाड़ने वाले देव कहलाते हैं । लूलों को पैर और अन्धों को आंखें इन्ही के द्वारा पुनः प्राप्त होती हैं, ऐसी लोक प्रचलित धारणाएं हैं । गांव गांव में इनके मंदिर और देवरे बने हुए हैं, जिन्हे रामदेवरा कहते हैं। रुणेचा में इनका मुख्य धाम [स्थान] है । इनकी असंख्य गीतादि हरियश और वाणियां हैं । ये पंच पीरों में प्रमुख स्याण [त्राण] करता माने जाते हैं। वस्तुतः मुसलमानी प्रभाव से प्राचीन पंच वीर शब्द का ही रूप बदलकर पंच पीर हो गया । वैश्रवण, मणिभद्र, पूर्णभद्र आदि अनेक यक्ष प्राचीन काल में प्रसिद्ध थे । स्वाभाविक है कि उस समय जो बहुत से यक्षों की मान्यता थी, उसमें कुछ प्रधान रूप से उतर आये हों और इसी आधार से [पंच वीर] यह शब्द लोक में प्रचलित हुआ हो । लोक में जो पंच पीरों या पांच यक्षों की पूजा प्रचलित थी, उसी के ढंग पर वृष्णियों के भी पांच नायक वीरों को चुनकर 'वृष्णी पंचवीर' यह संज्ञा दी गई है । इनमें ऊंटादि पशुओं के संरक्षक देवता पाबू पीर सर्व प्रथम माने जाते हैं । गांव कोलूगढ़ [फलौदी] में पाबूजी का प्रथम मंदिर है । बीकानेर क्षेत्र के ग्राम राजपुरा में इनके भोपे हैं । पवाड़ों तथा पड़ों में पाबूजी का पूर्ण जीवन चित्रित होता है । पाबूजी और रामदेवजी के जागरण में चूरमे के पींडे [लड्डू] बांटे जाते हैं, जो पीरों के लिए अपना चढ़ावा है ।

हड़बूजी सांखला [राजपूत] वीर मेहाजी सांखला [पंवार] के पुत्र थे । युद्ध व्यापार से विरक्त होकर श्री रामदेवजी के गुरु बालानाथजी की शरण में आ गये थे और जीवित समाधिस्थ होकर लोक पूजित हो गये । मेहाजी [मेघराजजी सांखला] का जन्म उनकी ननिहाल में [मांगलिया राजपूतों के यहां] हुआ था । वहीं वे बड़े हुए थे । उनके देव पद पाने का कारण युद्ध-स्थल में जूझ कर मरने का है । इससे पहले इन्होंने अपने वैरियों से अत्यन्त वीरता के साथ बदला लिया था । इन्हीं वीरोचित कार्यो के लिए ये पीर माने गये ।

राजस्थान में गोगाजी चौहान की धोक-पूज नाग की प्रतिकृति के रूप में होती है। सर्प गोगाजी के वंश-वर्ती माने गये हैं। और इसी कारण उनको अत्यधिक लोक-मान्यता प्राप्त है। मुसलमान लोग इनको संत गूगा या जाहिरपीर के नाम से पुकारते हैं। बीकानेर क्षेत्र में भादरा नामक गांव के निकट गोगानवमी [भाद्रपद नवमी] को गोगामेढ़ी ग्राम में महीने भर के लिए बड़ा मेला लगता है। ऐसा ही एक मेला गोगाजी के जन्म स्थान गांव ददरेवा में भी लगता है। अन्य स्थानों पर उक्त तिथि को सारे नगरों एवं गांवों में गोगाजी एक घुड़सवार सैनिक के रूप में भारी भीड़ द्वारा पूजे जाते हैं। इस पर्व पर इनका भोग [प्रसाद] खीर, पूड़ी और चढ़ावा नारियल और पतासों का होता है। किसान लोग अपने विश्वास के अनुसार सर्पादि जहरीले जानवरों से रक्षित रहने के लिए हाथों पर गोगा राखी [लाल सफेद मिश्रित सूत का डोरा] बांधते है। और इनसे संबंधित लोकगीत गाते हैं। गोगाजी के जन्म, विवाह, युद्ध एवं मृत्यु के विषय में कई जनकाव्य गाये जाते हैं। जिनमें गोगाजी के चमत्कारिक कार्यों का वर्णन हुआ है। ये राजस्थानी इतिहास के लोकमान्य रत्न माने जाते हैं। भारत में राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि में गोगाजी की पूजा विभिन्न वर्गों के लोगों के द्वारा की जाती है।

गोगाजी ने भी पाबूजी और तेजाजी की भांति बैरियों से युद्ध करके गायें छुड़ाई थी। इस युद्ध में अर्जन-सर्जन नाम के दो वीर इनके हाथों से रणखेत रह गये। ये दोनों इनकी मौसी के पुत्र थे। अतः इनकी माता बड़ी नाराज हुई। मां की नाराजगी का इनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। और ये गोरख नाथ के अनुयायी बन गये। नोहर के निकट मेड़ी में इन्होंने जीवित समाधि लेली।

वीर गोगाजी को सामान्य लोग सर्पों का अधिपति मानते हैं। राजस्थान में नागदेवता के रूप में वभूता सिद्ध, केसरिया कंवर, गोगा पीर और तेजाजी धोळिया क्रम से भाद्रपद कृष्ण सप्तमी, अष्ठमी, नवमी एवं दशमी को घर घर पूजे जाते हैं। तेजाजी का प्रसिद्ध मेला परबतसर में भरता है।

सापों की दृष्टि से राजस्थान का भादवा मास [वर्षा-केन्द्र] बड़ा भयंकर होता है। इसमें सर्पदंशनों की बड़ी बहुतायत रहती है। इन्हीं दिनों किसानों के हाथ कृषि कार्य में संलग्न होते हैं। सारे जहरीले जन्तुओं से बचने के लिए सभी सर्प देवताओं को इसी कार्याधिक काल [वर्षा ऋतु] में पूजा होती है।

शक्तिमाताएं एवं सतियां – वैसे तो सारे राजस्थान में ही सती माताओं की पुनीत स्मृतियां अंकित हैं। नगर नगर में और ग्राम ग्राम में इनकी देवलियां, मढ़ और मन्दिर बने हुए हैं। सतियों को शक्ति रूप मान कर पूजा जाता है।

राजस्थान में शक्ति को देवी, भवानी, दुर्गा, काली, भगवती, जोगमाया, चंडी, माता आदि नामों से संबोधित किया जाता है। प्रत्येक शुक्ल पक्ष में लोग अपने घरों में माता के लिए घृत-दीप प्रज्वलित करके मातृजोत (लौ) करवाते हैं। अष्टमी और नवमी के रोज दूजते पशुधन वाले लोग खीर-पूड़ी और दूसरे लोग लपसी हलवे का भोग लगाते हैं। सिन्दूर से चित्रित त्रिशूल की पूजा होती है। चैत्र और आसोज में जात [यात्रा] गीत, झडूले, रातीजगे और कड़ाई आदि के आयोजन होते हैं। शक्ति पूजा में भैरव पूजा का भी संयोग होता है। बीकानेर में तोलियासर, लखासर और कोडमदेसर के भैरूं प्रसिद्ध हैं। शेखावाटी में हर्ष [सीकर] का भैरव विख्यात है।

राजस्थान की सात माताएं विशेष प्रसिद्ध है। इनमें दुर्गा, काली, ब्रह्माणी, बायांजी, मावड़ियांजी, महाराण्यां, नागणेचाजी आदि हैं। सचिया माता, शीतला माता हमारे यहां अलग से लोक द्वारा पूजित हैं। सेढ़ल माता [शीतला] बाघोर और नोखा; बायांजी शेरुणा और बायलां; करणीजी, नेड़ीजी देशनोक; नागणेचाजी बीकानेर; दुर्गा, काली पल्लू और कालू तथा सचिया माता ओसियां की प्रसिद्ध है। ये खेड़ा [ग्राम] की धिरांणी कहलाती हैं।

बायांजी ऊजली और सांवळी दो हैं। इनका पालणा [विमान] आकाश मार्ग द्वारा चलता है। किसी प्राणी के ऊपर से होता निकल जाय तो वह लंगड़ा हो जाय, ऐसी धारणा है। लूले बच्चों के लिए कहा जाता है– 'बायांजी बैगी'। इनके अलावा यहां कुछ माताओं के स्थानीय नाम भी प्रचलित हैं। जैसे जमवाय माता, जीण माता, नाग पोचिया, सकरांयत माता, खीमेल माता, शिलादेवी आदि नाम बहुत से नगरों और ग्रामों में धोकपूज के धाम हैं।

राजस्थान में शक्ति की पूजा स्त्रियों द्वारा भी की जाती है। होलिका माता, गौरजा [पार्वती माता], हरियाली तीज, कजली तीज, चौथ माता, गाजमाता, होईमाता, सांपदामाता, पथवारी माता, संध्यामाता, जलवामाता आदि के पूजन व्रत बड़ी श्रद्धा के साथ मनाती हैं। यहां स्त्रियों द्वारा जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत शक्ति की मातृ रूप में पूजा चलती है। बालक के जन्म के छठे रोज बेमाता की पूजा होती है। उस समय तो दाई को भी माई कहा जाता है। मनुष्य की मृत्यु के समय पंथवारी पूजन का विधान होता है। प्राणी की अस्थियां गंगा माता के प्रवाह में विसर्जित की जाती हैं। राजस्थान में धरती माता, नदी माता, तुलसी माता, गौ माता, आदि माताएं भी पूज्य हैं।

लोक माता आईजी – राजपूत कुल में जन्म धारण करने वाली अनेक देवियां शक्ति रूप में पूजी जाती हैं। उदाहरणार्थ पन्द्रहवीं शताब्दी में गुजरात प्रांत के एक राजपूत घराने में जोजी नाम की बालिका उत्पन्न हुई थी। बचपन में यह

अम्बा की बड़ी भक्त रही और आगे चलकर इन्होंने मारवाड़ [बिलाड़ा] में अपना निवास स्थान स्थापित कर लिया था। गुजरात से आने के कारण यहां इनका नाम आईजी रह गया। आईजी ने यहां आकर अपना अलग मत [पंथ] चलाया। इस पंथ में दूर दूर के लोगों ने आकर शिक्षा ली। राजस्थान में आई पंथ का साहित्य भी जनजन में प्रचलित है। आईजी को नव दुर्गा का अवतार मान कर पूजते हैं।

चारणी शक्तियां —पश्चिमी भारत में चारण नाम की एक देव जाति कट्टर शक्ति पूजक है। इनका रहनसहन और आचार-व्यवहार राजपूतों जैसा है। इस कुल में भी अनेक शक्तियां अवतरित हुई हैं। इनके चौरासी अवतार माने जाते हैं। जिनके कुछ नाम – बांकल, आवड़, बरवड़, महमाह, चाहणदे, कामळ, चाळकराय, करणी आदि हैं। इनकी पौराणिक देवी हिंगुलाज की बड़ी लोक-मान्यता है। चारण वंश में जन्मी हुई उक्त देवियों का जागृत-जीवन आदर्श महत्ता एवं चमत्कारिक चरित्र के साथ प्रकाशित हुआ है। इसीलिए यह तत्कालीन राजवंशों की कुलदेवियां कहलाती हैं। राजाओं ने इन इष्ट देवियों की पूजा-प्रतिष्ठा प्रारम्भ करके सारी जनता को शक्ति पूजन में लगाया है।

इन देवियों के अलावा नारसिंही, अम्बामाता, आयज माता, देवळ अम्बा-माता, चामुण्डामाता, काळिका माता, राठा सरण, बाणमाता, इडाणे माता, बोराजमाता, धुंधलाज माता, रायरंभा माता, केळादेवी, सिंधु-पोरखाण री माता, दधिमाता आदि नाम भी प्रचलित हैं। कुछ देवियों के लिए पशुबलि का अनुष्ठानिक कार्य भी संपन्न किया जाता है।

सती माता का महत्व – सतियों के हृदय में अपने पतिदेव के लिए बड़ा स्थान होता है। वे इस अटूट श्रद्धा के कारण अपने स्वामी शव के साथ जीते जी अग्नि प्रवेश कर जाती हैं। अत: जनता भी उन अद्वितीय ओज गुणाभा की देवली पूजा करके अपने परिवार को संरक्षित समझती है तथा सती को माता मानकर बड़े उत्साह के साथ आराधना करती है।

सतियों के क्षणिक शरीर तो विलीन हो गये पर गुण अभी तक देवीरूप में पूजे जाते हैं। अनेक लोक-गीतों में इस रहस्य की मार्मिक व्यंजना व्यक्त हुई है। किसी भी महिला का सत जागृत हो जाता है तब वह चितारोहण करने के लिए उत्सुक हो जाती है। सत के कारण उसके सिर के केस खड़े हो जाते हैं। घर वाले सती प्रथा कानून निषेध जानकर भय से उसे मकान में बंद कर देते हैं। लेकिन सत के कारण मकान के ताले झड़ [खुल] जाते हैं। फिर कड़ाहे में पानी को खूब उबाल कर स्नानार्थ सती परीक्षा होती है। उसमें भी वह सही निकलती है। तब स्नान के पश्चात् स्वीकृति के साथ वह सोलह शृंगार करती है। लोक

इसमें शक्ति का अंश समझने लगते हैं। सती गाजे-वाजे के साथ अग्नि आरोहण के लिए पति शव के साथ श्मशान को प्रस्थान करती है। साथ में अन्य औरतों के समूह गीत गाते हुए जाते हैं। साजबाज और रागरंग का पर्व लग जाता है। आसपास के ग्राम इकट्ठे हो जाते हैं। परचे पूछे जाते हैं, दांतुन रखे जाते हैं। सती सच्चे परचे देजाती है। ऐसी जनसामान्य में धारणायें है। यदि कोई साधु-स्त्रेवड़ा सती को श्मशानों में 'से' लाये [वश कर लाये] तो जनता को नहीं, उसी सयाने साधु को परचे आदि देती है। क्योंकि जादूगरों द्वारा सत उतार लिया जाता है।

राजस्थान के लोक विश्वास — भांति भांति के लोक विश्वास राजस्थानी लोक जीवन में घुले मिले प्राप्त होते हैं। यहां आश्विन मास के प्रथम पक्ष में पन्द्रह दिन श्राद्धोत्सव मनाया जाता है। इसे पितृ पक्ष या काग पक्ष के नाम से पुकारते हैं। इन दिनों लोग अपने घरों में दही नहीं बिलोते तथा दूध-दही को ही खा लेते हैं। एकादशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को यहां के लोग हल नहीं चलाते हैं। वे मंगलवार के दिन कोई खड्डा [छोटा बड़ा] भी नहीं खोदते हैं। इन दिनों ये कार्य अहितकर माने जाते हैं। कभी कभी गाय भैंसादि पशुओं के महुवाव या खुरसाण आदि रोग सर्वत्र फैल जाते हैं। ऐसे समय उन [पशुओं] के समूह को किसी साधु-स्त्रेवड़े द्वारा डोरा-डांडा तथा टूणा-टसमण कराया जाता है। कोई साधु या स्याणा व्यक्ति शनिवार की आधी रात को नग्न होकर श्मशानों से अधजला बांस या हालड़ी लाता है। फिर वह उस श्मशान वाली लकड़ी को एक ढकणी के साथ नीले डोरे से बांधकर बड़ी डोरी द्वारा ग्राम द्वार पर लटका देता है। फिर सारे ग्राम के पशु उसके नीचे से लेकर निकाले जाते हैं। उस रोज पशुओं की रोग मुक्ति के लिए दही बिलोना, चक्की पीसना और पोठे [गोबर] उठाना आदि कार्य बन्द रखे जाते हैं। इस हड़ताल के लिए गांव में हेला करवाया जाता है। नीले डोरे, नजर न लगने के लिए पशुओं के छोटे बछड़ों के और टोडियों के पैरों में बांधे जाते हैं। हमारे गांव कालू में यह कृत्य श्री गणेशलाल यति द्वारा सम्पन्न होता था। गोली वाले रोग के लिए पशुओं के झुंड में बंदूक चला कर रोग शांति चाहने का विश्वास भी प्रचलित है। सौ से लेकर क्रमशः एक तक उल्टा गिनकर बिच्छू का जहर उतारने का झाड़ा दिया जाता है।

राजस्थान के बहुत से नये बनाये हुए कुओं के ऊपर वाले भाग पर लाल ध्वजा फहराती हुई दिखायी देती है। ये स्थान हनुमानजी से संबंधित जान पड़ते हैं। क्योंकि कुआ खोदते समय प्रथम यहां हनुमानजी की कुटिया बनाते हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगा और पानी मीठा निकलेगा। यहां कहते हैं 'कुआ-मुआ' अर्थात् कुआ मौत का स्थान है। इसके

सम्पूर्ण होने पर लोग अपना श्रम सफल समझकर हनुमानजी का रोट चूरते हैं।

अन्ध विश्वासों के साथ शकुन — राजस्थानी लोगों के दिल दिमाग में भांति भांति के जादू टोने भरे पड़े हैं। पुरानी रूढ़ियां भी उनके साथ घर किये हुए हैं और जनसाधारण में धर्म एवं मर्यादा के नाम से अनेक अन्ध विश्वास प्रचलित हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं। भोजनोपरांत अंगड़ाई लेने से खाना गधे के पेट में चला जाता है। बच्चों को छतीय नाले के नीचे बैठाने से उस पर बायांजी बह जाती हैं। थावर या अदीतवार के दिन चालणी सिर पर लेने से सिर में दूखणिये हो जाते हैं। कोई व्यक्ति कभी किसी यात्रा के लिए तैयार होता है उस समय उसको विदा देने से पहले घर वाले बिल्ली से दही झुठवा कर खिलाते हैं। उसी समय यदि कुत्ता कान फड़फड़ा जाये तो सब उपस्थित लोग थूकते हैं। और उसकी [यात्री की] यात्रा बन्द कर देते हैं। हमारे यहां रात्रि में तारे का टूटना [उल्कापात] भी मृत्यु मूलक माना जाता है। टूटता तारा किसी को दीख जाये तो वह उसकी दोष निवृत्ति हेतु मुंह बाकर तीन बार राम राम बोलता है। रात में कौवे का और दिन में सियारों का बोला जाना भी देश के किसी बड़े आदमी की मृत्यु या अकाल के सूचक समझे जाते हैं।[1]

विवाह के समय संबंधी को खटाई नहीं खिलायी जाती है। क्योंकि सगे खट्टे न पड जांय। विवाह के बाद वापस घर आते समय जब बारात ग्राम सीमा पर पहुंचती है तो नारियल बधारकर उसकी चिटकियों के चार चार टुकड़े वर-वधू के हाथों से सीमा पर चढ़वाते हैं, तब कहीं सीमा में घुस जाते हैं। सीमा-देव के बाबत ऐसे अनेक अन्ध विश्वास पलते हैं। यह सब भोमिया, खेतरपाळ एवं पितृों के संबंध में होते हैं। समय पर वर्षा के न होने से उक्त देवों को बळ-बाकळ भी चढ़ाये जाते हैं। ऐसा करने से पानी बरसने की उम्मीद बंधती है। यह विश्वास अलौकिक यक्षों के स्थान पर लोक वीर एवं लोक पीर पूजा का नमूना है।

राजस्थान में देवता का दोष प्रकट करवाने की प्रथा का चलन बड़ा विचित्र है। इसको आखा देखना या ज्योत करवाना कहते हैं। ये क्रियाएं माताजी, मावड़ियांजी, हनुमानजी, भैरूंजी और पितर-पितरानियों के समक्ष अपने विघ्न-प्रश्न पूछने के संबंध में करवाई जाती हैं। भक्त किसी बड़ी औरत या भोपे के आगे अपने आखे [अक्षत - दाने] और ज्योत का घृत ले जाकर धरता है। तब देवी या देवता अपने पुजारी के सिर आकर उसके मुंह बोलता है। भक्त उससे अपने प्रश्नों का उत्तर पूछता है और पुजारी के बताये अनुसार विश्वास करता है। भक्त को सन्तोष हो जाने पर देवता पुजारी के सिर से उतर जाता है।

१. रातूं बोलै कागला, दिन में बोलै स्याळ। का धरती रौ राजा मरै का पड़ै अचूको काळ।

लोकविश्वास पर रक्षक देवता की कृपा प्राप्त करने के लिए जन सामान्य चूरमा, लापसी, खीर और हलवा के भोग चढ़ाते हैं। क्रियाकर्म करवाने वाले तारगिये [महाब्राह्मण] को तारगिया, शंखचूड़ को शंखचूड़ आदि प्रसिद्ध नामों से नहीं पुकारते। इन्हें क्रमशः भूरिया और फीटळी कहते हैं। दक्षिण दिशा यम दिशा कहलाती है। अतः शुभ कार्य दक्षिण की तरफ नहीं किया जाता। कोई भी व्यक्ति दक्षिण की ओर सिर करके नहीं सोता। मात्र मृत व्यक्ति का सिरहाना [सिर] दक्षिण दिशा की तरफ किया जाता है। लोक विश्वास से दुकानदार अपनी दुकान पर किसी को ढेरिया या तकली नहीं कातने देता। वह सुबह सुबह उधार भी नहीं तोलता। छींक कई कामों में अशुभ और विना काम के समय आने पर आयु वृद्धि की सूचक मानी जाती है। बच्चों की छींक पर घरवाले कहते हैं — 'छींक माता छतरपती, माथे रति, ताळवै तेल, बाप के आंगणै दौड़ दौड़ खेल।' बीमार को छींक आने पर कुटुम्बी जन शतजीव अर्थात् सौ वर्ष जीने का कहते हैं। किसी के पूछने पर मां-बाप अपने बच्चों का अपनत्व स्वीकार नहीं करते। कहते हैं 'भगवान का है।' परमात्मा के चार हैं, आदि गम्भीर बातों का प्रदर्शन करते हैं। औरतें अपने पति, जेठ और ससुर आदि वडेरों का नाम नहीं लेती। पति अपनी पत्नी का नाम लेने में सकुचाता है। राजस्थानी लोक विश्वास के अनुसार दूसरों के तिल खाने वर्जित हैं। कहते हैं— आगे के जन्म में उसकी [तिल वाले की] दासता करनी पड़ती है। यहां कृतज्ञता के लिए काला चावने की कहावत प्रसिद्ध है। मोटे रूप में बहुत ऐसे विश्वास हैं, जो पगपग और डगडग पर हमारे सामने आते हैं। जैसे रात को कपड़ा धोते समय थापी नहीं लगायी जाती। रात्रि में ताली और सीटी नहीं बजाई जाती है। हथेली में खाज धन उपलब्धि और पैर में खाज यात्रा का विश्वास माना जाता है। नाक पर मस्सा और कानों पर बाल भाग्यशाली की निशानी है। पैर वड़े कपूत का कहलाता है। सिर पर चिड़िया बैठ जाती है तो कोई कपड़ा ओढ़ाता है। मुंह में माखी [मक्खी] के घुस जाने पर मुंह मीठा होने की आशा बंधती है या किसी से लड़ाई होती है। हिचकी [हिक्का] आने का मतलब किसी हितैषी का चेतै [याद] करना माना जाता है। पर, पुरुष एवं स्त्री की दांयी बांयी आंखे फुरकना चिन्ता प्रसन्नता का कारण होता है। कौआ बोलता है, मामाजी आते हैं। पल्ला सिर पर आये तो कोई चीर पहनाता है।

जादूटोने और मन्त्र मूठ — राजस्थान में असंख्य जादू-टोने और जन्त्र-मन्त्र प्रचलित हैं। इनमें जनसाधारण की दो मान्यतायें विशेष तौर से कार्य करता हैं। एक जन्त्र-मन्त्र भलाई के लिए किये जाते हैं और दूसरे वैर-विरोध तथा बुराई के लिए होते हैं। भलाई वाले जादूटोनों में भूत निकालने, आधा शीशी

या बायवादी और सर्प बिच्छू के झाड़े देने, तेजरा, इक्यांतरा आदि तावों [बुखारों] के डोरे करने, छपाका, पीलिया, गाय - भैंस के डोरे, बच्चा जीने, बच्चा होने तथा निजर-फिटोड़ा न लगने, लोटी ढालने आदि मनुष्य हितार्थ कार्य के लिए टोने होते हैं। बैर विरोध वाले जन्त्र - मन्त्रों में अपने किसी दुश्मन पर मूठ मारने मरवाने, पुतले गाड़ने, दाह लगाने, कलेजा निकालने, वश में करने आदि कार्य दूसरों को अहित पहुंचाने के लिए किये करवाये जाते हैं, जो सर्वथा निन्दनीय गिने जाते हैं।

राजस्थान में कुछ टोने - टोटके बड़े विलक्षण ढंग से लोक - हृदय में बैठे हुए हैं। जैसे – आंख दुखने पर छोत निकालने का टोटका किया जाता है — अक्रूरड़ी [घूरे] पर से एक मूंज की रस्सी लाकर, उस पर थोड़ी रूई लपेटकर, तेल से भिगोकर जलाते हैं। और पानी से भरी थाली पर छोत झाड़ते हैं। जलती हुई मूंज से तेल पानी की ताती बूंदे गिरती रहती हैं। छोत निकालने वाला कहता जाता है – 'छड़ छोत, छड़ छोत! छोत झरे, आंख ठरे! छोत झरे, आंख ठरे।'

इस तरह का दूसरा टोटका बच्चों को नजर लग जाने पर किया जाता है। बालकों की अस्वस्थता पर नजर का आरोप करके चौराहे से मुट्ठी भरकर धूल लाई जाती है। फिर उस धूल में नमक मिलाकर अस्वस्थ बच्चे के मस्तक ऊपर ऊंवार फेर करके उस धूल को अग्नि में डालदी जाती है। उक्त क्रिया करते समय बालक के स्वस्थ होने की कामना की जाती है। धूल ऊंवारने वाली औरत बोलती है — 'घांची की मोची की, तेली की तमोली की, आये गये की, मां - बाप की, भाई - भुरजाई की, जीव नाव की निजर लगी हो तो वह चली जाय!'

नजर न लगने के लिए किसी मृत व्यक्ति के पीछे उछाले हुए पैसों में से एक पैसा लाकर बच्चों के गले की कंठी या माला मादलियों में पिरोये जाते हैं। नजर से बचाने के लिए बालकों के सिर की दोनों ओर तथा हाथ पैरों पर काजल के टीके लगाये जाते हैं। अधिक बच्चे मरने पर कपड़े मांगकर पहनाते हैं और नाक बिंधवाकर गले में चांदी का बाळला पहनाते हैं। यह बाळला विवाह के समय सासू अपने हाथ से निकालती है। इस तरह से ओरी माता [चेचक] में बाल, [केश] गधे की लीद, लाख, ल्हूणे, [घट्टी पूंछने का कपड़ा] लावण आदि वस्तुओं से बीमार मनुष्य को धुंई दी जाती है। मियादी बुखार वाले के पास जाते समय छांटा [नीम की डाली में गोमूत्र का] लेना, मिष्ठान खाने के बाद भूत - प्रेत से बचने के लिए मुंह में राख और नमक रखना, विवाह के समय वर-वधू के हाथों में लोहे का गेडिया देना और बरसते पानी को बंद करने के लिए तकड़ी में लेकर तोलना आदि टोटके यहां बहुत होते हैं।

उसळनी [फोड़े फुंसियों का एक चर्म रोग] ठीक करने के लिए आक के पीले पत्ते पर उल्टी वर्णमाल लिखवा कर छप्पर या दरवाजे पर टांक [रख] दिया जाता है। पत्ता सूखता है वैसे ही उसळनी के फफोले सूख जाते हैं। डाकण-स्यारियों से थुकवाकर बच्चों को बचाया जाता है। शाम के समय घर की रक्षा के लिए दरवाजे के आगे पानी की कार दी जाती है। सांपों की पूजा होती हैं। चुड़ैल, भूत-प्रेत और जिन्द को देवता रोके रखते हैं। राजस्थान प्रदेश के ऐसे असंख्य टोने टोटके हैं।

लोक संस्कृति के निर्माण तत्वों में उपरोक्त सभी विश्वासों का न केवल अपना महत्व है अपितु जीवन के यथार्थ को परखने का प्रयत्न करें तो महसूस होगा कि समाज का संपूर्ण मानवोचित कार्य-व्यापार ऐसी ही मान्यताओं पर निर्मित हुआ है और उन्हीं के बीच दैनन्दिन जीवन का संचालन हो रहा है।



सहायक ग्रन्थों की सूची

प्राकृत विमर्श — सरयू प्रसाद अग्रवाल
धम्म पद
जातक कथा — आनंद कौशलायन सुशील कुमार
राजस्थानी सबद कोस — सीताराम लाळस
स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ माइथोलॉजी एंड फॉकलोर — मेरिया लीच
ग्रामीण हिन्दी
राजस्थानी भाषा —डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या
राजस्थानी साहित्य : प्रगति और परम्परा— डॉ. सरनाम सिंह
राजस्थानी भाषा और साहित्य — डॉ. मोतीलाल मेनारिया
राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा — डॉ. मोतीलाल मेनारिया
राजस्थानी गद्य साहित्य : उद्भव और विकास — डॉ. शिवस्वरूप शर्मा
राजस्थानी साहित्य एक परिचय — स्वामी
संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण — स्वामी
राजस्थानी व्याकरण — सीताराम लाळस
मारवाड़ी व्याकरण — रामकरण आसोपा
राजस्थानी भाषा और साहित्य — हीरालाल माहेश्वरी
वीर काव्य — डॉ. उदय नारायण तिवाड़ी
पुरानी राजस्थानी — टेस्सीटॉरी
मालवी और उसका साहित्य — डॉ. श्याम परमार
राजस्थानी संस्कृति की रूपरेखा — प्रो. मनोहर शर्मा
हिन्दी साहित्य का १७ वां भाग [लोक - साहित्य]
भारतीय लोक साहित्य — डॉ. श्याम परमार
हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य — डॉ. शंकरलाल यादव
ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ सत्येन्द्र
लोक साहित्य की समालोचना — झवेरचंद मेघाणी
ग्राम साहित्य भाग १ से ३ — रामनरेश त्रिपाठी
लोक साहित्य — रवीन्द्रनाथ ठाकुर
हमारे लोक गीत—पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी
भोजपुरी ग्राम गीत भाग-२—डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
मैथिली लोक गीत—राम इकबालसिंह राकेश
हरियाना के लोक गीत—एम. एस. रन्धावा
कुरु प्रदेश के लोक गीत—गणेश दत्त
गढ़वाली लोक गीत—नत्था प्रसाद
मालवी लोक गीत—डॉ. श्याम परमार
भोजपुरी ग्राम गीत—आर्चर तथा संकटा प्रसाद
मारवाड़ी गीत संग्रह—खेताराम माली
मारवाड़ी ग्राम गीत—जगदीशसिंह गहलोत
मारवाड़ी गीत—निहालचंद्र शर्मा
मारवाड़ी स्त्री गीत—ताराचंद ओझा
सचित्र मारवाड़ी गीत संग्रह [दस भाग]
मारवाड़ी गीत संग्रह—वंशीधर
मारवाड़ी गीत माला—मदनलाल वैश्य
मारवाड़ के मनोहर गीत—राम नरेश
मारवाड़ी भजन सागर
राजस्थान के ग्राम गीत भाग १ व २ — पारीक
राजस्थानी लोक गीत—पारीक

राजस्थानी लोक गीत—पारीक, गणपति स्वामी
राजस्थान के लोक गीत १ व २ भाग — रामसिंह, स्वामी, पारीक
राजस्थानी लोक गीत—लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत
निम्वाड़ी लोक गीत — रामनारायण उपाध्याय
बाघेली लोक गीत—लखन प्रताप
सुहाग गीत—विद्यावती कोकिल
छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय—श्याम चरण दूबे
पंजाबी लोक गीत—संतराम बी. ए.
हिन्दुस्तानी लोक गीत—कांगाल हरिनाथ
रढ़ियाली रात—झवेरचंद मेघाणी
चुंदड़ी—झवेरचंद मेघाणी
राजस्थानी भील गीत—शोध संस्थान उदयपुर
मरुधर गीत माला—जेठमल
राजस्थान के लोक गीत भाग १ से ६—शोध संस्थान, उदयपुर
राजस्थान के लोक गीत—डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया
धूलि धूसरित मणियां—सीता, लीला व दमयंती
कविता कौमुदी भाग ५—रामनरेश त्रिपाठी
वेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी
बाजत आवे ढोल—देवेन्द्र सत्यार्थी
धरती गाती है—देवेन्द्र सत्यार्थी
वीरौ म्हारौ भाई—विजयदान देथा
मीठौ वीरा रौ बोलणौ—विजयदान देथा
दोरौ धीया नै सासरौ—विजयदान देथा
क्यूं दीनी परदेस—विजयदान देथा
गई गई रे समंद तळाव — विजयदान देथा
मरवण मांदी ओ — विजयदान देथा
आजकल का लोक कथांक — १९५४
राजस्थानी वात संग्रह — राज. शोध संस्थान
चौबोली — सहल व गौड़
राजस्थान की लोक कथाएं — डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया
राजस्थानी वातां — स्टुडेंट बुक कंपनी
कै रे चकवा वात—लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
राजस्थानी लोक कथाएं — सहल
कहौ तौ नटौ मत — सहल
हुंकारौ दो सा — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मारवाड़ी बाईबिल
मांझल रात — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
मूमल — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां — लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत
कनक सुन्दर नवल कथा — शिवचंद्र भरतिया
मारवाड़ी पोथी — राम कर्ण आसोपा
पंचतंत्र दूजौ — गोविन्द लाल माथुर
अकल बिना ऊंट ऊवांणौ — वैजनाथ पंवार
चार गाथा — रामपाळ भाटी
बूंदेलखंडी ग्राम कहानियां — शिव सहाय चतुर्वेदी
राजस्थानी वातां — सूर्यकरण पारीक
ब्रज की लोक कथाएं — आदर्श कुमारी जैन
ब्रज की लोक कहानियां — डॉ० सत्येन्द्र
हरियाना की लोक कहानियां — आदर्श कुमारी, यशपाल
सुध बुध सालिगा
सिंहासन बत्तीसी — सं: अचलसिंह
काश्मीरी लोक कथाएं — नन्दलाल
आदि हिन्दी की कहानियां और गीत — राहुल
मालवा की लोक कथाएं — डॉ० श्याम परमार
विंध्यप्रदेश की लोक कथाएं — चंद्र जैन
राजस्थानी व्रत कथाएं—मोहनलाल पुरोहित
नासकेत री कथा

एक मारवाड़ी री वात — भगवती प्रसाद
दारूका
दुर्गा सप्तशती वार्ता
अलख पच्चीसी
घाघ और भड्डली की कहावतें — शुक्ल
हिन्दी मुहावरे
बांकीदास ग्रन्थावली
राजस्थान रा दूहा भाग १ — स्वामी
राजपूताने के वातालार्थ — गहलोत
फेर कांई चावणा — रघुनाथसिंह राठौड़
लावणी संग्रह — नानूलाल राणाकी
भारतीय कृषि कहावतें — रामेश्वर अशांत
राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद — सहल
राजस्थानी प्रवाद — श्रीमती चूंडावत
गुजराती कहावत संग्रह — दूलीचंद शाह
मालवी कहावतें — रतनलाल मेहता
होळी री खुणखुणियौ — गोस्वामी
राजस्थानी लोक नृत्य — देवीलाल सामर
राजस्थानी लोक नाटक — सामर व वर्मा
राजस्थान का लोक संगीत— सामर व वर्मा
राजस्थान के लोकानुरंजन — सामर व वर्मा
राजस्थानी लोकोत्सव — गींडाराम वर्मा
लोक कला निबंधावली — भाग १, २; ३
सं. देवीलाल सामर
मारवाड़ी ख्याल — पादरी रोबसन
गोपीचंद का ख्याल
जगदेव कंकाली का ख्याल
खींवजी आभलदे का ख्याल
मारवाड़ी मौसर — गुलाब चंद
सीठना सुधार — दारूका
गेहरियां रा गीत — घीसूलाल लोढ़ा
गोगाजी चौहांण री राजस्थानी गाथा —
चंद्रदान चारण
दम्पती विनोद
मुहता नैणसी री ख्यात — भाग १, २, ३
पुरातत्त्व मंदिर
साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी
साहित्य और समाज —विजयदान देथा
तीडो राव — विजयदान देथा
म्हैं जीऊं हूं म्हैं जागूं हूं — विजयदान देथा
म्हैं हूं सठवा सूंठ — विजयदान देथा
अकल सरीरां ऊपजै — विजयदान देथा
बातां री फुलवाड़ी भाग १ से ६ —
विजयदान देथा

पत्रिकाएं

वाणी — बोरुंदा
वरदा — बिसाऊ
राजस्थान भारती — बीकानेर
मरुवाणी — जयपुर
लोक कला — उदयपुर
राजस्थानी वीर — पूना
रूपम — जोधपुर
मरु भारती — पिलानी
साधना — डूंडलोद
ओळमौ — रतनगढ़
चारण
परम्परा — जोधपुर
राजस्थान साहित्य — उदयपुर
प्रेरणा — जोधपुर
वातायन — बीकानेर
मधुमती — बीकानेर
आगीवांण — ब्यावर
नागरी प्र. पत्रिका — वाराणसी
चांद — मारवाड़ी अंक, १६२६
लोक वार्ता — टीकमगढ़
राजस्थानी — कलकत्ता
राजस्थानी भाग १, २
आजकल — दिल्ली
आलोचना — दिल्ली